[पूर्ण संख्या ७६५]   पत्र

ओ३म्[1]

श्रीयुत बाबू दुर्गाप्रसाद जी आनन्दित रहो ।

विदित हो कि **कहार रसोइया तथा शोधक और कोषाध्यक्ष के लिये आप को लिखा था।** उस का उत्तर आपने लिखा कि ४ दिन के पश्चात् इसका निश्चित उत्तर भेजेंगे[2]। सो वह आज तक नहीं आया। बीच में पण्डित लक्ष्मीदत्त जी ने उत्तर दिया था कि आप बरेली को गये हैं। हम ने आप के पत्र का उत्तर लिखा था कि वह **रामनाथ कौन है क्या पढ़ा है। और नागरी लिख[ना] जानता है वा नहीं। और हमारे साथ कब रहा था ? कौन वर्ण है? कहां का रहने वाला [है] ? और मुरादाबाद वाले के लिये लिखा था कि जब तक बड़ा हानिकारक अपराध न करे न निकाला जायगा। सो भी आप के अधीन निकालना वा रखना होगा।** सो आज पर्यन्त उस[का] उत्तर नहीं आया। सो शीघ्र भेज दीजिये। और दोनों पुरुषों [को] वैदिक यन्त्रालय में भेजने के लिये पूर्ण यत्न कीजिये। क्योंकि अकेले समर्थदान से वहाँ का काम नहीं चल सकता। आप के लिखे प्रमाण **आर्यसमाज लाहौर [के] मन्त्री के पास सब समाचार भेज दिया।**

और [3]हम आज चित्तौड़गढ़ में हैं। आगामी फाल्गुन वदी चतुर्दशी गुरुवार के दिन राजस्थान शाहपुर मेवाड़ को जाकर यथा रुचि वहां ठहरेंगे।

अब उदयपुर का वृत्तान्त सुनो। हम वहां बहुत आनन्द में

---

१. मूल पत्र आर्यसमाज फर्रुखाबाद में सुरक्षित है। म० मामराज जी ने सन् १९२७ में मूल पत्र से शुद्ध किया। इस से पहले हमने बा० देवेन्द्रनाथ वाली प्रतिलिपि से छापा था। फर्रुखाबाद का इतिहास पृष्ठ २२०-२२१ पर कुछ पाठ भेद के साथ छपा है।

२. बाबू दुर्गाप्रसाद का [सं० १९३९] माघ सुदि १४ (=२० फरवरी १८८३) का पत्र तीसरे भाग में देखें।

३. यहां से लेकर 'अब हम इस वक्त चित्तौड़ में हैं' (पृष्ठ ७९८, पं० २३) तक का अंश पं० लेखरामकृत उर्दू जीवन चरित पृष्ठ ५९७ (हिन्दी सं० पृष्ठ ६१०) पर उद्धृत है।

रहे। नित्य प्रति श्रीमान् महाराणा जी की ओर से सेवा उत्तम रीति से होती रही। किसी दिन को छोड़ सब दिन तीन चार वा पांच घंटे तक मुझ से मिल कर प्रेम पूर्वक सत्संग किया करते थे। केवल सुनने मात्र नहीं, किन्तु उस का धारण और आचरण भी
५ करते और कराते हैं। छः शास्त्रों का मुख्य-मुख्य विषय, मनुस्मृति के राजधर्म्म विषयक तीन अध्याय, विदुरप्रजागर आदि के उपदेश के योग्य श्लोक, थोड़ा सा व्याकरण का विषय और थोड़ी सी अन्वय की रीति श्रीमानों ने मुझ से पढ़ी। और राजधर्म्म में तत्पर थे। और विशेष कर अब पूर्ण रीति से हुये। वेश्या आदि
१० का नृत्य दर्शनादि नहीं सा निर्मूल कर दिया। स्वीकारपत्र जिस को वसीयतनामा कहते हैं वह उदयपुर में श्रीमानों ने स्वीकृत स्वमुद्रांकित स्वहस्ताक्षर स्वभूषित कर के उस [में] लिखी हुई सभा के उदयपुराधीश सभापति हुये हैं। उस का विशेष समाचार तुमको छपने पर विदित होगा। एक मान्य-पत्र[1] मुझको दिया है।
१५ और रु० १२००) कल्दार वेदभाष्य के सहायार्थ और एक दुशाला और एक साधारण दुशाला और रु० १००) कल्दार रामानन्द ब्रह्मचारी को। तथा ५००) रु० कल्दार फीरोजपुर आर्य्यसमाज के अनाथालय को। और रु० १००) कल्दार उस में कसीदा करने वाली लड़कियों को पारितोषिक प्रदान किये। वैदिकधर्म्म पर
२० प्रथम ही रुचि थी। अब विशेष कर हुई। जैसे श्रीमान् आर्यकुल-दिवाकर सुशीलता सत्यता कृतज्ञता सुसभ्यता पुरुषज्ञानतादि शुभ-गुण कर्म स्वभावयुक्त मैंने देखे वैसे वहुत विरले होंगे। अब हम इस वक्त चित्तौड़ में हैं[2]। फाल्गुन बदी चतुर्दशी गुरुवार के दिन राजधानी शाहपुरा राज्य मेवाड़ जाकर ठहरेंगे। जो कुछ पत्रादि
२५ भेजो तो इसी पते से भेजना, फक्त।

ता० ४।३।८३ ई०। मि० फा० ब० १० सं० १९३९।

[दयानन्द सरस्वती]

--:o:--

१. यह मान्य-पत्र यजुर्वेदभाष्य के ४७-४९ (सम्मिलित) अङ्क के टाइ-टल पेज ३ पर छपा है। इसे हम परिशिष्ट ३ में दे रहे हैं। यह मूल
३० मान्यपत्र कविराज श्यामलदास के संग्रह में था। अब ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में सुरक्षित है। २. देखें पूर्व पृ० ७९७ की टि० ३।

[पूर्ण संख्या ७६६]　　　　पत्र-सूचना

[विश्वनाथ, जयपुर][1]
४ मार्च १८८३।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७६७]　　　　पत्र

सर्व आर्य्यसमाजस्थ प्रधानादि आनन्दित रहो[2]।　　　　५

विदित हो कि स्वामी सहजानन्द सरस्वती उपदेशक, इसने संन्यासाश्रम धारण भी मुझसे किया है, आता है। इसको जब तक वहां रहे अन्न स्थानादि, और जब एक समाज से दूसरे समाज को जाय तब रेल के भाड़े आदि से सत्कार किया करना। जिस समाज से दूसरे समाज को जाना चाहे उस समाज का मन्त्री दूसरे समाज　　१०
के मन्त्री के पास पत्र भेज देवे कि वह स्टेशन पर आके निवास स्थान को ले जावे।

मिति फाल्गुन वदी १२ मंगल सम्वत् १९३९[3]।

ह० दयानन्द सरस्वती
चित्तौड़-मेवाड़।　　　　१५

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७६८]　　　　पत्र

ओ३म्

श्रीयुत चौधरी जालमसिंह जी आनन्दित रहो।[4]

---

१. इस पत्र और तारीख की सूचना महाशय विश्वनाथ के ६ मार्च १८८३ के पत्र से मिलती है। विश्वनाथ का उक्त पत्र तीसरे भाग में　　२०
देखें।

२. भारतसुदशाप्रवर्त्तक फरवरी १८८४ पृ० १८ से लिया गया। फर्रुखाबाद का इतिहास पृ० २०१ पर भी छपा है।

३. ता० ६ मार्च सन् १८८३।

४. इस पत्र को रूपधनी वाले चौ० जालिमसिंह के भाई के पौत्र चौ०　　२५
गजराजसिंह से मास्टर बद्रीप्रसाद जी ले गये थे। उसे अहीर क्षत्री स्कूल शिकोहाबाद के उक्त मास्टर से म० मामराज जी ता० १५ अप्रैल सन् १९२७ को लाये थे। मूल पत्र म० मामराज जी के पास श्रीराम निवास

विदित हो कि हम उदयपुर से फाल्गुन वदी ७ सप्तमी के दिन चित्तौड़ में आन पहुंचे। और अब यहां से फाल्गुन वदी त्रयोदशी के दिन शाम की रेल में बैठकर चतुर्दशी के दिन शाहपुरा राज मेवाड़ जिला अजमेर को जो कि बड़ी रूपाहेली से ८ कोश है, ५ जायंगे। और जो कागज दो तो इसी पते से देना। आगे हाल यह कि एक स्वीकारपत्र राज उदयपुर में मुद्राङ्कित स्वीकृत हुआ। और उसके अधिपती श्रीमान् दिवाकर हुए हैं। बाकी सब सभासद। जब छपेगा विदित होगा। और एक मान्यपत्र[1] भी दिया है। और छः शास्त्रों का मुख्य-मुख्य विषय और मनुस्मृति का राज- १० धर्म्म तथा विदुरप्रजागरादि के श्लोक कुछ व्याकरण और अन्वय की रीति भी श्रीमानों ने मुझ से पढ़ी। और रु० १२००) कल्दार[2] और एक दुशाला वेदभाष्य के सहायार्थ और एक साधारन दुशाला और रु० १००) कल्दार रामानन्द ब्रह्मचारी को और ५००) रु० कल्दार फीरोजपुर के अनाथाश्रम के लिये और रु० १००) कल्दार १५ उसी में कसीदा करने वाली लड़कियों को पारितोषिक प्रदान किया।

मिति फाल्गुन वदि १२ सम्वत् १९३९।
तदनुसार तारीख ६ मार्च सन् १८८३ ई०

(हस्ताक्षर)
२० [दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७६९] पत्र-सूचना

[गणेशदास एण्ड कम्पनी, तारघर के नीचे, वनारस]
पुस्तकें मंगवाने के विषय में।[3]

—:०:—

(बिल्डिङ्ग) खतौली में सुरक्षित है।

२५ १. द्र०—पृष्ठ ७६५ टि० १।

२. देशी रियासतों में प्रचलित विभिन्न रुपयों के सिक्कों की तुलना में अंग्रेज सरकार का रुपया कल्दार कहाता था।

३. इस पत्र की सूचना पूर्ण संख्या ७९४ के पत्र में है। वहां लिखा है—"अभी हम २१।।।=) की पुस्तकें मंगा चुके हैं। इस सूचना को हमने ३० अनुमान से यहां जोड़ा है।

[पूर्ण संख्या ७७०]　　आदेश-पत्र

[मुंशी समर्थदान वैदिक यन्त्रालय, प्रयाग]

जैसा इस को शोध के भेजते हैं। वैसा पुनः कम्पोज करके छपवा दो और जो कहीं शोधने में भूल रह गई हो तो तुम वहां शोध लेना, **जिससे मांसभक्षण का अभिप्राय कुछ भी न रहे।** ५ बाकी सब पत्रों के उत्तर कल[1] भेजेंगे और अगले अंक के पत्रे तथा थोड़े से सत्यार्थप्रकाश के पत्रे भी भेजेंगे[2]।

[मिति फाल्गुन शु० ६ शनि सं० १६३६[3]]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७७१]　　पारसल-सूचना

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]　　१०

यजुर्वेदभाष्य अ० १३ मन्त्र ४७-५१ की पुनः शोधित प्रेस कापी।[4]

फाल्गुन शु. ६ सं० १६३६

—:o:—

---

१. देखो पूर्ण संख्या ७७२ का पत्र।

२. यह लेख श्रीस्वामी जी ने यजुर्वेदभाष्य के १३वें अध्याय की प्रेस　१५ कापी के पृष्ठ ४५६ के दूसरी ओर (पीठ पर) अपने हाथ से लिखा है। यह लेख १७ मार्च १८८३ (फा० शु० ६ सं० १६३६) को लिखकर भेजा था। देखो अगला पूर्णसंख्या ७७२ के पत्र का ८वां अंश (अन्तिम पैराग्राफ पृष्ठ ८०५)। इस का सम्बन्ध उक्त पत्र के अन्तिम अंश से भी है। उसके साथ मिला कर पढ़ें। यजुर्वेद अ० १३ मं० ४७-५१ तक के भाष्य को पुनः　२० शोधने के लिये मुंशी समर्थदान ने शाहपुरा भेजा था। इस कारण विलम्ब होने से यजुर्वेदभाष्य का ४६-४७ (सम्मिलित) अङ्क कुछ देर से प्रकाशित हुआ था। इसकी सूचना समर्थदान ने इस अङ्क के टाइटल पेज के पृष्ठ ४ पर दी थी। उसे तीसरे परिशिष्ट में देखें।

३. १७ मार्च १८८३।　२५

४. यह पारसल सूचना पूर्णसंख्या ७७० तथा ७७२ के आधार पर बनाई है। तिथि का निर्देश पूर्णसंख्या ७७२ के अनुसार किया है।

[पूर्ण संख्या ७७२] पत्र

ओ३म्

मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो।

तुम्हारी तारीख बारा [१२] मार्च की लिखी हुई चिट्ठी आई। ५ समाचार विदित हुआ।

(१) शुद्धि पत्र और टाटल पेज भले ही बना छापकर ग्राहकों के पास भेज देना और छापेखाने में भी जिल्दें बंधवाने का लिखा सो अच्छा।[1] परन्तु थोड़ी, जियादह नहीं।

(२) तुम को इस बात का ज्ञान नहीं। तुम इस बात को नहीं १० जानते कि हम को कितना काम करना पड़ता है कि एक क्षण मात्र भी अवकाश नहीं मिलता। देखो इसका दृष्टान्त कि तुम्हारे पत्र का उत्तर रात्री के ९ बजे लिखते हैं।

और इस के पद की गणना रामानन्द तथा दूसरे पण्डित के हाथ गिणवाये थे। कोई पद रह गया होगा। अब हम अपने १५ सामने पद गिन गिनवा लेंगे और अगले अङ्क के पत्रे और कुछ सत्यार्थप्रकाश के पत्रे उसके साथ भेजे जायंगे।

(३) हिसाब हमारे पास आने से सब बात का प्रबन्ध हम भी आगे आगे करते हैं। इसलिये जो तुमने उचित समय पर मासिक हिसाब भेजना लिखा सो बहुत अच्छी बात है। और द्रव्य के २० विषय में जो तुम को लिखा है सो तुम्हारे अविश्वास कारक नहीं है। एक उपदेश रूप है। देखो तुम हम और अन्य भद्र लोग मुंशी इन्द्रमणि जी को कैसा अच्छा समझते थे। परन्तु वह तभी तक रहा जब तक कि उनके सामने धन न आया। और तुम्हारे विषय में अविश्वास का हेतु प्रत्यक्ष कोई नहीं हुआ है। इस से तुम उल्टा २५ मत समझो। इसका यह मर्म और अर्थापत्ति नहीं है कि तुमने अप्रत्यक्ष बुरा काम किया है। वह लेख इस अभिप्राय से है कि जिसका उत्तरकाल में भी कभी ठोकर खाना न पड़े। देख देख कर

---

१. मुंशी समर्थदान ने वेदभाष्य की जिल्दें बंधवाने के सम्बन्ध में जो विज्ञापन ऋग्वेदभाष्य, अङ्क ४०-४१ (सम्मिलित) के आवरण पृष्ठ ४ पर ३० छापा था, उसे तीसरे परिशिष्ट में देखें।

पग जमा कर चलना चाहिये। क्या बालक वा विद्यार्थी अथवा शिष्य को मिथ्या भाषणादि के अप्रत्यक्ष में भी तू मिथ्या भाषण चोरी जारी विश्वासघात आदि दुष्ट कर्म मत करना, उपदेश नहीं होता। इसका प्रयोजन यह है कि जैसा आचरण भूत वा वर्तमान में शुद्ध था, वा है, वैसा ही रहना उचित है। भला हरिश्चन्द्र और बखतावरसिंह का दृष्टान्त तुममें घटता वा सम्भावना होती तो मैं और सेवकलाल कृष्णदास आदि वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्ध करने को तुम को कभी न कहते। क्या तुमने हमारे और सेवकलाल कृष्णदास जी के कहने ही से इस काम को स्वीकार किया है परोपकार की दृष्टि से नहीं। शोक है कि सूधी बात को तुम उल्टी समझ गये। यदि तुम्हारे काम की पवित्रता की परीक्षा मुझको व सेवकलाल को न होती तो पुनः इस काम में तुमको नियुक्त ही क्यों करते? यदि तुम इस काम के योग्य न होते तो इतना बड़ा काम और जिस में विशेष माल का काम है, स्वाधीन क्यों करते। तुम को हम वा सेवकलालादि हरिश्चन्द्र बख्तावरसिंह वा मुंशी इन्द्रमणि सरीखा नहीं समझते। तुम को उत्तम पुरुष समझते हैं परन्तु—

सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते[1]

क्या हमारे पास बुरे ही मनुष्यों का निर्वाह है। ऐसी तुम्हारी बातों का जो कि कभी कभी लड़कपन की कर बैठते और समझ लेते हो इन बातों पर ध्यान करूं वा करूंगा तो क्या इस परोपकार के काम से संशयापन्न हो पृथक् हो जा नहीं सकता। मुझ को[2] इतना बड़ा परिश्रम निन्दा अपमान उठा कर कौन सा स्वप्रयोजन सिद्ध करना चाहता हूं। **यदि तुम लोग जैसा कि अब उदासीनता की बातें लिखी हैं लिखोगे वा करोगे तो सब संसार की हानि का अपराध तुम्हारे पर होगा और मैंने जो उपकार करना निश्चित किया है जहां तक बन सकेगा आमरण तक करूंगा ही पुनर्जन्मान्तर में भी।** जब तक इस पत्र को देख कर तुम्हारा पत्र परोपकार

---

१. गीता अ० २ श्लोक ३४।

२. यहां 'मुझको इतना ··· ··· सिद्ध करना है' पाठ होना चाहिये।

अर्थात् स्वदेशोपकार करने में दृढ़ता पूर्वक पत्र हमारे पास न आवेगा तब तक हमारे उपदेश रूप लेख को अपनी अल्प बुद्धि से उलटा समझ गये हो, जाना जायगा। इसलिये पत्र पढ़ते ही उसी लेख का यह तात्पर्य समझ कर प्रत्युत्तर शीघ्र भेजना।

५ (४) मान्यपत्र उनके साथ भेजने में रामानन्द भूल गया था। पीछे से भेजा है, पहुंचा होगा। और ऋग्वेद तथा सत्यार्थप्रकाश वो (के) भी पत्र परसों[1] भेजे जायंगे। क्योंकि कल रविवार है रजिस्ट्री नहीं हो सकती। जब जब मासिक हिसाब भेजो तब तब इतने फार्म निज के और इतने बाहर के इस महीने में छपे यह भी १० साथ ही [लिख कर] भेजा करो।

(५) यहां शाहपुरे में श्रीयुत महाराजाधिराज व्याकरण का विषय पढ़कर कल मनुस्मृति के सप्तमाध्याय राजधर्म के पढ़ने का आरम्भ करेंगे। और बड़े बुद्धिमान् तथा राजनीति प्रजापालन में तत्पर साहसी उत्साही और बड़े बुद्धिमान् हैं। सेवा भी बहुत प्रीति १५ और अच्छी प्रकार से करते हैं।

(६) भीमसेन को तुमने जैसा [वक] वृत्ति समझा है, वैसा ही हम बकवृत्ति और मार्जारलिङ्गी समझते हैं। वैसा ही उस से विलक्षण दम्भी क्रोधी हठी और स्वार्थसाधनतत्पर ज्वालादत्त भी है। अब उस को निकाल देना वा न निकाल देना, तुमने क्या २० निश्चय किया है। मेरी समझ में भीमसेन का छोटा भाई ज्वाला-दत्त है। यदि उसको निकाल दोगे तो भी कुछ बड़ी हानि न होगी। क्योंकि वह कभी मन लगाकर काम न करेगा और उसकी ऐसी दृष्टि कच्ची है कि शोधने में अशुद्ध अवश्य कर देगा।

(७) और जो कुछ श्रीयुत आर्यकुलदिवाकर महाराणा जी के २५ विषय में धन्यवाद का लेख लिखो सो अच्छा ही लिखोगे। मोहन-लाल विष्णुलाल जी ने चलते समय कहा था कि धन्यवाद विषय का पत्र लिखकर भेजने को कहा था। यदि दो चार दिन में आया तो तुम्हारे पास भेज देंगे। तुम जानते हो राजकृत्य की शीतलता[2] को कि जैसा मेरे वहां रहने में शीघ्रता होती थी वैसी कब हो

---

३० १. सोमवार १९ मार्च १८८३।

२. शीतलता = ढीलापन।

सकती है ? जो कुछ होगा सो धीरे धीरे और अच्छा होगा। और तुमने कमीशन का क्या नियम किया है। क्या जैसा सुचीपत्र में छपवाया है वही है वा अन्य कोई। जो तुमने छपवाये हैं वेही ठीक हैं। वैसा ही हम भी लोगों से उपदेश करेंगे। और उस भीमसेन की हुई हानि कुछ भी नहीं हो सकती उसका उत्तर तुम लिख भेजो कि ५ जबतक स्वामीजी की आज्ञा वा इच्छा तुमको कहीं रखने वा भाषा बनवाने की नहीं होती, तबतक कुछ भी नहीं हो सकता। अब उस ने उदयपुर में जो भाषा बनाई है, सोधी गई कई एक के अर्थ में **पदार्थ छोड़ दिया। कई एक पद अन्वय के छोड़ दिये। और कई एक पद आगे पीछे भी कर दिये गये हैं।** और उसका कार्ड १० बुक पोस्ट के साथ तुम्हारे पास भेजेंगे।

(८) हम ने आज ४७ मन्त्र से लेकर ५२ मन्त्र तक के पत्रे शोध कर आज आये और आज ही रजिस्ट्री कराके भेज दिये हैं। उन में से जहां जहां मांस खाने का विषय [था] काट दिया और उचित अर्थ कर दिया है। परन्तु राजा और राजपु[रु]षों को हानि १५ कारक सिंहादि जांगल पशुओं को मारना तो रहने ही दिया है, क्योंकि उन मन्त्रों में अनुदिशामि। आरण्यम्। तेन। तन्वम्। पुष्यस्व आदि पदों के अर्थ के अनुरोध से राजपुरुषों को उनका मारना अवश्य ही सिद्ध होता है। तथा युक्ति से भी सिद्ध है, क्योंकि यदि डाकू चोर आदिकों को भी राजधर्म में मारना उचित है तो २० वैसे प्रजा के हानिकारक पशुओं को मारने में राजाओं को कुछ भी अपराध नहीं हो सकता। यदि ये न मारे जांय तो प्रजा के खेती आदि के नाश से बड़ी ही हानि होवे इत्यादि। यदि शीघ्रता से शोधने में **मांस खाने में कोई रह गया है तो उस को तुम कटवा देना** और उचित धरवा देना[1]। और उन्हीं पत्रों को शोधा है कि २५ जिस से तुम्हारा कम्पोज सब व्यर्थ न जाय किन्तु उस के बराबर

---

१. यजुर्वेद १३। ४७-५१ मन्त्रों में हानिकर पशुओं के मारने का उल्लेख है। उन से भूल कर भी कोई मांस खाने का विधान न मान ले, इस लिये श्री स्वामी जी ने समर्थदान की प्रार्थना पर सारा प्रकरण अति स्पष्ट करके प्रूफ भेजा। इसी विषय का संकेत समर्थदान ने अपने १३-७-१८८३ ३० के पत्र में किया। समर्थदान का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

सही करवा कर ग्राहकों के पास भेज दो। अब आगे वेदभाष्य के पत्रे उचित समय पर सदा भेजे जायेंगे। और मुम्बई से टैप आने का क्या समाचार है। तीन महीने तो हो गये होंगे। उनसे तकादा करो कि शीघ्र टैप भेज देवें।

५ मिति फा० शु० ९ शनिचर सं०[1]।

[दयानन्द सरस्वती]

--:o:--

[पूर्ण संख्या ७७३] पत्र-सारांश

[पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्डिया – उपमन्त्री परोपकारिणी सभा।]

१० रुपयों का फरक क्यों पड़ रहा है। १९००) रु० थे, अथवा २०००) रु०। यहां राजाधिराज ने मनुस्मृति का पढ़ना आरम्भ कर दिया है।[2]

फा० शु० १०, १९३८[3]

दयानन्द सरस्वती

--:o:--

१५ [पूर्ण संख्या ७७४] पारसल-सूचना

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]

ऋग्वेदभाष्य और सत्यार्थप्रकाश के पत्रे।[4]

फाल्गुन शु० ११, सं० १९३९ [१९ मार्च १८८३]

--:o:--

इस विषय में पूर्ण संख्या ७७० पर छपी ऋषि के हाथ की यजुर्वेद २० भाष्य अ० १३ की प्रेस कापी के पृष्ठ ८०१ पर लिखी सूचना भी पढ़ें।

१. १७ मार्च १८८३।

२. इस सारांश का संकेत मोहनलाल विष्णुलाल पण्डिया के २२ मार्च १८८३ के पत्र में है। पण्डिया जी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

२५ ३. संवत् १९३९ चाहिये। १८ मार्च रवि० १८८३।

४. इस रजिस्टर्ड पारसल की सूचना पूर्ण संख्या ७७२ के पत्र के ४वें सन्दर्भ (पृष्ठ ८०४ पं० ६) में है। तिथि का निर्देश भी उसी अंश के अनुसार किया है।

[पूर्ण संख्या ७७५]　　　　पत्र-सारांश

[मोहनलाल विष्णुलाल पण्डिया, उदयपुर]

१. आर्यसमाज फिरोजपुर का पत्र भेजा है।[1]

२. १०० रुपये का फरक क्यों है ?

३. ब्रह्मानन्द मेरे पास पहुंच गया है।　　　　५

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७७६]　　　　पत्राशय

[श्री मुन्नालाल जी स० देशहितैषि, अजमेर]

सहजानन्द को जयपुर भेज दो।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७७७]　　　　पत्रांश

[भाई जवाहरसिंह मन्त्री आर्यसमाज लाहौर]　　　　१०

.... "जो तुमने इतनी बड़ी चिट्ठी आर्यभाषा में लिखी, यही हमने तुम्हारी शुद्धी जानी[3]।"

लगभग २३ मार्च १८८३।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७७८]　　　　पत्र

(ओ३म्)　　　　१५

---

१. यह पत्र-सारांश मोहनलाल विष्णुलाल पण्डिया के २७ मार्च १८८३ के पत्र में है। पण्डिया जी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. इस आशय की सूचना मुन्नालाल (अजमेर) के २८ मार्च के पत्र में है। मुन्नालाल का पत्र तीसरे भाग में देखें।

३. ऋषि के पत्र से इतना लेख—भाई जवाहरसिंह ने अपने पत्र ता० १८ अप्रैल १८८३ बुधवार, में उद्धृत किया है। श्री स्वामी जी का पत्र भाई जवाहरसिंह के १६ मार्च १८८३ के पत्र के उत्तर में लिखा गया होगा। उस पत्र में भाई जवाहरसिंह जी ने लिखा है—　　　　२०

"मुझे हिन्दी लिखनी नहीं आती.................................. प्रन्तु जैसे आई वैसे लिख दी।" भाई जवाहरसिंह के ये दोनों १६ मार्च और १८ अप्रैल के पत्र तीसरे भाग में देखें।　　　　२५

श्रीयुत बिहारीलाल जी आनन्दित रहो[1]।

धर्म्मजीवन और मित्रविलास आदि पत्रों का झूठ बकना ही रात दिन काम है। और जैपुर गजट वाला भी उनके सदृश ही बुद्धि रखता होगा। आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो। ५ जैसी सम्मति लाहौर और मेरठ वाले दें वैसी करो। तुम जानते थे कि स्वामी जी जोधपुर में गये ही नहीं, फिर तुम को शोक कैसे हुआ। और हमारे लिये ऐसे सैकड़ों मनुष्य बका करते हैं, कि जैसे मित्रविलास और धर्म्मजीवन आदि पत्रों के मांसाहारी काश्मीरी आदि लाहौर में बका करते हैं। सब से हमारा आशीर्वाद कह १० दीजियेगा।

मिती चै० व० ५ बुधवार सं० १९३९[2]।

(शाहपुरा)

(हस्ताक्षर) [दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७७९] पत्र

१५ ओ३म्

श्रीयुत चौधरी जालिमसिंह जी आनन्दित रहो[3]।

जब वह स्वीकार-पत्र छपेगा तब एक कापी तुम्हारे पास भेज देंगे। **भीमसेन को न हम अपने पास वा न अन्यत्र कुछ काम देना चाहते हैं। वह काम करने में अयोग्य और वह स्वभाव का भी** २० **बहुत बुरा आदमी है।** हम उस के विषय में पहले भी लिख चुके हैं[4]। और वह न किसी आर्य्यसमाज में रहने के योग्य है। यदि कहीं जायगा बुरे हवाल निकाला जायगा। अन्यत्र जहां उसकी इच्छा हो जाये, चाहे न जाये, उसकी खुशी। परन्तु हम उसको कहीं नौकर वा काम कराना नहीं चाहते। यह सब एक जात बद्री[5] ब्राह्मण

---

२५ १. मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

२. २८ मार्च सन् १८८३।

३ मूल पत्र पं० विष्णुलाल जी एम० ए० बरेली के पास था। उस की प्रतिलिपि हमने वहां से की थी।

४. द्र०—पूर्ण संख्या ५६६, पृष्ठ ६०७।

३० ५. इस बद्री का उल्लेख आगे भाद्र सुदी ४ सं० १९४० (५ सितम्बर

सिकन्दरपुर के सदृश हैं। चाहे इनके ऊपर कितनी दया करो वे कृतघ्न[ता] ही करते जाते हैं। जब से वह गया है तब से जो पुरुष हमारे पास हैं, आनन्द में रहते हैं। यदि वह होता तो न जाने अब तक कौन जाता, कौन रहता **केवल वह दम्भी और मिथ्याचारी है**। यदि बद्री ब्राह्मण का विष देने का कर्म प्रसिद्ध हो गया है तो उसको जेलखाने में भेज दिया वा नहीं। ठीक साबूती हो तो उस को अवश्य जेलखाने में भिजवा देना चाहिये। जिससे दूसरा भी कोई ब्राह्मण ऐसे काम करने की इच्छा न करे। बड़ा शोक है उस बद्री दुष्ट पर कि जिसकी आप लोगों ने हजारह रुपये की सेवा की और उस का फल उस कुपात्र ने प्राण लेना चाहा था। हम यहां राजधानी शाहपुरा राज मेवाड़ जिले अजमेर में ठहरे हैं। कुछ एक आध महीना यहां रहेंगे। सब से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

मि० चै० व० ५ बुधवार सं० १९३९[1]।

(शाहपुरा)

(हस्ताक्षर) [दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७८०]　　पत्र-सारांश

[लीलाधर हरिदास मुम्बई[2]]

१. सेवकलाल ने घड़ी क्यों नहीं भेजी।

२. समर्थदान ने जो टाइप मंगवाया। उसका क्या उत्तर है।

३. आर्यसमाज मन्दिर का काम कैसा हो रहा है।

चैत्र वदी १०[3]　　दयानन्द सरस्वती

शाहपुरा

१८८३) को चौ० जालिमसिंह को लिखे पूर्ण संख्या ९०८ के पत्र में भी है।

१. २८ मार्च १८८३।

२. इस पत्र का संकेत लीलाधर हरिदास के सं० १९३९ (गुजराती, उ० भा० १९४०) के चैत्र शुक्ल १५ शनिवार [२१ अप्रैल १८८३] के पत्र में है। लीलाधर का पत्र तीसरे भाग में देखें।

३. संवत् १९३९। २ एप्रिल, १८८३ सोमवार।

[पूर्ण संख्या ७८१] पत्र

॥ओ३म्॥

वारट श्रीकृशन जी आनन्दित रहो[1] !

विदित हो कि पत्र आपका आया समाचार विदित हुए।
५ **संस्कृतवाक्यप्रबोध के विषय में जो तुमने लिखा सो छापेवालों की भूल से छप गया है। वहां -(एकत्रैकाङ्गुष्ठ एकत्र चतुरंगुलयः) ऐसा चाहिये, सो सुधार लीजिये ॥**[2]

यदि श्रीमान्महाशयों से निवेदन करके कविराज जी के पास जोधपुर से उक्त कार्य्य कराने के लिए जयपुर जाने के आने की
१० आज्ञा पहुंच जाय तो अत्युत्तम है। और यह भी निवेदन करना कि पत्र द्वारा श्रीमानों की दिनचर्या और शरीर कुशलता की सत्य-सत्य सूचना मुझको हुआ करे तो अच्छी बात है। क्योंकि उसको सुनना मैं अवश्य चाहता हूं। और फतहकरण उदयपुर में है वा कविराज जी के साथ जोधपुर गये हैं। **फतहकरण का नाम**
१५ **(विजयकरण) हो सकता है वा नहीं। क्योंकि (फतह) शब्द फारसी का है और उसका अर्थ विजय है इसलिये (विजयकरण) नाम होना उचित है।**

और जो तुमने महाराजाधिराज की चिट्ठी के साथ एक चिट्ठी

---

१. मूल पत्र श्रीकृष्ण जी के पुत्र ठाकुर किशोरसिंह बारहट के संग्रह में
२० सुरक्षित है। पं० चमूपति सम्पा० पत्रव्यवहार, पृष्ठ १६५ से लिया।

२. प्रथम संस्करण में **'मुष्टिबन्धने एकत्राङ्गुष्ठ एकत्र पञ्चाङ्गुलयो भवन्ति'** ऐसा छपा था। भाषा में भी यही अशुद्धि थी। यह अशुद्ध पाठ वैदिक यन्त्रालय के छपे संस्कृतवाक्यप्रबोध के १०वें संस्करण तक छपता रहा। ११वें संस्करण में शुद्ध किया गया। संस्कृतवाक्यप्रबोध के छपने में इस प्रकार की कुछ भूलें और भी हो गई थीं। उनके विषय में पूर्णसंख्या
२५ ४४८ (पृष्ठ ४६३) का पत्र भी देखें। काशी के पण्डितों ने इस पर अपने अज्ञान से कुछ झूठे आक्षेप किये थे। उनमें से कुछ आक्षेपों का समाधान पूर्णसंख्या ४४६ (पृष्ठ ४६६) पर छपे लेख में किया है।

संस्कृतवाक्यप्रबोध पर किये गये शेष सभी आक्षेपों के उत्तर रामलाल
३० कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित संस्करण में देखें।

भेजी थी कि जिसमें लिखा था' १००) सौ रुपये स्वामी जी के नौकरों को अर्पित किये लिखा था[2] और उस समय यही मैंने और आप लोगों ने भी सुना होगा कि ५००) रुपये अनाथाश्रम और कसीदा करने वाली कन्याओं के [लिये] पारितोषिक देते हैं। ज[ब] पण्डया जी की चिट्ठी आयी, उस पर हमने पूछा कि ६००) रुपये भेजने चाहिये, सातसे कहां से भेजे। उस पर उन्होंने उत्तर दिया कि हमारे पास सातसे ७००) रुपये आये', सो ६९२) रुपये भेजे और ८) रुपये मनियाडर और रजिष्टरी कराई दिये। यह क्या बात है। हम तो ६००) रुपये सब मिल कर फिरोजपुर के लिये श्रीमानों ने दिये हैं, ऐसा सर्वत्र लिख चुके हैं यदि इस में १००) रुपये भूल से चले गये हों वा सातसे ही प्रदान किये गये हों, जैसा हुआ हो वैसी निश्चित बात लिखो। जिस से हम पुनः जैसा हो वैसा सर्वत्र लिखदें।

और श्रीमानों की दिनचर्य्या का विषय ठीक ठीक लिखा करो। गोलमाल मत किया करो। और यहां सब प्रकार से आनन्द मङ्गल है। और सब महाशय भद्र जनों से मेरा आशीर्वाद कहियेगा !

चैत्र कृष्ण १० सोम संवत् १९३९[3]। [दयानन्द सरस्वती]
शाहपुरा राज मेवाड़

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७८२]　　　पत्र

पण्डित कालूराम जी महाराज निवास स्थान रामगढ़ जिला सीकर इलाके जयपुर को श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने ·····[4] द्वारा निम्नलिखित उपदेश किया।

ओ३म्

उपदेश

---

१. द्र०—यह बात मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया ने अपने २२ मार्च १८८३ के पत्र में लिखी थी। पण्डया जी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. 'लिखा था' दो बार है।　　　३. २ एप्रिल १८८३।

४. 'ने' के आगे और 'द्वारा' से पूर्व लिखा शब्द पढ़ा नहीं जाता है। हमने इसे 'स्ति' पढ़ा है। पं० कालूराम ने ऋ० द० के शाहपुरा में दर्शन किये थे। अतः क्या 'नि[जह]स्त' पाठ हो सकता है ?

१. सब मन्त्रों के पूर्व ओ३म्कार का प्रयोग करना ॥

२. त्रिवर्ण को तत्सवितु:० गायत्री मन्त्र द्विजों की स्त्रियों को (विश्वानि देव०) मन्त्र शूद्र और उनकी स्त्रियों को (विश्वानि देव०) मन्त्र और ईसाई मुसलमान आदि को भी विश्वानि देव० मन्त्र अन्त्यजादि को [1]परमात्मानमिति मन्त्र ॥

३. नमस्ते शब्द सब आपस में बोलैं । छोटा प्रथम बोले बड़ा पीछे बोले ॥

४. जो कोई ब्राह्मण हो उसको संन्यास देकर नाम के अन्त में सरस्वती शब्द होना चाहिये और क्षत्रिय वैश्य को आनन्दशब्दान्त जैसे अच्युतानन्द और शूद्र को दास जैसे अच्युतदास ॥

१॥ ओं[2] सर्वात्मान मंतर्यामिनं कृपामृत सागरं परमात्मानमहं शरणं प्रपद्ये ॥

५. अन्त्यज सब स्वजाति के उपदेशक और अध्यापक हों ॥

६. वर्णव्यवस्था गुण कर्म्म से होनी चाहिये धर्म्मव्यवहार में ॥

७. कोई पूछे तुम कौन साध हो कहे कि (वेदानुयायी) तुम्हारा मत क्या तो कहे (वेदोक्त) तुम्हारा धर्म्म क्या (पक्षपातरहित न्यायाचरण सत्य[3] है) ॥

८. भगवां वस्त्र सब को होना चाहिये ॥

९. (प्रायश्चित्त) जिस समय कोई मतमतान्तरस्थ पुरुष वेदमत ग्रहण करना चाहे तभी पवित्र हो गया परन्तु पुन: वोह वेदमत छोड़ वेदविरुद्ध मत ग्रहण कभी न करे उसके लिये यही प्रायश्चित्त है ॥

१०. सब लोग आचरण सत्यभाषणादि धर्मयुक्त ब्रह्मचारी रहैं और विद्या की उन्नति करें ॥

---

१. मूल पत्र में 'परमात्मा' के 'रमा' अक्षरों पर टिप्पणी के लिये '१॥' संकेत किया है और चौथे उपदेश के नीचे '१॥' का संकेत देकर मन्त्र का पूरा पाठ दिया है ।

२. यह ऊपर लिखे 'परमात्मानमिति' अधूरे मन्त्र का पूरा पाठ होता है । चौथे उपदेश के नीचे इसलिये लिखा है कि यहां पृष्ठ पूरा होता है और पांचवां उपदेश दूसरे पृष्ठ पर है ।

३. 'सत्य' और 'है' के मध्य का कुछ पाठ मूल कापी में कटा हुआ है, जो पढ़ा नहीं जाता ।

मिति चैत्र बदि १४ गुरुवार सं० १९३९[1] (दयानन्द सरस्वती)[2]

विशेष—प्रथम पत्र (पूर्णसंख्या ७४५) के अन्त में तथा द्वितीय पत्र (पूर्णसंख्या ७८२) के आद्यन्त में लिखित पाठ (जो टिप्पणी में छापा है) से प्रतीत होता है कि जिन पत्रों की हमें फोटो-स्टेट कापी प्राप्त हुई है वे मूल पत्रों की प्रतिलिपियां हैं। अन्यथा गौरीशङ्कर शर्मा द्वारा उन का सत्यापित (तस्दीक) करना उपपन्न नहीं होता। द्वितीय पत्र के अन्त में सत्यापन पाठ के अन्त में सीवनारायण और समर्थदान के हस्ताक्षर भी हमारे अनुमान में सहायक हैं। आश्चर्य की बात है कि इन पत्रों का लेख ऋ० द० के लेख से अद्भुत साम्य रखता है!

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७८३] पत्र-सारांश

[भाई जवारसिंह मन्त्री आर्यसमाज लाहौर[3]]

हमारे पत्रस्थ दो बातों का उत्तर तुमने नहीं दिया। एक तो लाला मूलराज के भाई·······।

चैत्र शुक्ल ३ मङ्गल[4]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७८४] पत्र-सारांश

[कविराज श्यामलदास जी, उदयपुर[5]]

---

१. चैत्र वदी १४ को शुक्रवार था। सम्भव है गुरुवार को भी १४वीं रही हो। ५ अप्रैल १८८३।

२. इसके आगे निम्न पंक्तियां लिखी हुई हैं—

पूर्वोक्त पत्र श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के हस्ताक्षरांकित पंडित कालूराम जी निवास स्थान सेठों का रामगढ़ जिला सीकर इलाके जयपुर के पास हमने अपने नेत्र से देखा है॥ गौरीशंकर शर्मा

ह० सीवनारायण मन्तरी वैदिक धर्म सभा रामगढ़

ह० समर्थदान, रामगढ़ माघ सुदी ९ सं० १९ (आगे संख्या त्रुटित है)

३. इस पत्र का संकेत भाई जवाहरसिंह के ११ मई १९४० के पत्र में है। वहां श्री स्वामी जी के इतने शब्द उद्धृत किये गये हैं। भाई जवाहर सिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें।

४. सं० १९४०। १० अप्रैल १८८३।

५ इस पत्र वा इन विषयों की सूचना बारहट किशनसिंह जी के चैत्र

१. गोरक्षार्थ सही कराने आप जयपुर गये या नहीं ?
२. जोधपुर में गोरक्षार्थ सही हुई या नहीं ?
३. उदयपुर का वृत्तान्त छापं वा नहीं ?
४. डा० भवानीसिंह के विषय में ... ।

—:०:—

५ [पूर्ण संख्या ७८५] **पत्र-सारांश**

[कमलनयन शर्मा, अजमेर]

दामोदर शास्त्री से पूछ कर लिखो कितने रुपयों पर हमारे पास आ सकता है ।[1]

—:०—

[पूर्ण संख्या ७८६] **पत्र-सूचना**

१० [ठाकुर रघुनाथसिंह जी][2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७८७] **पत्र**

ओ३म्

श्रीयुत विहारीलाल जी आनन्दित रहो[3] ।

पत्र तुम्हारा आज आया[4] समाचार विदित हुआ आप लोग
१५ धर्म में दृढ़ रहिये कि जिसका फल आनन्द ही होगा । जो बात श्रीयुत ठाकुर रघुनाथसिंह जी तथा श्रीयुत गोविन्दसिंह जी ने सत्य धर्म रक्षार्थ की है यदि यह ऐसी ही है तो उन को अनेक धन्यवाद देना चाहिये । तुम्हारे लिखे अनुसार **ठाकुर रघुनाथसिंह जी के**

शुक्ल १४ शनिवार सं० १९४० (२१ अप्रैल १८८३) के पत्र में है । तथा
२० पूर्ण संख्या ६९४ तथा ८०२ में भी इस का संकेत है । बारहट किशनसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

१. इस पत्र का सारांश पं० शुकदेव के १७ अप्रैल १८८३ के पत्रानुसार बनाया है । पं० शुकदेव का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

२. इस की सूचना अगले पूर्ण संख्या ७८७ के पत्र में है ।

२५ ३. मूल पत्र ठाकुर नन्दकिशोर ने भेजा था । अब हमारे संग्रह में सुरक्षित है ।

४. बिहारी लाल जी का बिना तिथि का पत्र तीसरे भाग में देखें ।

पास हमने पत्र भेज दिया है। और उसके साथ जो श्रीमान् आर्य्य-कुलदिवाकर महाराणा जी ने हम को मान्यपत्र[1] दिया है और जो हमने स्वीकारपत्र उदयपुर में रजिष्टर कराया है उन की एक एक नकल आज तुम्हारे पास भेजते हैं। कुछ चिन्ता मत करो। जिन का सहाय धर्म है उसी का सहाय परमेश्वर है। जब बुरे बुराई न छोड़ें, तो भले भलाई क्यों छोड़ें। और सब से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा। ५

मि० चै० शु० ६ शनिवार संवत् १६४०[2]　　(शाहपुरा)
(हस्ताक्षर) [दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७८८]　　पत्र-सारांश[3] १०

[मुन्शी समर्थदान, प्रयाग]

हमने २१॥।=) की पुस्तकें गणेशदास एण्ड कम्पनी, तारघर के नीचे बनारस से मंगवाई हैं।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७८९]　　विज्ञापन[4]

विदित हो कि जो विक्रम संवत् १६३७ तदनुसार सन् १८८० १५ में मु० इन्द्रमणि जी रईस मुरादाबाद का मुसलमानों से विवाद होकर मुन्शी जी पर ५००) रु० मजिस्ट्रेट मुरादाबाद ने जुर्माना किया। तब उस पर आर्य्यजनों ने उस मामले को अपना समझ सहाय की थी। वह मामला तभी हो चुका था। परन्तु मेरठ में उस समय इस के लिये यह नियम नियत किया गया था कि मुन्शी २० जी के मुकदमे में से जितना धन बचे वह अच्छे प्रतिष्ठित साहूकार

---

१. यह मान्य पत्र तीसरे परिशिष्ट में देखें।

२. १५ एप्रिल १८८३।

३. इस सारांश की सूचना ऋ० द० के आगे पूर्ण संख्या ७६४ के पत्र में मिलती है। २५

४. मासिक पत्र देशहितैषी, अजमेर, ज्येष्ठ १६४०, पृ० १—५ पर मुद्रित। दयानन्ददिग्विजयार्क भाग ३, पृष्ठ, ११४ के अनुसार यह विज्ञापन 'आर्यसमाज मेरठ' की ओर से दिया गया था।

के यहां ॥) व्याज पर रक्खा जाय। जब कभी ऐसा ही किसी अन्य वैदिक धर्म्मावलम्बी आर्य्य का अन्य मतवादियों से धर्म विषय का विवाद हो के कचहरी में मुकदमा जाय और वह असमर्थ होय तो इन्हीं रुपयों से उस की सहाय की जाय। इस
५ नियम को मुन्शी जी ने भी स्वामी दयानन्दसरस्वती जी आदि के सम्मुख मेरठ में स्वीकार कर लिया था। परन्तु शोक का विषय है कि उक्त मुनशी जी ने ऐसे उत्तम नियम को तोड़ अब हिसाब नहीं देते। और उल्टा चोर कोतवाल को दाण्डे इस के सदृश लाला रामशरणदास रईस मेरठ और स्वामी दयानन्दसरस्वती जी पर
१० मिथ्या दोषारोपण करते हैं। इस कारण मेरठ आर्यसमाज के आय व्यय का हिसाब प्रकाश करना पड़ा। जिस्से मिथ्या भ्रम जैसा मुन्शी जी को हुआ वैसा किसी अन्य सज्जन आर्य्य पुरुष को न होय। और मु० इन्द्रमणि जी का सत्यासत्य इस हिसाब और मुनशी जी के विज्ञापन[1] को देख कर सब पर प्रगट हो जायगा।

१५ मुनशी जी लिखते हैं कि बहुत आर्य्यजनों ने मेरे मुकदमे की सहाय में मेरठ समाज और स्वामी दयानन्दसरस्वती जी के पास धन भेजा था। "उसमें केवल ६००) रु० मेरे पास पहुंचे। बाकी उनके पास रहे।" परन्तु इस मेरठ के मिति वार क्रमानुसार हिसाब देखने से निश्चय होता है कि मुनशी जी के पास उन्हीं के
२० मामले में ८६३॥।=)॥। मेरठ समाज से पहुंचे हैं? न जाने मुनशी जी ने ६००) रु० क्यों अपने विज्ञापन[2] द्वारा प्रकाश किये। इस बात से तो मुनशी जी की असत्यता प्रगट होती है। यदि मुनशी जी का कथन सत्य है तो इन रुपयों के सिवाय लाला रामशरण-दास वा स्वामी जी के पास किसी ने और रुपये भेजे होंय, और
२५ उनके पास उनकी हस्ताक्षरी सहित रसीद होय, शीघ्र प्रकाश करें अथवा करवावें, क्योंकि सांच को आंच कहां। और जो मुंशी जी ने हिसाब के छपवाने में ढच पच की वा और ही कुछ राग गाने लगे तो यह उन के लिये पूरा कलङ्क है। इस के निवारणार्थ उन को अवश्य चाहिये कि जब जब जितना जितना खर्च हुआ है यथा-

---

३० १. यह हिसाब मुन्शी जी ने अन्त तक न दिया।
२. मुन्शी इन्द्रमणि का विज्ञापन परिशिष्ट ३ में देखें।

वत् मिती वार छपवा देवें। और शेष धन आर्य्यसमाज मेरठ में सर्वोपकारार्थ भेज दें। पूर्व स्वीकृत नियम को भी सत्य करें तो बहुत अच्छी बात है। नहीं तो रुपये गये हुये आ भी जाते हैं, परन्तु धर्म्मयुक्त कीर्ति गई हुई कभी नहीं आती।

॥ **सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते**। [गीता २।३४] ॥

सत्पुरुष को मरण से अपकीर्ति बहुत बुरी समझनी चाहिये। यदि हमारे आर्य्यजनों, विशेष उपदेशकों का आरम्भ से मृत्यु तक एकसा सत्याचरण रहे तो देश की बड़ी उन्नति हो। सर्वशक्तिमान् परमात्मा आर्य्यावर्त्त देश पर कृपा करे जिससे हमारे आर्य्यावर्त्तीय उपदेशक अपने किये हुए उत्तम उपदेश को लोभादि दोषों से कलङ्कित न करके आद्योपान्त पर्य्यन्त शुभाचरण से देश की सुदशा बढ़ाया करें। (अलमति विस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु।)

॥ **एति जीवन्तमानन्दः**। [महाभाष्य १।३।१२] ॥

विक्रमी संवत् १९३९ तदनुसार सन् १८८० ई० नकल हिसाब

जो कि मेरठ के समाज और मुन्शी इन्द्रमणि जी के विषय का है।

(आमदनी)		(खर्च)	
३५०)	मार्फत आर्य्यसमाज लाहौर यह तफसील लाहौर के रुपयों की है कि	।)॥	रजष्ट्री मुनशी इन्द्रमणि साहब के पास भेजी ता० ७ अगस्त सन् १८८०
३०)	आर्य्यसमाज मुलतान	३००)	हवालय मु० इन्द्रमणि मार्फत
१००)	आर्य्यसमाज झेलम		ला० श्यामसुन्दर रईस मुरादाबाद
११५)	आर्य्यसमाज लाहौर		ता० ७ अगस्त सन् १८८०
१०५)	मेम्बरान विग्रास	११।)	किराया रेलगाड़ी मेरठ से
५०)	आर्य्यसमाज अमृतसर		मुरादाबाद तक

(आमदनी)

१००) आर्य्यसमाज रुड़की

१००) आर्यसमाज फर्रुखाबाद

२३३॥≡) आर्यसमाज फीरोजपुर

१५०॥–) आर्यसमाज गुर्दासपुर

२४५॥) आर्यसमाज मेरठ। इस रकम में मेरठ शहर के और मेरठ के जिला तीन चार महापुरुषों का जो समाज के मेम्बर नहीं हैं चन्दा शामिल है दिया हुआ।

११) लाला केवलकृष्ण

१३८॥) लाला रकुनराय व लाला मुरलीधर औरंगाबाद से।

१३६॥।) पांड़े रामदीन सेकिंड मास्टर दारजिलिंग।

———

१५१६) संख्या सम्पूर्ण एक हजार पांच सौ सोलह रुपये।

(खर्च)

४ आदमियों का तारीख १४ अगस्त १८८०।

६) किराया रेल बरेली से मेरठ और बरेली से मुरादाबाद तक।

।–) ला० शादीराम के खत का महसूल जो इलाहाबाद से आया।

॥) किराया गाड़ी जो हुल साहेब बैरिस्टर के पास मेरठ में जाते समय दिया गया १४।८।८०।

२३) मुकदमे पहिले में खर्च हुआ मुकाम मुरादाबाद इस का हाल मु० जी को मालूम है।

१७≡)। खर्च रवानगी मेरठ से इलाहाबाद तक ता० ६ सितम्बर सन् १८८०।

३००) वजरिये नोट के मुंशी जी के पास भेजे गये।

।–) खत रजिस्टरी महसूल डाक सहित।

३००) वजरिये हुंडी के मुंशीजी के पास भेजे गये।

१॥) हुंडियावन दिये गये ता० ३०।१०।८०।

३॥) किराया रेल झंडू नोकर मेरठ से अलीगढ़ तक मय वापिस और खुराक के।

–) मु० इन्द्रमणि सा० के

खत का महसूल

६३६।।।=)।।। संख्या सम्पूर्ण।

उक्त बाकी ५५२-)। रु० का ब्यौरा इस प्रकार से है।

११)	आर्यसमाज मुलतान	[११)]	आर्यसमाज मुलतान के लिखने अनुसार उपदेशक मण्डली के धन में जमा किया गया।
३६।≡)	आर्यसमाज जेहलम	३६।≡)	आ०स० जेलम के लेखानुसार वापिस किये गये।
४१।।।≡)	आर्यसमाज लाहौर	४१।।।=)	आ० स० लाहौर तथा
३८।)	मेम्बरान वियास	३८।)	तथा तथा तथा।
१८।)	आर्यसमाज अमृतसर	१८।)	अमृतसर आ० स० के लेखानुसार आर्यसमाज जेहलम को भेजे गये।
३६।≡)	आर्यसमाज रुड़की	३६।≡)	आ०स० रुड़की के लेखानुसार उपदेशक मण्डली धन में जमा किये गये।
३६।≡)	आर्यसमाज फर्रुखाबाद	३६।≡)	आ० स० फर्रुखाबाद के लेखानुसार किसी उचित कार्य में खर्च करने के लिये यहां जमा हैं।
८५-)।	आर्यसमाज फीरोजपुर	८५-)।	आ. स. फीरोजपुर के लेखानुसार वापिस भेजे गये।
५४।।=)	आयसमाज गुरदासपुर	५४।।=)	आ० स० गुरदासपुर के तथा तथा।
८६।।)	आर्यसमाज मेरठ	८६।।)	आ० स० मेरठ के विचार अनुसार अन्तरङ्ग सभा के वापिस लिये गये।
४-)	लाला केवलकृष्ण	४-)	लाला केवलकृष्ण के जवाब न आने से मेरठ

५
१०
१५
२०
२५
३०

			समाज में जमा हैं।
५०≡)	लाला रकुनराय वा ला० मुर्लीधर	५०≡)	ला० रकुनराय वा ला० मुर्लीधर के पास रजिष्ट्री खत भेजा था परन्तु खत पता न लगने से लौट आया इसलिये इन के रुपये यहां जमा हैं।
४६।।।=)	पांडे रामदीन मास्टर	४६।।।=)	पं० रामदीन मा० के लेखानुसार इस रुपये की उनके पास पुस्तकें भेजी गईं॥

५५२–)। सम्पूर्ण संख्या

पाठक गण! अब देखिये यह अपराध भी मुं० इन्द्रमणि जी पर हुआ, कि यदि मुन्शी जी पूर्व स्वीकृत नियमानुसार वर्तते तो उक्त ५५२–)। ये रुपये सर्वोपकार आर्य्यधर्म्म रक्षा में लगते। और आर्यसमाज मेरठ मुन्शी जी के अन्यथा व्यवहार पर शोक कर के हिस्सेवार वैदिकधर्म रक्षणार्थ धन को पुनः दाताओं के पास क्यों फेर देते। जैसे थोड़े से उदार आर्यों ने वैदिक धर्मोपदेशक मंडली के लिये अपना-अपना भाग दे दिया वैसे सब धन आर्य्यावर्त्त देशोन्नति में लगता तो कितनी अच्छी बात होती। परन्तु ऐसी-ऐसी तुच्छ बातों से देशहितैषी महाशय जन देशोन्नति करने में उदासीन न हों, किन्तु जब बुरे बुराई नहीं छोड़ते तो भले भलाई क्यों छोड़ें[1]?

ह० दयानन्द सरस्वती

—:o:—

१. पं० लेखरामकृत उर्दू जीवन चरित पृ० ८१६ से ८२२ तक (हिन्दी सं० पृष्ठ ८४६—८५२) तक छपा। पं० जी ने भारतमित्र कलकत्ता २६-४-१८८३ से लिया। भारतमित्र के लेखानुसार "शाहपुरा" से भेजा गया।

[पूर्ण संख्या ७९०] **पत्र-सारांश**

[मुंशी समर्थदान वै० य० प्रयाग]

जब तक ईश्वरानन्द पढ़ता रहे उसे ५)रु० मासिक मिलता रहे[1]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७९१] **पत्र** ५

ओ३म्[2]

श्रीयुत लाला कालीचरण रामचरण जी आनन्दित रहो।

पत्र तुम्हारा महादेव पंडित के पत्र के साथ आया[3]। समाचार विदित हुआ। समाज का उत्सव अच्छी प्रकार हो गया, यह बहुत सौभाग्य की बात हुई। जो महादेव पण्डित के विषय में जो तुम ने १० कुछ अनुमान किया सो हमको नहीं दीखता। यह पण्डित धनार्थी है धर्मार्थी नहीं। क्योंकि इस का पत्र इस बात की सिद्धी करता है। जैसा कि कानपुर में एक पंडित को रक्खा था और पश्चात् खराब निकला। इन लोगों का विश्वास हमारे हृदय में तभी होगा कि जब उनका वर्तमान प्रत्यक्ष वा परोक्ष में एक सा देखा जाय। १५ इस पत्र के साथ मान्यपत्र की नकल भेजते हैं। मेरठ से आया हुआ मुंशी इन्द्रमणि का हिसाब[4] इस लिये नहीं भेजते कि तुम को प्रेस एक्ट के मिथ्या भ्रम ने भ्रान्त कर रक्खा है। अथवा मुंशी इन्द्रमणि से किसी प्रकार का सम्बन्ध होगा। अस्तु जो हो। तुम्हारा प्रबन्ध भी पाठशाला विषयक अच्छा नहीं है। अब कई बार हमने २०

---

१. यह अंश पं० देवेन्द्रनाथ सङ्कलित जीवनचरित पृष्ठ ६८८ में निर्दिष्ट है।

२. मूल पत्र आर्यसमाज फर्रुखाबाद में सुरक्षित है। म० मामराज जी ने जनवरी सन् १९२७ में प्रतिलिपि की। फर्रुखाबाद का इतिहास पृ० २०२-२०३ पर कुछ पाठभेद के साथ छपा है। इस पत्र के उत्तर में लिखा २५ २ मई १८८३ का पत्र तीसरे भाग में देखें।

३. लाला कालीचरण रामचरण का १९ अप्रेल १८८३ का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

४. पिछली पूर्णसंख्या ७८९ पर मुद्रित।

लिखा कि पंडित लक्ष्मीदत्त जी के आने के पश्चात् वा पहले संस्कृत में कौन-कौन ग्रंथ का किस-किस ने वा कितनों ने पढ़ा वा पढ़ते हैं। उसका समाचार कुछ भी नहीं लिखा। इससे विदित होता है कि **तुम्हारी पाठशाला में अलिफ बे और कैट बैट का धर्मार[1] है जो कि आर्य्यसमाजों को विशेष कर्त्तव्य नहीं है।** और इसके साथ पंडितों का हिसाब भेजते हैं देखलो। तुम अपने हिसाब से मिला लो। और आगे रु० शाहपुरा राज मेवाड़ के पते से मेरे पास भेज दो। और सब से बाबू जी आदि से हमारा आशीर्वाद कह देना।

मि० वै० व० ३ सं० १९४६[2]। (हस्ताक्षर)[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७९२] पत्र-सूचना

[मुंशी समर्थदान, वै० य० प्रयाग[4]]

पत्रों का उत्तर………। [वै० कृ० ३ सं० १९४० (२५ अप्रेल १८८३)]

—:o:—

[पूर्णसंख्या ७९३] पारसल-सूचना

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]

यजुर्वेदभाष्य के मई के अङ्क के लिये भेजे गये पत्र][5]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७९४] पत्र

ओ३म्[6]

---

१. अर्थात् भरमार = आधिक्य। २. २५ एप्रिल, बुध, सन् १८८३।

३. इस पत्र पर ऋषि के हस्ताक्षर नहीं हैं। सारा पत्र लेखक के ही हाथ का है। ऋषि का एक भी अक्षर नहीं है। इस लेखक के लिखे और भी कई पत्र हैं।

४. इस की सूचना अगले पूर्णसंख्या ७९४ में है। तिथि का निर्देश भी उसी पत्र के अनुसार किया है।

५. इस की सूचना अगले पूर्णसंख्या ७९४ के पत्र में है।

६. मूल पत्र परोपकारिणी सभा में सुरक्षित है।

मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो !

तुम्हारे सब पत्रों का उत्तर और पुस्तक के बंडल के विषय का पत्र कल तक भेज चुके हैं। आज एक विशेष समाचार के लिये लिखते हैं। जो तुम को पंड्या जी ने उदयपुर का वर्त्तमान न छापने के विषय में लिखा था उसको सुनकर हमने उदयपुर को लिखा था[1] कि इस को छपवावें वा नहीं। वहां से उत्तर आया[2] निसंक छपवा दीजिये। सो इन के छपवाने में विलम्ब न कीजिये। इस लिये अब स्वीकारपत्र, मान्यपत्र और धन्यवादपत्र उत्तम कागज पर छपवा कर सब समाजों में और जहां उचित समझो भेज दो। अर्थात् जहां जहां लाइब्रेरी वा उत्तम समाचार पत्रों में भी भेज दो। और हमारे पास भी उसकी १०० नकल भेज दो। और टाइटल पेज पर भी उदयपुर का वर्तमान छपवा दो[3]।

और गनेशदास और कम्पनी तारघर के नीचे चांदनी चौक के उत्तर नई सड़क बनारस के पास से हम पुस्तक अनेक बार मंगवाते हैं। और उनका व्यवहार वैदिक यन्त्रालय के साथ है। और कुछ कमीशन तुम भी उनको देते होगे और वो तुमको देता होगा। तुम उस को एक चिट्ठी भेज दो कि स्वामी जी जो जो पुस्तकें मंगवावें भेज दिया करो और हमारे हिसाब में लिख लो क्योंकि उसका कमीशन वैदिक यन्त्रालय में रहा करे। अभी हम २१।॥=) आने के पुस्तक मंगवा चुके हैं जिस का हाल तुम को लिख दिया[4]। और दो एक दिन में ५०) रु० या ६०) रु० के पुस्तक श्रीयुत महाराजाधिराज हमारे द्वारा मंगवावेंगे। **और गनेशदास का व्यवहार शुद्ध है क्योंकि हमने उसकी दूकान से हजारों रुपये की पुस्तकें ली हैं।** और कमीशन भी कुछ देता था, हमको ठीक याद नहीं। तुम ने तो उस से कमीशन का खुलासा कर लिया होगा।

---

१. द्र० — पत्र-सारांश, पूर्णसंख्या ७८४, पृष्ठ ८१३।

२. द्र० — तीसरे भाग में बारहठ किशनसिंह का सं० १९४० चैत्र शु० १४ (=२१ अप्रैल १८८३) का पत्र।

३. उदयपुर का वृत्तान्त वेदभाष्य के टाइटल पर किस अङ्क में छपा, यह हमें ज्ञात नहीं हुआ।

४. द्र० — पत्र-सारांश, पूर्णसंख्या ७८८, पृष्ठ ८१५।

यदि न करा हो तो अब कर लेना। पूर्व पत्रों का उत्तर और इस का उत्तर शीघ्र लिखना।

आज तुम्हारा २३-३[1] का पत्र पहुंचा[2] समाचार विदित हुये। ईश्वरानन्द वहां पहुंच गया, अच्छा हुआ। और रामनाथ को ५ तुमने लौटा दिया होगा, अच्छा किया। जैसा तुम ने उस का सूची पत्र बनवाया है उसको बहुत जल्दी छपवाओ। यजुर्वेद के पत्रे भेज दिये हैं पहुंचे होंगे। ऋग्वेद के भी अब भेजने वाले हैं। परन्तु यह समझो कि यजुर्वेद भेजा है मई महीने का। और जो यह ऋग्वेद का भेजेंगे जून का है। अब हम आगे यजुर्वेद के पत्रे जुलाई की १० ५वीं तारीख तक पहुंचेंगे। बीच में भले ही तुम जब आधा जून हो हमको स्मरण देना। वैसे ही आगे को भी भेजा करेंगे।

मुम्बई से आज लीलाधर हरिदास[3] का पत्र[4] आया है। उस में लिखा है कि टैप ढल रहे हैं। बहुत अच्छी बात है।

अब जो तुम ने ज्वालादत्त के लिये भाषा बनाने के विषय में १५ लिखा उसके ये नियम हैं। यदि स्वीकार करेगा तो रक्खेंगे, नहीं तो नहीं।

(१) यदि वह १७) रुपये ही अपना मासिक रखना चाहे तो १६ मन्त्र की भाषा प्रतिदिन बनानी पड़ेगी, चाहे वह गायत्री छन्द हो चाहे उत्कृति[5] अर्थात् छोटे बड़े मन्त्र सब गिनती में आवेंगे।

२० (२) अक्षर स्पष्ट और चित्त लगाकर सुन्दर भाषा बनानी होगी।

(३) जो तुमने प्रयाग में नौकर रखा है, वह हमारी पुस्तकें

---

१. २३-४ चाहिये। यह पूर्णसंख्या ७९४ का पत्र २६ अप्रैल को लिखा गया।

२५ २. यह पत्र प्राप्त नहीं हुआ।

३. लीलाधर हरिदास रचित 'सत्यासत्यविचार' नामक पुस्तिका का उल्लेख पूर्व ६९४ पृष्ठ पर आया है। विशेष 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' ग्रन्थ के परिशिष्ट पृष्ठ ८४, ८५ पर देखें।

४. लीलाधर हरिदास का सं० १९३९ (गुजराती सं०, उत्तर भारतीय ३० १९४०) चैत्र शुक्ल १५ शनैश्चर का पत्र तीसरे भाग में देखें।

५. गायत्रीछन्द २४ अक्षरों का और उत्कृति १०४ अक्षरों का होता है।

सहर्ष प्रूफ सोधे देवे। और जहां उसको संदेह पड़े ज्वालादत्त से पूंछ ले। और शिवदयाल को ईश्वरानन्द भी कुछ सहाय दिया करेगा। अन्त का प्रूफ जिस पर छापने की आज्ञा दी जाती है वह एक बार ज्वालादत्त और शिवदयाल देख लिया करें। उसके सिवाय ज्वालादत्त को कुछ न करना होगा, किन्तु भाषा ही बनाना होगा।

(४) यदि उस पर उसकी प्रसन्नता न हो तो घर को चला जाय। यदि घर में रह कर भाषा बनाना चाहे तो उसको ८) रु० माहवारी देवें और १२ मन्त्र की भाषा प्रतिदिन बना दिया करे। बाकी अपना घर का काम किया करे। डाक और कागज का खर्च हमारा होगा। और यन्त्रालय में अच्छी भाषा और कुछ अधिक करेगा तो उसका मासिक यथायोग्य बढ़ा दिया जायगा।

(५) यदि वह कहे कि इतनी भाषा मुझ से नहीं बनाई जाती तो उस का कहना व्यर्थ है। क्योंकि जब **हम दो घंटे वा अढ़ाई घंटे अथवा तीन घंटे में २४ गायत्री मंत्र, १२ त्रिष्टुप् और १० जगती छंद[1] का भाष्य सुखपूर्वक बना लेते हैं** तो उस से अधिक समय और परिश्रम कभी नहीं लग सकता। इन दोनों बातों पर उसकी प्रसन्नता न हो तो हम को भी उस पर कुछ प्रसन्नता नहीं। यदि वह घमण्ड करके चला जायगा तो ऐसी जीविका कहीं नहीं मिलेगी और दुःख पावेगा। और हमारी कुछ भी हानि नहीं, क्योंकि हम तो दूसरे को रखके भाषा बनवा लेंगे। और उसके सिवाय पश्चात्ताप के कुछ भी हाथ न लगेगा। घर पै जाके दशगात्रादि मृतक कर्म कराके मुर्दाविधान खाया करेगा। यह सब बातें तुम उसको समझा दो। पश्चात् जैसा हो वैसा हमको १० दिन [के] भीतर शीघ्र उत्तर लिखा भेजो। पीछे हम भाषा बनाने के लिये पत्र भेजेंगे, पूर्व नहीं।

ईश्वरानन्द को हमने जैपुर भेजा था। उस ने उस का वर्तमान कुछ नहीं लिखा। सो क्या बात है। सो उस से पूछ कर लिख देना।

---

१. गायत्री में २४, त्रिष्टुप् में ४४ और जगती में ४८ अक्षर होते हैं।

मि० वै० कृष्ण ४ सं० १९४०[1]। हस्ताक्षर
[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७९५] पत्र

ओ३म्[2]

स्वामी ईश्वरानन्दजी आनन्दित रहो।

१—सब यन्त्रालय के पदार्थ और नौकरों पर दृष्टि रखना कि नियमानुसार सब काम होते हैं वा नहीं।

२—जब कभी जिस किसी का व्यतिक्रम देखे तो जो शिक्षा करने से सुधर सक्ता हो तो वहीं सुधार देना, न माने तो हम को लिखना।

३—प्रति अष्टवारे वहां का वर्त्तमान पत्र द्वारा हम को भेजा करना और यथाशक्ति जो कोई पुस्तक छपे उसको दूसरे के साथ मिलकर वा स्वयं शोधा करना।

४—और जब कभी तुज को व्यतिक्रम विदित हो, तब, वा जब हम लिखें तब अपने सामने डाक खुलवाना और पुस्तकालय तथा धन, कोश और अन्य पदार्थों की सम्हाल से यथावत् रक्षा करना।

५—यावत् प्रबन्धकर्त्ता का व्यतिक्रम कोई विदित न हो तब तक उसके साथ मिलकर उसको सहायता देना और प्रीति प्रेम से यन्त्रालय की उन्नति करते रहना। ५) रुपये मासिक प्रतिमास यन्त्रालय से मिला करेंगे। उनसे खान पानादि उचित व्यवहार करना। और जब कभी अधिक व्यय की इच्छा हो तब हम को लिखना।

६—सदा व्याकरण पढ़ने में परिश्रम किया करना और नियत समय पर यन्त्रालय का भी काम किया करना।

७—शरीर का संरक्षण, प्रातः व्यायाम, भ्रमण, सदा शास्त्रों का चिन्तन करना और जब तक तेरे स्थान को दूसरा निज पुरुष न आवे तब तक कहीं न जाना। धर्म से घर के समान काम किया

---

१. २६ एप्रिल १८८३।

२. म० मुंशीराम सम्पादित पत्रव्यवहार पृष्ठ १७-१८ पर मुद्रित।

करना। वैदिकयन्त्रालय से वेदाङ्गप्रकाश के पुस्तक लेकर पढ़ा करना[1]।

(हस्ताक्षर) दयानन्द सरस्वती[2]
शाहपुरा राज मेवाड़ राजपूताना

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७९६]   पत्र   ५

ओ३म्

श्रीयुत श्रीमान् महाशय आनन्दित रहो !

यहां जो नहर आपके खुदाई जाती है वह ३ फुट ऊपर ३ फुट नीचे और ३ फुट चौड़ी खुदाई जाती है सो मेरी समझ में ३ फुट चौड़ी ४ फुट ऊपर और दो फुट नीचे रहना बहुत अच्छा है। इस का विशेष गुण आपको श्याम को समझा दूंगा। इत्यलम्। १०

वैशाख कृष्ण ४ गुरु सं० १९३९[3]।

हस्ताक्षर
[दयानन्द सरस्वती[4]]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ७९७]   पत्रांश   १५

[भाई जवाहरसिंह, मन्त्री आर्यसमाज लाहौर]

....

मुझ को निश्चय है कि आप के आने से यहां बड़ा आनन्द और

---

१. इस में तिथि का निर्देश नहीं है। अनुमान से यहां धरा है। वै० शु० ३ सं० १९४० (९ मई १८८३) के पूर्णसंख्या ८०५ के पत्र में २० ईश्वरानन्द का अन्यत्र चला जाना लिखा है। अतः यह पत्र उस से पूर्व का है।

२. म० मुन्शीराम द्वारा सम्पादित पत्रव्यवहार पृष्ठ १८ पर हस्ताक्षर नहीं हैं।

३. संवत् १९४० चाहिये। २६ एप्रिल १८८३। २५

४. जिस समय स्वामी जी शाहपुरा में विराजते थे, उस समय वहां नहर की खुदाई हो रही थी। उसे देखकर अपने रहने के स्थान से ही स्वामी जी ने श्री दर्बार के पास यह पत्र भेजा था। मूल पत्र राजकार्यालय शाहपुरा में सुरक्षित है।

उन्नति होगी[1] ।..............

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७९८] पत्रांश

[पं० छगनलाल द्विवेदी, मसूदा]

....

५ अब जब कभी हम मसूदे में आवें[गे] तब श्री दरबार को और तुम को छ: शास्त्र के मुख्य मुख्य विषय और मनुस्मृति के तीन अध्याय पढ़ाना चाहते हैं। उस समय वहीं रहना हो और निरन्तर पढ़ाना हो तो एक आध महीने में सब हो जावेंगे। इसका उत्तर लिखना। और यहां के श्री महाराजाधिराज ने मनुस्मृति का १० सप्तमाध्याय पढ़ लिया है। दो दिन योगशास्त्र अभ्यास करने के लिये पढ़ कर कल अष्टमाध्याय का आरम्भ करेंगे। ....

शाहपुरा

[वैशाख वदी ७ संवत् १९४० से कुछ दिन पहले लिखा गया[2]।]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ७९९] पत्र

१५ ओ३म्[3]

बाबू नन्दकिशोर जी आनन्दित रहो !

---

१. भाई जवाहरसिंह ने ऊपर मुद्रित अंश 'रद्दे बुतलान' पृ० ६८ पर छापा है। दयानन्दचरित-दर्पण पृ० २७२ पर इतना लेख अधिक है—

"भाई जवाहरसिंह जी आनन्दित रहो।

२० आपका पत्र पाया विशेष आनन्द हुआ। आप रियासत जोधपुर में अवश्य आओ मुझको निश्चय ....।" नहीं कह सकते कि इतना अंश मुंशी जीयालाल जैनी ने कहां से लिया। इन पंक्तियों वाला पत्र जोधपुर बुलाने के लिये नहीं था। भाई जवाहरसिंह को शाहपुरा बुलाने के लिये लिखा था।

२५ २. यह अंश पं० छगनलाल के सं० १९३९ वैशाख बदि ७ के पत्र में उद्धृत है। इस पत्र में सं० १९३९ के स्थान में १९४० होना चाहिये। क्योंकि पत्र के आरम्भ में '**सिद्धि श्री शाहपुरा शुभ स्थाने**' का निर्देश है। पं० छगनलाल का पत्र तीसरे भाग में देखें।

३. मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

आज जैपुर समाज से पत्र आया[1]। उसके पहले भी आया था[2] और आपने जिस पण्डित के लिए विज्ञापन[3] दिया है इत्यादि से आप के समाज का समाचार हम जान कर यह पत्र लिखते हैं[4] कि उस पण्डित का क्या नाम है। यदि वह जैसा तुम ने विज्ञापन दिया है वैसा ही है तो उन पण्डित जी को यहां शाहपुरा में हमारे पास भेज दीजिये। हम उन की परीक्षा कर के तुम्हारे लिखे प्रमाणे २०) रु० से कम माहवारी न करके किसी योग्य स्थान पै रख देंगे, वा उतने ही माहवारी पर हम अपने ही पास रख लेंगे। एक बार यहां हमारे पास भेज दो।

द्वितीय यह बात है कि कल तुम्हारे पास जो स्वीकारपत्र उदयपुर राज यन्त्रालय में छपा है और जो एक मान्य पत्र श्रीमान् आर्यकुलदिवाकरों ने मुझे दिया है उन दोनों की दो दो नकल तुम्हारे पास भेजते हैं। उन में से एक एक नकल तो तुम अपनी लायब्रेरी में रखना और एक एक नकल आर्य्यधर्म सभा जयपुर के समाज में देना। इन दोनों बातों का उत्तर नागरी में लिखकर भेजना। इस बात से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप की सभा निर्विघ्नता से सदा बढ़ती है। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर सब मनुष्यों पर कृपा करे कि सब की आत्मा असत्य अधर्म व्यवहार से छूट कर सत्य धर्म व्यवहार में प्रवृत्त रहे। सब आर्यसमाज में मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा—

मि० वै० कृ० ७ सं० १९४०। तदनुसार ता० २९ अपरेल सन् १८८३ ई०।

हस्ताक्षर
[दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

१. यह पत्र हमें उपलब्ध नहीं हुआ।

२. यह पत्र भी हमें उपलब्ध नहीं हुआ।

३. इस विज्ञापन के सम्बन्ध में भी हमें कुछ ज्ञात नहीं हुआ।

४. इस पत्र के उत्तर में बा० नन्दकिशोर जी ने ज्येष्ठ कृष्णा ३० सं० १९४० (५ जून १८८३) को पत्र लिखा था। नन्दकिशोर जी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[पूर्ण संख्या ८००] पारसल-सूचना

[बाबू नन्दकिशोर जी, जयपुर][1]

१. स्वीकारपत्र दो प्रति।

२. मान्य-पत्र दो प्रति।

५ वै० कृ० ८, सं. १९४०=३० अप्रैल १८८३।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८०१] पत्र

ओ३म्[3]

श्रीयुत रावराजा श्रीमान् तेजसिंह जी आनन्दित रहो—

श्रीमान् का पत्र संवत् १९४० वैशाख वदी ३ रविवार का
१० लिखा[4] मेरे पास वैशाख वदी ८ सोमवार को पहुंचा। जिसके साथ मुंशी दामोदरदास जी का भी पत्र था[5]। बांच कर बड़ा ही आनन्द हुआ। मैं आनन्दपूर्वक जोधपुर आने का निमन्त्रण स्वीकार करता हूं। और श्रीमान् महाशय महोदय जोधपुराधीशों, श्रीमान् महाराजे श्री प्रतापसिंह जी तथा आपको अनेक धन्यवाद देता हूं कि
१५ जिन आप लोगों ने मेरे वहां जोधपुर में आने के लिये प्रीति प्रकाश की। अब मुझ को दृढ़ निश्चय इस बात से हुआ कि आर्यावर्त की उन्नति होने का समय आया है। जब श्रीमान् जोधपुराधीश आदि की वैदिक सत्य धर्म और सनातन राजनीति पर प्रीति हुई है। पुनः हम लोगों के सौभाग्य के उदय होने में कुछ सन्देह नहीं। और
२० इस बात से परम आनन्द हुआ कि जो मुंशी दामोदरदास जी ने

---

१. इस की सूचना पूर्ण संख्या ७९९ के पत्र में है।

२. पूर्ण संख्या ७९९ में 'कल तुम्हारे पास ·· ·· ·· भेजते हैं' निर्देश के अनुसार हमने तिथि का निर्देश किया है।

३. रावराजा तेजसिंह जी के पास था।

२५ ४. यह पत्र हमें उपलब्ध नहीं हुआ। अगले ऋ० द० के वैशाख शु० ४ सं० १९४० (१० मई १८८३) के पूर्ण संख्या ८१२ पर छपे पत्र के अनुसार रावराजा तेजसिंह का पत्र ऋ० द० ने कविराज श्यामलदास जी को भेजा था।

४. सम्भव है यह पत्र भी कविराज श्यामलदास को भेजा गया हो।
३० हमें नहीं मिला।

आप की उन्नति होने का विषय लिखा। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर से मैं प्रार्थना करता हूं कि आप लोगों की उन्नति कृपा कटाक्ष से सदा किया करें। और स्वदेशोन्नति में आप सब लोगों को दृढो-त्साही कर के आप लोगों के द्वारा सब आर्य्यावर्त देश की बढ़ती कराके इस महापुण्य कीर्ति के भागी आप लोगों को करे। ५

(१) मैं आज से १० दश वा १५ पन्द्रह दिन में दूसरी चिट्ठी आप को लिखूंगा[1] कि जिस में पाली के स्टेशन से जोधपुर आने में जितनी वा जैसी सवारी भेजनी, व जो जो उचित प्रबन्ध होना योग्य होगा लिखूंगा। उसी के अनुसार प्रबन्ध आप कर देवेंगे। १०

(२) यहां श्रीमान् महारा[जा]धिराज मनुस्मृति का राजधम पढ़ रहे हैं। सात आठ दिन में पूरा हो जायगा। और ५ पांच सात दिन, एक राज में और दूसरा पुण्डरीक जी के यहां अग्निहोम का प्रारम्भ होगा उस में उचित उपदेश वा विधि बतलाने में लगेंगे। १५

(३) मैं अनुमान करता हूं कि गत दिन आप का पत्र शाहपुरा-धीशों को दिखलाया। उस से अनुमान होता है कि जोधपुर में शीघ्र आने में सम्मति कठिनता से देंगे। सम्मति शीघ्र होने के लिये यह उपाय है कि जब मेरा दूसरा पत्र आपके पास आवे तभी आप किसी दूसरे पुरुष को यहां भेज देवें। वे कहेंगे और पश्चात् मैं भी २० विशेष कहूंगा तो आशा है कि मान जावेंगे, क्योंकि शाहपुराधीश बड़े बुद्धिमान् हैं। इस में आप[2] २० दिन के भीतर समय का विलम्ब है कि इसी समय में मेरा पत्र वहां आता और वहां से योग्यपुरुष का यहां आना मेरी सम्मति है। अधिक विलम्ब होना मैं भी उचित नहीं समझता। २५

(४) मैं जैसा सत्यधर्म की उन्नति और स्वदेश का उपकार होने में प्रसन्न होता हूं वैसा किसी अन्य बात पर नहीं। क्योंकि यही मनुष्य जन्म, विद्वान्, राजा वा धनाढ्य होने का मुख्य फल है, जिस को कि आप लोग तन मन धन और पुरुषार्थ से करना

---

१. देखो पूर्ण संख्या ८०७ का पत्र। ३०

२. यहां पाठ कुछ भ्रष्ट है।

चाहते हैं। और यह आप लोगों ही का कर्तव्य कर्म है। अब परमेश्वर ने चाहा तो थोड़े ही समय में मैं और आप लोग समक्ष होकर जोधपुर में आनन्दोन्नति करने में प्रवर्तमान होंगे। मेरी ओर से महाराजे श्री प्रतापसिंह आदि से आशीर्वाद कह दीजियेगा। ५ अलमतिविस्तरेण।

वैशाख वदी ६ भौम संवत् १९४०[1]।

दयानन्द सरस्वती
शा[ह]पुरा राज मेवाड़

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८०२] पत्र

ओ३म्[2]

१० श्रीयुत कविराज श्यामलदास जी आनन्दित रहो।

विदित हो कि बहुत दिन हुए वहां के समाचार विदित होने में। अब आप श्रीमानों और आप के लिखने योग्य वर्तमान लिख भेजिये जिस्से विदित हो कि उन डाक्तरों के कृत्य से क्या गुण १५ हुआ। और क्या क्या हो रहा है। आगे कैसा अनुमान होता है। इसमें डाक्तर लोग भी यही पथ्य कहेंगे कि ब्रह्मचारी रहना, घोड़े पर न चढ़ना तथा मांसाहारादि [का] एक वर्ष वा ६ छः महीने अथवा ४ चार महीने तक पथ्य भी यथावत् रखना होगा।

(२) आपके लेखानुसार[3] उदययुर का वर्तमान छापने के लिये २० वैदिक यन्त्रालय प्रयागादि में आज्ञा दे दी है[4]। थोड़े ही दिन में छप के प्रसिद्ध हो जायगा।

(३) एक नूतन वर्तमान यह है कि श्रीमान् जोधपुराधीशों की आज्ञा से श्रीयुत महाराजे प्रतापसिंह जी तथा श्रीयुत रावराजा तेजसिंह जी और बाहारट अमरदान जी आदि ने मुझको शीघ्र २५ जोधपुर में बुलाने के लिये पत्र भेजा है। सो गत दिन मेरे पास

---

१. १ मई १८८३।

२. मूल पत्र ठाकुर किशोर सिंह जी के संग्रह में है। पं० चमूपति सम्पादित पत्रव्यवहार पृष्ठ १८१-१८२ पर छपा है।

३. द्र०—पृष्ठ ८२३ की टि० २। यह निर्देश बारहट किशनसिंह के ३० पत्र में था।

४. द्र० पूर्णसंख्या ७९४ के पत्र के आरम्भ में।

यहां शाहपुरा में पहुंचा है[1]। इसमें आप सर्वाधीशों से पूछ कर अनुमति लिख भेजिये कि यहां क्या होना उचित है। मैंने उसको इस प्रकार का पत्र भेजा है कि जब मेरा द्वितीय पत्र आप लोगों के पास पहुंच जाय तभी पाली के स्टेशन से जोधपुर तक सवारी आदि का प्रवन्ध कर दीजियेगा। मैंने यह विचारा कि जब उदय- ५
पुर से प्रत्युत्तर आजायगा तभी जोधपुर में जाने के लिये नियत समय की सूचना तुम को लिख दी जायगी।

श्रीयुत महाराज राजाधिराज जी का पढ़ना रह जायगा। मनुस्मृति के तो ३ अध्याय हो जावेंगे किन्तु शास्त्रों का विषय रह जायगा। तथापि श्रीमानों की अनुमति से जाना होगा। पांच छः १०
दिनों में मनु का ९ वां अध्याय पूरा हो जायगा। और ८ दिनों में अग्निहोत्र का विधि भी हो जायगा। यहां सदा के लिये दो अग्निहोत्र हुआ करेंगे[2]। एक राज में और द्वितीय पुंडरीकजी के यहां। आप जोधपुर में अभी होकर आये हैं। इस लिए आप भी मुझ को लिखिये। और जो उचित हो तो जिस किसी को जोधपुर में १५
लिखना। अखिलेशों की संमति हो सो भी यहां लिख भेजिये। जो ५१ नियम[3] राजनीति के लिखकर श्रीमानों को दिये थे उसकी १ नकल हमारे पास अवश्य भेज दीजियेगा और सब [से] मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

मि० वै० कृ० ९ सोमवार सम्वत् १९४०[4]। २०

[दयानन्द सरस्वती]
(शाहपुरा)

---

१. इनमें से रावराजा प्रतापसिंह के पत्र का निर्देश पूर्ण संख्या ८०१ के पत्र में है। सम्भव है तेजसिंह के पत्र में ही इन महानुभावों की ओर से बुलाने का भी निर्देश हो। यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ। २५

२. इस निर्देश से स्पष्ट है कि शाहपुराधीश नाहरसिंह के यहां जो श्रौताग्नि का आधान किया गया था वह ऋ० द० के निर्देश से हुआ था। ऋ० द० श्रौतयज्ञों की विधि को यथार्थ मानते थे। इस के लिए ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का 'प्रतिज्ञाविषय' प्रकरण देखें।

३. ये ५१ नियम पूर्ण सं० ७२९ (पृष्ठ ७५५-७६४) पर छपे हैं। ३०

४. ३ मई सन् १८८३।

[पूर्ण संख्या ८०३] पत्र

पण्डित गोपालराव हरि जी आनन्दित रहो।

आज एक साधू का पत्र मेरे पास आया[1]। वह आप के पास भेजता हूं। साधू का लेख सत्य है। परन्तु आपने चित्तौड़ सम्बन्धी
५ इतिहास में न जाने कहां से क्या सुन सुना कर लिख दिया। उस काल उस स्थान में मेरा उदयपुराधीश से केवल तीन ही बार समागम हुआ। आप ने प्रतिदिन दो बार होता रहा, लिखा है। आप जानते हैं कि मुझे ऐसे कामों के परिशोधन का अवकाश नहीं। यद्यपि आप सत्यप्रिय और शुद्धभाव-भावित ही हैं और इसी हित-
१० चित्त से उपकारक काम कर रहे हैं, परन्तु जब आपको मेरा इतिहास ठीक ठीक विदित नहीं, तो उसके लिखने में कभी साहस मत करो। **क्योंकि थोड़ा सा भी असत्य हो जाने से सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य बिगड़ जाता है।** ऐसा निश्चय रक्खो। और इस पत्र का उत्तर शीघ्र भेजो।

१५ वैशाख शुक्ल २ सम्वत् १९३९[2]। स्थान शाहपुरा[3]।

(दयानन्द सरस्वती)

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८०४] पारसल-सूचना

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग][4]

ऋग्वेदभाष्य के पत्रे पृष्ठ १५७८ से लेकर १६९७ तक।[5]

—:o:—

---

२० १. इस साधु जी का नाम अमृतराम वेदान्ती था। साधु जी का पत्र तथा साधु जी को लिखा गया पं० गोपालराव हरि का ता० २७-४-८३ का उत्तर दोनों तीसरे भाग में देखें। इन्हें पं० गोपालराव हरि ने दयानन्द-दिग्विजयार्क के तीसरे भाग में भी छापा है।

२. संवत् १९४० चाहिये। ८ मई १८८३। तिथि की भूल हो सकती
२५ है। ९ एप्रिल भी सम्भव है।

३. दयानन्ददिग्विजयार्क तृतीय खण्ड से लिया गया। फर्रुखाबाद का इतिहास पृ० २०१ से १०२ पर भी छपा है।

४. इस की सूचना अगले पूर्ण संख्या ८०५ के पत्र में है।

५. ऋग्वेदभाष्य के पृष्ठ १२३० से १५२१ तक के पृष्ठ भेजने का

[पूर्ण संख्या ८०५] पत्र

(ओ३म्)

मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो --[1]

१--पत्र तुम्हारा आया[2] वर्तमान विदित हुआ। जैनियों की पुस्तक का बंडल प्राप्त होने से निश्चय हुआ। ५

२--ईश्वरानन्द कहीं अन्यत्र चला गया है। वह बड़ा चंचल है। बहुत लोगों के कहने से हमने दीक्षा दी और तुम लोग भी प्रसन्न हुए, परन्तु प्रसन्नता का काम करे जब ठीक है।

३--कम्पोजीटर के निकालने से हानि हुई। परन्तु जैसे बने उन सब को जो कि पूर्व थे रख लो। किसी का ॥) आना किसी १० का १) रुपया अधिक बढ़ा कर रख लो। क्योंकि **वेदाङ्गप्रकाश और सत्यार्थप्रकाश बहुत जल्द छपना चाहिये।**

४--तुमको हम निश्चित कहते हैं कि बाहर का काम किसी का मत छापो। सत्यार्थप्रकाश और वेदाङ्गप्रकाश के छपने में देर होने का कारण बाहर का काम है। और देशहितैषी और भारत- १५ सुदशाप्रवर्त्तक और प्रयाग समाचार सब का छापना बन्द कर दो। और उनको लिख दो कि तुम्हारी इच्छा हो जहां छपवाओ। क्योंकि हमने पहिले ही लिखा था[3] कि जब हमारे निज काम में हर्कत होगी उसी वक्त हम बन्द कर देंगे। सो हर्कत बहुत होती है। **क्योंकि यह यन्त्रालय रोजगार के वास्ते नहीं है, केवल सत्यशास्त्रों** २० **को छापकर प्रसिद्ध करने के लिये है, न कि व्यापार के लिये।** यहां छापने को बहुत है जितना चाहो उतना छापो। इन समा-

---

निर्देश पूर्ण संख्या ५४५ (भाग १, पृष्ठ ५८६) के पत्र में है। १५२२ से १५७७ तक के पृष्ठ कब भेजे गये, इस का निर्देश इस संग्रह के किसी पत्र में नहीं है। जिस पत्र में ऋ० द० ने इन पृष्ठों को भेजने का उल्लेख किया २५ होगा, वह हमें प्राप्त नहीं हुआ।

१. मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित होगा। हमने आर्यधर्मेन्द्र जीवनचरित पृ० ३७३ संस्क० ३ से लिया है।

२. यह पत्र प्राप्त नहीं हुआ।

३. द्र०--पूर्ण संख्या ७१५, पृष्ठ ७४४, पं० १२-१४। ३०

चार आदि के छापने में समय खोना कुछ उचित नहीं। हम को आशा है कि तुम भी इस बात को प्रसन्न[1] कर लोगे, क्योंकि तुम को प्रसन्न[1] करना अवश्य है। और पण्डित जी की यही प्रसन्नता है।

५   ५—तुम्हारे कल के पत्र में पुस्तकों का बंडल लिखा हुआ नहीं आया है। आवेगा तब देख करके मान्यपत्र पर यदि तुम्हारा लेख मानने योग्य होगा[2] तो रहने देंगे, नहीं तो नहीं। और वैदिकनिधि के विषय में तुमने लिखा सो ठीक है। क्योंकि उन्हीं लोगों के दस्तखत से छपना ठीक है। और धन्यवादपत्र तथा मान्यपत्र पर प्रयाग-

१०   समाज के प्रधान और मन्त्री के दस्तखत होना चाहिये।

६—ऋग्वेद के पत्रे १५७८ से लेके १६६७ तक पण्डित ज्वालादत्त को भाषा बनाने के लिये दे देना। और उसने १६ मन्त्र की भाषा प्रतिदिन बनाना स्वीकार किया है सो बराबर बनाया करे।

१५   मि० वै० शु० ३ सं० १९४०[3]।

ह० दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८०६]   पत्र-सारांश

[प्रभुदयाल जी आनन्दित रहो!

आपका पत्र मिला।] [4]मीमांसा के मूल शब्दों में हिंसाविधि

---

२०   १. ऋषि दयानन्द 'पसन्द' शब्द के स्थान में सर्वत्र 'प्रसन्न' शब्द का व्यवहार करते हैं।

२. समर्थदान के लेख के सहित मान्यपत्र यजुर्वेदभाष्य के ४८-४९ (सम्मिलित) अङ्क के टाइटल पेज ३ पर छपा है। इसे परिशिष्ट ३ पर देखें।

२५   ३. ९ मई १८८३

४. पं० प्रभुदयाल जी ने चैत्र सुदी १३ सं० १९४० को एक पत्र 'मीमांसा दर्शन में बलिदान से यज्ञ करने का विधान' के विषय में लिख कर ऋ० द० से इस विषय में सम्मति मांगी थी (द्र०—तीसरा भाग)। उस के उत्तर में ऋ० द० ने जो उत्तर दिया था, उसके विषय में पं० भगवद्दत्त

का अर्थ नहीं है। यह भाष्यकार और वृत्तिकार की भूल है जो हिंसापरक अर्थ किया है। हम को वेदभाष्य करने आदि कार्यों से अवकाश नहीं मिलता। यही कारण है कि आप के पत्र का उत्तर इस समय दस बजे रात्रि को लिखता हूं।

(दयानन्द सरस्वती) ५

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८०७] पत्र

ओ३म्

श्रीयुत मान्यवर रावराजा तेजसिंह जी आनन्दित रहो[1]।

आज पूर्वप्रेषित पत्रस्थ[2] पूर्वकृत प्रतिज्ञानुसार 'आज से दसवें दिन पत्र लिख कर आपके पास [पत्र भेजूंगा', यह पत्र] भेजा था[3]। १०
मुझको निश्चय है कि आपने श्रीमान् प्रतापसिंह जी तथा श्रीयुत केसरीसिंह जी की सम्मति मेरे बुलाने में अवश्य ले ली होगी। और इन महाशयों के द्वारा श्रीयुत महोदय महाशय जोधपुराधीशों की भी अनुमति स्वीकृत करके लिखी होगी। अब आप के पूर्वलिखित पत्रस्थ[2] प्रीति, उत्साह और परोपकार दृष्टि के अनुरोध १५
से आपको मैं लिखता हूं कि यदि आप लोगों की ऐसी ही इच्छा है कि मुझको शीघ्र जोधपुर में बुलाना अंगीकृत है तो मैं भी आप

जी ने २-६-१७ के पत्र द्वारा उन से पूछा था। उन्होंने उत्तर दिया—'जो पत्र आया था, उसका पता नहीं लगता। पास में नहीं है। परन्तु पत्र के लेख का स्मरण है। उत्तर में श्री स्वामी जी ने आशीर्वाद के अनन्तर २०
लिखा था ·· ···।' उन्होंने ऋ० द० के पत्र का जो आशय पं० भगवद्दत्त जी को लिखा था, वह ऊपर छापा है। द्र०—भूमिका, भाग १, पृष्ठ २८-२६। पं० प्रभुदयाल जी ने मीमांसा को छोड़ कर ५ दर्शनों पर भाषा-भाष्य लिखा था। उनमें से कुछ को वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई ने छापा था। यु० मी० २५

१. मूल पत्र जोधपुर में रावराजा जी के पास सुरक्षित थे। हमें वहीं से प्रतिलिपियां आई थीं।

२. द्र०—पूर्ण संख्या ८०१ का पत्र।

३. यहां 'भेजा है' पाठ चाहिये। बीच में पाठ त्रुटित भी प्रतीत होता है। उसे [ ] कोष्ठ में बढ़ाकर पूर्ण करने का प्रयत्न किया है। ३०

महाशयों की इच्छानुकूल लिखता हूं कि इस पत्र के पहुंचने की मिति से आगे पांच दिन के भीतर पाली में सवारी के लिए दो रथ और एक सैज गाड़ी, दो ऊंट और एक हाथी और पुस्तकादि भार के लिए एक सवारी और दो सवार और आठ सिपाहियों का एक पहरा, पहरे के लिए भिजवा दीजिए। हमारे पास १० तथा १२ आदमियों से अधिक नहीं।

और सवारी के साथ एक बुद्धिमान् पुरुष आना चाहिये कि जो पाली में सवारी रख, रेल में बैठ के मेरे पास शाहपुरा में आ जाय। परन्तु वह रूपाहेली के स्टेशन पर उतरे। और दो दिन पहले शाहपुर में पत्र द्वारा खबर भेजदे कि जिस से शाहपुर से सवारी उन के लिए स्टेशन पर उपस्थित रहे कि वे रेल से उतर, सवारी में बैठ, शाहपुरा में आनन्दपूर्वक चला आवे। आप का भेजा हुआ माननीय पुरुष शाहपुरे में जिस दिन आवेगा उस से दो तीन दिन में यहां से यात्रा कर उचित समय पाली में पहुंचेंगे। जोधपुर में आके अत्यानन्दपूर्वक मैं आप लोगों से मिलूंगा। आगे मेरे ठहरने के लिये जहाँ तक हो सके बगीचे में स्थान होना चाहिए। न वह नगर से अति दूर न अति निकट। जल वायु जहां का शुद्ध और एक मील से अधिक दूर और आधा मील से कम दूर न हो। और पूर्वोक्त ऊंटों में एक सवारी का सांडिया और दूसरा साधारण। जब हम पाली में पहुंचेंगे तब उस को एक चिट्ठी इस बात की कि जिस स्थान में मेरा ठहरना हो, क्या क्या सामग्री उपस्थित करनी होगी, पत्र लिख कर उस सांडिये सवार के हाथ आप के पास भेजी जाय, एक दिन पूर्व ही। जिस के अनुसार आप उस स्थान में बिछौना आदि का यथावत् प्रबन्ध कर दीजियेगा। इस का उत्तर शीघ्र भेजिये और सब से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

मिती वैशाख शु० ४ गुरुवार[1]।

[दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

१. सं० १९४० । १० मई १८८३ ।

[पूर्ण संख्या ८०८]　　पत्र-सूचना

[पं० सुन्दरलाल जी, प्रयाग]

वैदिक यन्त्रालय के हिसाब की व्यवस्था के लिए[1]।

—:०:—

पूर्ण संख्या ८०९]　　पत्र

ओ३म्[2]　　　　　　　　　　　　　　　　५

श्रीयुत कालीचरण रामचरण जी आनन्दित रहो।

पत्र तुम्हारा २-५-८३ का लिखा[3] हमारे पास सहित ३००) की हुंडी के आया। मैं भी जानता हूं वैदिक यन्त्रालय का हिसाब गड़बड़ है। परन्तु अब पण्डित सुन्दरलाल जी का आदमी गया है। वह हिसाब किताब लिखा करेगा। इस से आशा है कि सुधर　१० जायगा। यदि न सुधरेगा तो जैसी आप लोगों की सम्मति—यही कि एक सराफी पढ़ा हुआ अच्छा प्रामाणिक आदमी आप लोगों की सम्मति से लिया जायगा। इस के लिये **आज मैंने पण्डित सुन्दरलाल जी को लिखा है**। उन की सम्मति आने पर मैं लिखूंगा। अथवा परवारा पण्डित सुन्दरलाल जी तुम को लिखेंगे।　१५ लाला सेवाराम जी तथा बाबू जी आदि को मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा। **और एक यह फोटोग्राफ** तथा छोटा सा पत्र[4] रामानन्द को दे दीजियेगा। और पाठशाला के कक्षा विषय में अवकाश पाकर लिखूंगा और यहां का समाचार भी।

शाहपुरा　　　　　　　　　　　　　　　　२०

मि० वै० शु० ४ सं० १९४०[5]।

(दयानन्द सरस्वती)

—:०:—

१. इस का संकेत अगले पूर्ण संख्या ८०९ के पत्र में है।

२. मूल पत्र आर्यसमाज फर्रुखाबाद में सुरक्षित है। इस की प्रतिलिपि जनवरी सन् २७ में म० मामराज जी ने की। फर्रुखाबाद का इतिहास पृष्ठ　२५ २०३-४ पर भी छपा है।

३. कालीचरण रामचरण का यह पत्र तीसरे भाग में देखें

४. यह पत्र अगली पूर्ण संख्या ८१० पर छपा है।

५. १० मई बृहस्पतिवार सन् १८८३।

[पूर्ण संख्या ८१०] पत्र

ओ३म्[1]

रामानन्द आनन्दित रहो।

तेरे लिखे प्रमाणे प्रतिकृति भेजी जाती है[2]। कोई कहार अच्छा
५ मिले तो लेते आना। तेरे ३०)रु० के लिए १०) १५) २०) तक
देंगे। १०) जमा रहेंगे। दुकान को लिख दिया। जब आवश्यक
होगा, तब दे देंगे। सब से हमारा आशीर्वाद कह देना।

मि० वै० शु० ४ सं० [१९४० । १० मई] १८८३

[दयानन्द सरस्वती]

१० शाहपुरा

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८११] पत्र

ओ३म्[3]

बाबू विश्वेश्वरसिंह जी आनन्दित रहो।

निम्नलिखित वर्तमान पण्डित बालमुकुन्द तथा देवीप्रसाद को
१५ भी सुना कर कार्य्य कीजिये। हम को मुंशी समर्थदान ने लिखा
था कि बाहर का काम भी छपना चाहिये[4]। उस पर हम ने ऐसी

---

१. मूल पत्र म० मामराज जी के पास श्रीराम निवास (ब्रह्मकुञ्ज) खतौली (जिला मुजफ्फरनगर, यू० पी०) में सुरक्षित है।

२. यह पत्र तथा प्रतिकृति अर्थात् रामानन्द के साथ खिंचा हुआ
२० अपना फोटो मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद के द्वारा भेजा गया था। म० मामराज जी ने सन् १९२७ में वहां से प्रतिकृति तथा पत्र प्राप्त किया। इस पर रामानन्द का नोट इस प्रकार है—

"इस पत्र को जब कभी काम पड़े प्रवर्त्तक में छाप दीजिये कृपा होगी।" रा० न०। इस के सम्बन्ध में तीसरे परिशिष्ट में टिप्पणी
२५ देखें।

३. मूल पत्र श्री नारायण स्वामी जी के संग्रह में सुरक्षित है।

४. सम्भवत: मुन्शी समर्थदान ने यह १३ सित० १८८१ के पत्र में लिखा होगा। इस का निर्देश ऋ० द० ने पूर्ण संख्या ७१२ के पत्र (पृष्ठ ७४४) में किया है। इसी पत्र में बाहर के काम से हानि होने पर बन्द
३० करने का भी उल्लेख है।

अनुमति दी कि हमारे काम में हर्ज होगी तो हम उसी वक्त काम बन्द कर देंगे[1]। अब देखो कि एक सप्ताह में तो प्रयागसमाचार छपता है। और मासिक ये दो ले लिये। और आठ फारम वेदभाष्य का छपता है। और यह सब मिलकर महीने में १० फारम तथा १२ यह हो जाते होंगे। इस हिसाब से २० तो हो गये। अब कहो सत्यार्थप्रकाशादि कैसे छपे। इसलिये हम चाहते हैं कि बाहर का काम जब तक दूसरा प्रेस न लिया जाय तबतक न छपाया जाय। **क्योंकि यह छापाखाना केवल सत्यशास्त्र के प्रचार के लिये किया गया, रोजगार के लिये नहीं।** यद्यपि समर्थदान की मनसा छापेखाने की उन्नति करने पर हो कि बाहर के काम से कुछ सहाय होगा तथापि अपने निज पुस्तकों के छपने में हानिकारक को हम नहीं छपवा सकते। इसलिये मुंशी समर्थदान को हम ने लिखा है[2] और तुम भी उन को समझा दो कि नोटिस दे दें। पण्डित सुन्दरलाल जी की भी यही सम्मति होगी अर्थात् बाहर का काम बिलकुल बन्द किया जाय। कारण कि समाचार चाहे जहां छपेगा, उन की कुछ हानि नहीं होगी। और अपने पुस्तक अन्यत्र नहीं छप सकते। और हमने इस से कहा था जब इस प्रतिज्ञा पर कहा था। चाहे चिट्ठी भी हमारी इसी के पास होगी,[3] भले ही देख लो। यदि तुम प्रयागसमाचार लो तो रात में वा अनध्याय में तथा सत्यशास्त्रों के छपने का समय बचा कर अन्य समय में कि जिस में इन शास्त्रों के छपने में विघ्न न हो, लिखा था। सो अब समर्थदान को कह दो कि १५ दिन पहले नोटिस दे दो प्रयागसमाचार वाले को और महीने पहले देशहितैषी आदि को। और बाहर की छपवाई किसी की मत लो। जब बाहर की छपवाई लेने का समय आवेगा तब हमहीं कह देंगे, अब बाहर का काम जो कुछ आवे तो ले लो। एक तो प्रेस है, उस में अपना छपना बहुत है। इस से बाहर की छपवाई लेनी अवश्य नहीं। और सब से हमारा आशीर्वाद कह देना।

---

१. द्र०—पूर्ण संख्या ७१५ (पृष्ठ ७४४, पं० १२-१४)।

२. द्र०—पूर्ण संख्या ८०५ का पत्र

३. अर्थात् पूर्ण संख्या ७१५, पृष्ठ (७४३-७४५) पर छपा पत्र।

और तुम तीन और समर्थदान मिल कर एक सभा करो कि जिस से कोई व्यवस्था नई करनी वा पुरानी हटानी हो तो विचार करके हम को और पण्डित जी को लिखा करो। और जो मुंशी समर्थदान ने मान्यपत्र के साथ छापा है[1], सो अच्छा है। क्योंकि ५ इतने लेख के विना मान्यपत्र का अर्थ लोगों के समझ में नहीं आता। इतना लेख अवश्य होना था।

मि० वै० शु० ४ सं० १९४०[2]।

हस्ताक्षर
[दयनन्द सरस्वती]
शाहपुरा

—:०:—

१० [पूर्ण संख्या ८१२] पत्र

ओ३म्

श्रीयुत कविराज श्यामलदास जी आनन्दित रहो[3]।

मेरे पत्र[4] का उत्तर वारहट किशन जी के हस्ते शाहपुराधीशों के द्वारा पहुंचा। बांच कर आनन्द हुआ। और इस बात से परम १५ आनन्द हुआ कि श्रीमानों का शरीर आरोग्य होता आता है। निश्चय है कि परमेश्वर की कृपा से अब आरोग्य हो जायगा। और इसी द्वारा देस मेदपाट और त[द्] द्वारा आर्यावर्त देश की उन्नति की भी आशा है।

(१) जो जोधपुर से पत्र आया था वह रावराजा तेजसिंह का २० था[5]। और उस में यह लिखा था कि तेजसिंह जी ने प्रतापसिंह जी

---

१. मान्यपत्र यजुर्वेद भाष्य अंक ४८,४९ (सम्मिलित) के टाइटल पेज ३ पर छपा है। उस के ऊपर मुन्शी समर्थदान ने तीन पंक्तियां 'विज्ञापन' शीर्षक के नीचे स्पष्टीकरण के लिये लिखी हैं। हम उसे परिशिष्ट ३ में दे रहे हैं।

२५ २. १० मई १८८३।

३. मूल पत्र ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में सुरक्षित है। पं० चमूपति सम्पा० पत्रव्यवहार पृष्ठ १८३-१८४ पर छपा है।

४. सम्भवत: यह पत्र वैशाख कृष्ण ९ सं० १९४० का पूर्ण संख्या ८०२ (पृष्ठ ८३२) पर मुद्रित पत्र है।

३० ५. संभवत: यहां निर्दिष्ट राव राजा तेजसिंह का वही पत्र है जिस

से कहा और प्रतापसिंह जी ने श्रीमान् जोधपुराधीशों से और जोधपुराधीशों ने प्रत्युत्तर दिया कि स्वामी जी को शीघ्र बुलाओ। और मुझसे पूछा कि किस स्टेशन से और कितनी सवारी और कितने आदमी आप के साथ हैं, कितनी सवारी भेजें इत्यादि। और असल पत्र रावराजा तेजसिंह जी का आप के पास भेजता हूं। ५ वांच कर लौटा दीजिये। और मैंने पहले पत्र[1] में लिखा था कि दस दिन पीछे हम एक पत्र जोधपुर को आपके पास भेज देंगे। सो आज भेजा है[2]। उस में यह लिखा है कि हमारे साथ अधिक से अधिक १० तथा १२ आदमी होंगे। और उनके लिए २ रथ एक सिकरम और मेरे लिये एक सिकरम अच्छी इत्यादि लिख दिया है। अब १० उन का और आप का प्रत्युत्तर आने पर जैसा होगा वैसा विचार किया जायगा। और अब श्रीमानों की सम्मति लेकर वहां का वर्तमान लिखा कीजिये। और आप अपने नेत्रों की औषधी शीघ्र कीजिये।

मिति वैशाख शुक्ल ४ सं० १९४०[3]। १५

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

## [पूर्ण संख्या ८१३]		पत्र

ओ३म्

श्रीयुत लाला श्यामसुन्दर जी आनन्दित रहो।

मुन्शी इन्द्रमणि जी और लाला जगन्नाथदास समाज में रहने २० के योग्य नहीं हैं। क्योंकि केवल मेरी निन्दा करने से मेरा वह कुछ नहीं बिगाड़ सकते, परन्तु जो देश की उन्नति और उन्नत्यर्थ समाज के उद्देश हैं, उन से इन का आचरण विरुद्ध है। अब देखिये इन का सच और झूठ मुसलमानों के साथ मामले में प्रसिद्ध हो गया है। अब वे कितना ही उद्योग करें, परन्तु वह उन के लिये सफल न २५

का निर्देश ऋषि दयानन्द ने पूर्ण संख्या ८०१ (पृष्ठ ८३०) के पत्र में किया है।

१. यह पत्र पूर्ण संख्या ८०१ (पृष्ठ ८३०) पर छपा है।

२. द्र० —पूर्ण सं० ८०७, पृष्ठ ८३७।

३. १० मई १८८३। ३०

होगा । इस लिये मुन्शी इन्द्रमणि जी का सभापति और लाला जगन्नाथदास का पुस्तकाध्यक्ष रहना अयोग्य है। क्योंकि मैंने प्रथम इन दोनों के पास प्रयाग से पण्डित सुन्दरलाल जी की मारफत बहुत से पुस्तक रक्षा और विक्रयार्थ भेजे थे। उन का हिसाब आज तक उन्होंने नहीं दिया है। सिवाय अपने मतलब सिद्ध करने के लिये, देशोन्नति का नाममात्र कह के, स्वप्रयोजन [सिद्ध] करने के अन्य कुछ भी नहीं दीख पड़ता। हां प्रथम यत् किंचित् था, सो लोभादि दोष ने अब नष्ट कर दिया। इसलिये जो उन का संगी हो उन के साथ जाने दो। और बाकी समाज उन से अलग कर लीजिये। और रजिष्टर तथा समाज का धन उन को कभी मत दीजिये। यदि कोई दूसरा समाज होता तो लाला जगन्नाथदास को 'इस समाज पर धिक्कार है' कहते समय पर ही हाथ पकड़ धक्का देकर बाहर निकाल दिया जाता। और उसी वक्त उस का नाम कट जाता। ऐसे दुष्ट भाषण करने वाले पुरुषों का समाज में रहना परम दूषण है। देखो मुम्बई समाज ने ऐसी बातों से बाबू हरिश्चन्द्र चिंतामणि को प्रधान पद से शीघ्र च्युत कर दिया। ऐसा ही अनेक समाजों में हुआ है। इसी से समाज की उन्नति है।

बस आप अपने स्थान पर समाज किया कीजिये और समाज के नियमों पर दृढ़ रहिये। और उन से अलग आप और जो समाज के हितैषी आर्यावर्त देश की उन्नति चाहें वे भी आपके साथी हों। और जो उनके संगी होवें उनके साथ जावें। और अन्य समाज के सभासद के आने की वहां आवश्यकता क्यों समझते हैं। क्या आप समाज के सभासद नहीं हैं। आप ही जो कि लिखने में बातें नहीं आतीं समाज की ओर से अन्तरङ्ग सभा में प्रसिद्ध कर दीजिये। और ४७) रु० समाज के जमा और रजिष्टर पुस्तक उन को न देने में जो कुछ वे आप की निन्दा करेंगे उस से आप को कुछ भी हानि नहीं हो सकती। और आप निश्शंक कह दीजिये कि हम मुन्शी इन्द्रमणि जी और लाला जगन्नाथदास को सभा के अधिकारी वा सभासद् रखना नहीं चाहते। न इनके साथ हम, वा हमारे साथ वे रहें। और न इनके संग देश की उन्नति हो सकती है। इस लिये हम आज से समाज का कार्य स्वतन्त्र होकर इन दोनों महात्माओं से पृथक् करते हैं। और उसी समय से पृथक् हो

जाइये। बहुत से मुरादाबाद [के] रइसों ने प्रथम ही मुझ से कहा था कि जैसा मुन्शी इन्द्रमणिजी को आप जानते हैं वैसे नहीं हैं, सो ऐसा ही हुआ। और इसी लिये मैंने स्वीकारपत्र अर्थात् वसीयतनामा में से मुन्शी जी को पृथक् कर दिया[1]। उन का सच और झूठ इतने ही नमूने से समझ लो कि जो उन्होंने विज्ञापन दिया था कि हमारे पास मेरठ समाज से मामले के सहाय में केवल ६००)रु० ही आये और मेरठ समाज के हिसाब ९९३॥।=)॥।[2] पहुंचे हैं। यह महा झूठ नहीं तो क्या है ? इस लिये सज्जनों को विदित कराता हूं कि यदि आर्य्यावर्त्त देश की उन्नति चाहो तो मुन्शी इन्द्रमणि जी और लाला जगन्नाथदास के अन्यथा आचरण से पृथक् हो के देशोन्नति किया करो। इनके समाज में मेल से सिवाय हानि के दूसरा कुछ भी नहीं है। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर अपनी कृपा कटाक्ष से देशोन्नति दृढ़ोत्साही कटिबद्ध करें कि जिस से मुन्शी इन्द्रमणिजी तथा लाला जगन्नाथदास के किये हुये विघ्न आप लोगों को निरुत्साही न करें और तन मन धन से देशोन्नति में तत्पर रक्खे। (अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु)।

मि० वै० शु० ६ सं० १९४०[3]। शाहपुरा राज्य मेवाड़

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

१. प्रथम स्वीकारपत्र में मु० इन्द्रमणि का नाम रखा था। देखो पूर्ण संख्या ,४४७ प्रथम भाग पृष्ठ ४८८। द्वितीय स्वीकारपत्र पूर्ण संख्या ७६० (पृष्ठ ७८७) में हटा दिया।

२. इस पत्र की जो नकल हमें प्राप्त हुई थी, उस में ९३॥।=)॥। लिखे थे, परन्तु समस्त पुरातन लेखों में ९९३॥।=)॥। देखकर हम ने वैसा ही कर दिया है। यह स्पष्ट ही नकल करने वाले का दोष है। पुन: म० मामराज जी के मूल पत्र से मिलाने पर मूल पत्र में ९९३॥।=)॥। ही है, ऐसा ज्ञात हुआ। पूर्ण संख्या ७८९ पर जो हिसाब छपा है, उस में (पृष्ठ ८१६ पर) योग ९९३॥।=)॥। ही है।

३. १२ मई १८८३।

[पूर्ण संख्या ८१४] कार्ड

ओ३म्[1]

ठाकुर शेरसिंह जी आनन्दित रहो।

कार्ड तुम्हारा आया[2], समाचार विदित हुआ। आजकल गर्मी
५ बहुत होती है। तुमको यात्रा में कष्ट उठाना पड़ेगा। यदि ऐसी ही इच्छा हो तो रात्रि रात्रि में रेल में बैठ दिन में ठहर ठहर के अजमेर पहुंच रूपाहेली के स्टेशन उतर के हमारे पास चले आओ। रूपाहेली से शाहपुरा ८ कोश है यदि तुम तीन दिन पहले हमारे पास पत्र वा तार भेज दोगे तो सवारी तुम्हारे वास्ते
१० यहां से आ जायगी जिस से तुम सुखपूर्वक यहां पहुंच जाओगे। परन्तु थोड़े दिन के लिये हमारे पास न आना चाहिये! कम से कम २० तथा ३० दिन तक जरूर रहना चाहिये। ठाकुर गोपालसिंह जी आदि को मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा। परमात्मा की कृपा से हम आनन्द में हैं। आशा है कि तुम भी आनन्द में होगे।
१५ वै० शु० ७ सं० १९४० रविवार[3]।

[दयानन्द सरस्वती[4]]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८१५] तार-सारांश

[पाली, (जोधपुर) के हाकिम]

२६ ता० को रूपाहेली स्टेशन पर सवारी उपस्थित होगी।[5]

—:०:—

---

२० १. मूल पत्र आर्यसमाज फर्रुखाबाद में सुरक्षित है। जनवरी सन् १९२७ में म० मामराज जी ने इसकी प्रतिलिपि की। फर्रुखाबाद का इतिहास पृ० २०४ पर भी छपा है।

२. यह पत्र उपलब्ध नहीं हुआ। ३. १३ मई १८८३।

४. इस पर पता ऋषि के हाथ का लिखा हुआ इस प्रकार है—'रामा-
२५ नन्द ब्रह्मचारी के हस्ते लाला कालीचरण रामचरण मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद की मार्फत पहुंचे'। [इस कार्ड पर शाहपुरा डाक घर की मोहर १३ मई १८८३ की है]।

५. पूर्ण संख्या ८१६ के पत्र के अन्त में इस तार की सूचना है।

[पूर्ण संख्या ८१६] पत्र

ओ३म्

श्रीयुत रावराजा तेजसिंह जी आनन्दित रहो[1]—

मुन्शी दामोदरदास जी का ता० २७[१७?[2]] मई का लिखा पत्र हमारे पास पहुंचा[3], समाचार विदित हुआ। उन के पास इस लिये नहीं भेजा कि वह भागा से होगा। आपने पाली में सवारी आदि मुन्शी दामोदरदास[4] और बारहट समर्थदान जी को भेजा और पाली में सवारी छोड़कर शाहपुरा में आने की आज्ञा दी। एक डेरा भिजवाया और मेरे रहने के लिये बाग में बंगला नियत किया। बहुत अच्छी बात की। यह पुरुषार्थ सब आप ही लोगों का है। इसलिये श्रीमान् योधपुराधीश महाराजा, श्रीमान् प्रतापसिंहजी, श्रीयुत महाराजाधिराज शाहपुराधीशों ने रूपाहेली स्टेशन पर ता० २६ मई के दिन आप के भेजे हुये पुरुषों के लिए सवारी उपस्थित कर देना स्वीकार लिया है। सो उसी तारीख को वह सवारी पहुंच जायगी। और जब आपके भेजे पुरुष यहां पहुंचेंगे। तत्पश्चात् मैं भी यहां से चलकर उचित समय पर जोधपुर पहुंच के आप लोगों से अत्यानन्दपूर्वक मिलूंगा। और मैं इसी बात से प्रसन्न हूं कि जो मुझ से आप लोगों का यत्किंचित् उपकार हो और आप लोग मुझ से आनन्दपूर्वक उपहार ग्रहण करें। क्योंकि जो कुछ अपने आर्य्यावर्त देश की उन्नति है सो सब आप ही लोगों के द्वारा अवश्य हो रही है और होगी। अन्य किसी के द्वारा नहीं। क्योंकि **यथा राजा तथा प्रजा**—

> **यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तद् देवेतरो जनः।**
> **स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥१॥** [गीता ३।२१]

राजा और राजपुरुषों के सत्य धर्मयुक्त उत्तम पुरुषार्थ ही से सब को सब प्रकार के आनन्द प्राप्त होते हैं। अलमति विस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु ॥ अन्य सब सज्जनों से मेरा आशीर्वाद कहियेगा।

---

१. मूल पत्र रावराजा तेजसिंह के पास था।

२. प्रस्तुत पत्र १९ ता० का है, अत: यहां १७ ता० चाहिये।

३. यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

४. पृष्ठ ८४८ की टि० ५ भी देखें।

और पाली में हाकिम के नाम ऐसा तार भेज दिया है कि ता० २६ मई को रूपाहेली स्टेशन पर सवारी उपस्थित होगी।

मि० वै० शु० १३ सोमवार सम्वत् १९४०[1]।

[दयानन्द सरस्वती]
शाहपुरा

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८१७] ओषधि-पत्र-सूचना

[श्रीयुत कविराज श्यामलदास जी]
ओषधि संबन्धी[2]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८१८] पत्र

ओ३म्[3]

श्रीयुत कविराज श्यामलदास जी आनन्दित रहो।

आप के नेत्र निरोग हो गये हैं कि नहीं। किश्न जी बारहट के हस्ताक्षर आपकी चिट्ठी[4] युक्त श्रीमानार्यकुलदिवाकरों के शरीर की आरोग्यता सुन बड़ा आनन्द हुआ। आप लोगों ने अपने शरीरों को अपने हाथ से ऐसा घास फूस सा बना रक्खा है कि किसी न किसी रोग को छोड़ कर थोड़े ही समय अरुग्ण रहते हैं। शरीर की आरोग्यता से धर्मार्थ काम मोक्ष यथावत् सिद्ध कर सकते हैं।

एक यह समाचार विदित होवे कि आज ३ दिन हुये मुझ को लेने के लिये जोधपुर से आदमी आ गये हैं[5]। और मैं भी परसूं

---

१. १९ मई १८८३।

२. इस पत्र का संकेत अगले पूर्ण संख्या ८१८ के पत्र में है।

३. पं० चमूपति सम्पा० पत्र व्यवहार पृष्ठ १८५-१८६ पर मुद्रित।

४. यह पत्र हमें उपलब्ध नहीं हुआ।

५. मुन्शी दामोदरदास रायजादा सिगी नारनौली, बाबू दुर्गाप्रसाद जी फर्रुखाबाद निवासी को लिखते हैं—

"......हस्बुलहुक्म जुनाब मौसूफ [श्री स्वामी जी] के माय सब सवारियों के कमतरीन माय मित्र अमरदान जी जोधपुर से रवाना होकर स्वामी साहब को शाहपुरा से लेकर जोधपुर में आए। चुनाचे जब से अकसर वक्त व्याख्यान हुआ है। वरना ५ बजे से १० बजे रात तक सवाल व जबाव होते रहते हैं।"

अर्थात् ज्येष्ठ वदि ४ शनिवार[1] के दिन यहां से जोधपुर की ओर चलूंगा। और उचित समय वहां पहुंच कर आपको वहां का सब समाचार लिखूंगा। यह समाचार श्रीमानों से भी कह दीजियेगा। और श्रीयुत कविराज मुरारिदान जी तथा उदयपुरस्थ कद्र लोगों से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा और **पूर्व मत्प्रेरित पत्रस्थौषधी थोड़े दिन सेवन कर देख लीजिये।** यदि गुण दीखे तो अधिक सेवन कीजिये। निश्चय है कि आप ओषधी का सेवन न्यून न करते रहेंगे।

मि० जे० कृ० २ सं० १९४०[2]।

हस्ताक्षर
शाहपुरा
[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८१९] पत्र

श्रीयुत मान्यवरेष्विदन् निवेदन[3]।

विदित हो कि हमारा असबाव और आदमी प्रातःकाल दो घड़ी वा तीन घड़ी दिन चढ़े यहां से चल देवें।

एक पुस्तकादि भार के लिये गाड़ी, कि जिस के बैल १ घण्टे कोश वाले होवें और सिंघी साई। जैसा कि पहले सिंगी जी ने मुर्दार बैल भेजे थे वैसा न होना चाहिये। मैं इन बैलों को यहां चला कर देख लूंगा।

एक सर्कारी रथ और एक सर्कारी तांगा, यदि पुस्तकों के लिये सैज गाड़ी कि जिससे मेह आदि जल पानी का बचाव होवे। ऐसा हो तो बहुत अच्छा है। और बग्गी की डाक आपने बैठा[4] ही दी होगी। और एक पहरा यहां का साथ चला जायगा। और पुस्तकों

१. २६ मई १८८३।
२. २४ मई १८८३।
३. मूल पत्र शाहपुरा राज में सुरक्षित है।
४. 'पैठा' (=भेज) चाहिये।

की गाड़ी के साथ एक वा दो मोम जामे भी चाहिये कि जिस से मेह पानी का बचाव हो सके[1]।

[दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८२०]   तार-सारांश

५ [कमलनयन शर्मा, अजमेर]

हम अजमेर पहुंच रहे हैं।[2]

[सम्भवत: ज्येष्ठ वदी ५, सं० १९४०=२७ मई १८८३]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८२१]   पत्र

[3]श्रीयुतार्य्याऽनवद्य-शुभगुणगणाऽलंकृतेभ्य: श्रीमन्महाराजाधि-
१० राजेभ्यो दयानन्दसरस्वतीस्वामिन आशिषो भूयासुस्तमां, शमिहास्ति, तत्र भवदीयं च नित्यमेधमानमाशासे।

विदित हो कि हम कुशलता पूर्वक कल संध्या के समय अजमेर में पहुंच गये। और पुस्तकादि के सहित आज सब आदमी प्रात:-काल पहुंच गये हैं। विशेष विदित किया जाता है कि शाहपुरा से
१५ चल कर जहां घोड़ा बदलता है; उससे आगे दो ग्राम छोड़ के जो रूपाहेली का भोजरांस ग्राम है वह एक कोश रह गया। तब बड़े वेग से आंधी और पानी आया। वहां एक घंटा तक भीगते रहे। जब आंधी और पानी बन्द हुआ तब भोजरांस ग्राम जो कि रूपाहेली का है उसमें पहुंचे। वहां प्रथम ही मुझ को लेने के लिये रूपा-
२० हेली के ठाकुर उस ग्राम में आ ठहरे थे उन के रात्रि में वहां रहने से मेरे ठहरने और घोड़े आदि के रहने के लिये सब प्रबन्ध उन्होंने कर दिया। और दूसरे दिन मध्याह्न में भोजन कर मध्याह्न समय

---

१. संभवत: ज्येष्ठ वदी ३ सं० १९४० अर्थात् २५ मई १८८३।

२. इस तार की सूचना अगले पूर्ण संख्या ८२१ के पत्र में है। कमल-
२५ नयन शर्मा का नाम अनुमान से जोड़ा है। वे आर्यसमाज अजमेर के मन्त्री थे।

३. मूल पत्र शाहपुरा राज में सुरक्षित है।

में अर्थात् गाड़ी के छूटते ही समय पहुंचा। वहां से बरल[1] के स्टेशन पर पहुंचा। देखा तो वहां न कोई सिपाई और न कोई गाड़ीमान उपस्थित था। इसलिये अजमेर को तार देकर सूधा अजमेर में पहुंचा। **आज यहां से आधी रात के समय पाली का टिकट लेकर पाली को जावेंगे।** ५

राज के मुख्य दो अङ्ग हैं कि अच्छे काम करने वालों को पारितोषिक और बुरे काम के करने वाले को दण्ड देना। जो दूसरी चौकी अर्थात् घरटे में घोड़ों के साथ सवार भेजा था, वह घोड़ों को छोड़ अपने घर का रास्ता लेकर चला आया। और एक मशालची गाड़ियों के साथ भेजा था सो न जाने कहां शाहपुरा में छिप रहा। १० उस का मुख भी नहीं देखा। यदि दोनों बग्घी के साथ सवार होते तो इतना कष्ट न उठाना पड़ता। इस लिये उन को शक्त दण्ड हो तो सब चेतन हो जावेंगे। नहीं राजाज्ञा को कुछ भी नहीं समझेंगे। आगे जैसी आप की इच्छा हो वैसा कीजिये। सब से मेरा आशीर्वाद कहिएगा[2]। १५

ज्ये० व० ६ सोम १९४०[3]।

[दयानन्द सरस्वती] अजमेर

मैं शीघ्रता के कारण मेरे [जो] साथ ४ सिपाही थे। उन को ४) ग्यार [उपहार ?] संध्या और २) जो वहां सिपाई रहे थे उन को देना चाहता था [न दे सका]। २०

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८२२]　　पत्रांश

[राय बहादुरसिंह जी मसूदा]

---

१. अर्थात् बीरली स्टेशन। देखो अगली पूर्ण संख्या ८२२ का पत्र। स्टेशन का 'बरल' नाम रेलवेविभाग का है और 'बीरल' नाम स्थानीय लोगों से व्यवहृत नाम है। यथा 'ब्यावर' स्टेशन को आस पास जनता २५ 'नयाशहर' कहती है। 'बरल' स्टेशन का आधुनिक नाम 'विजयनगर' है। यहां से 'मसूदा' जाना होता है।

२. इस पत्र का उत्तर शाहपुराधीश नाहरसिंह ने ज्येष्ठ कृष्ण [३०]सं० १९४०, ५ जून १८८३ को दिया था। इसे तीसरे भाग में देखें।

३. २८ मई १८८३। ३०

••••••••रूपाहेली के स्टेशन से षीरली का ही टिकट लिया था। इसी लिये कि मसूदा को अवश्य ही जाना होगा। परन्तु वहां सवारी मौजूद नहीं पाई। तब अजमेर को आना हो गया। अब फिर इधर आना होगा, तब मसूदे आना होगा[1]।

५ [२८ मई[2] १८८३ को अजमेर से लिखा गया।]

दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८२३] पत्र

मुन्शी समर्थदान जी आनन्दित रहो[3]।

हम ज्येष्ठ वदि ४ शनिवार[4] के दिन शाहपुरे से चलकर ज्येष्ठ १० वदि १० गुरुवार[5] के दिन जोधपुर पहुंचकर फेजुल्लाखांजी के बाग में ठहरे हैं[6]। वेद भाष्य के टाईटल पेज पर जोधपुर का नोटिस

---

१. इतना अंश रावबहादुरसिंह जी के पत्र में उद्धृत है। हमने उसकी थोड़ी सी भाषा बदली है। राजस्थानी प्रयोग के स्थान में भाषा का प्रयोग किया है। राव जी का पत्र सं० १९३९ ज्येष्ठाब्द ८ का है। यहां संवत् १५ १९४० चाहिये। ज्येष्ठ वदी ८ को २९ मई थी। राव बहादुरसिंह जी का पत्र तीसरे भाग में देखें। षीरली तथा बरल एक ही स्टेशन के नाम थे (द्र० - पृष्ठ ८५१, टि० १)।

२. पूर्ण संख्या ८२१ के पत्रानुसार २७ मई की संध्या को अजमेर पहुंचे और उसी पत्रानुसार तथा श्री पं० लेखराम जी के उर्दू जीवन चरित पृष्ठ २० ५७२ (हिन्दी सं० पृष्ठ ६१२) के अनुसार २८ की रात में पाली के लिये रवाना हुये, अत: यह पत्र २८ मई (= ज्येष्ठ कृष्ण ६) को ही लिखा गया।

३. मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में होगा।

४. २६ मई १८८३। ५. ३१ मई १८८३।

२५ ६. पं० लेखरामकृत उर्दू जीवन चरित पृ० ८६० (हिन्दी सं० पृष्ठ ९०६) पर लिखा है कि २७ मई को पाली पहुंचे और २९ मई को जोधपुर पहुंचे। यह भूल है। इस पत्रानुसार ३१ मई की प्रात: जोधपुर पहुँचे। उसी जीवनचरित में पृ० ५७२ (हिन्दी सं० पृष्ठ ६१२) पर लिखा है कि २८ मई को [रात्री के] १२ बजे अजमेर स्टेशन से चले। यह पूर्वापर ३० विरोध पं० लेखराम जी के ग्रन्थ के सम्पादक की असावधानी से हुआ है।

छाप देना[1]। और देशहितैषी को भी हमने कह दिया है कि वैदिक यन्त्रालय को मत भेजो और प्रयागसमाचार भी बन्द करदो। यदि बन्द न करोगे तो हम दंड कर देंगे, क्योंकि बहुत बक्त हम लिख चुके हैं। सभा में जो बाहर के काम के छपने की अनुमति हो तो स्वीकार न किया जावे। ये निम्नलिखित समाचार वेदभाष्य के टाईटल पेज पर छाप देना[2]। श्रीयुत महाराज राजाधिराज श्रीमान् नाहरसिंह जी वर्मा ने ३०) रु० माहवारी सदा के लिये ज्येष्ठ वदि ४ शनिवार के दिन से वैदिकधर्म उपदेशकों के लिये देना स्वीकार कर लिया है। और २००) रुपये चित्तौड़ी कि जिस के १५०) कलदार होते हैं वेदभाष्य के सहाय में प्रदान किए। और मनुस्मृति के सप्तम तथा अष्टम, नवमाध्याय जो कि राजधर्म-विधायक है पढ़कर योगशास्त्र, वैशेषिक और न्यायशास्त्र के मुख्य विषय भी पढ़ चुके। परन्तु न्यायशास्त्र, कुछ कम रह गया, जोध-पुर को शीघ्र आने से। और हम लिख चुके हैं कि वेदभाष्य के ग्राहकों का रजिस्टर जो कि तुम्हारे पास वर्तमान है नकल करके भेज दो और टाइप शीघ्र मंगवाओ[3]। और यदि १५०) रु० सेवकलाल कृष्णदास ने नहीं दिये हों तो तुम्हारे पास से भेज दो और टाइप शीघ्र मंगवाओ। इसके लिये हम पण्डित जी को लिख देंगे। वह इस बात में तुमको कुछ नहीं कहेंगे। और तुम भी लिख देना कि स्वामी जी की आज्ञा से हमने भेजे हैं। और रामानन्द के कहने से

प० घासीराम जी [पृ० ६९३] २९ मई को अजमेर से चलना लिखते हैं। वह भी पूर्व पत्र पूर्ण संख्या ८२१ के अनुसार अशुद्ध है।

१. यह सूचना ऋ० वेदभाष्य के सं० १९४० आषाढ़ कृष्णपक्ष के ५०—५१ सम्मिलित अङ्क के प्रथम पृष्ठ पर छपी थी। इसे मूल रूप में तीसरे परिशिष्ट में देखें। शाहपुराधीश के द्वारा प्रदत्त मानपत्र भाग ३ में यथास्थान छापा है।

२. इस आदेश के अनुसार अगली सूचना ऋग्वेदभाष्य के पूर्वोक्त ५०-५१ सम्मिलित अंक के अन्त में छापी गई (द्र० — परिशिष्ट ३)।

३. टाइप शीघ्र मंगवाने के सम्बन्ध में तो पूर्व छपे पत्रों में निर्देश मिलता है, परन्तु वेदभाष्य के ग्राहकों के रजिस्टर की नकल भेजने का जिस पत्र में उल्लेख किया गया होगा, वह हमें नहीं मिला।

विदित हुआ कि लखनऊ का कम्पोजीटर दुष्ट है। ऐसे आदमियों को यन्त्रालय में नहीं रहने देना चाहिये। और यह पत्र बाबू विश्वेश्वर सिंह जी को भी सुना देना। और जो छापने को सत्यार्थप्रकाश [के पत्रे] हैं उस को १ मास पहिले हमको लिख
५ भेज़ोगे, तब ठीक समय पर तुम्हारे पास पत्र पहुंचेंगे। और यहां का विशेष समाचार आगे लिखा जायगा।

मि० ज्येष्ठ वदि १० सं० १९४०[1]।
जोधपुर।

ह० (दयानन्द सरस्वती)

—:०:—

१० [पूर्ण संख्या ८२४] पत्रांश

[भाई जवाहरसिंह ...... शाहपुरा]।

....

निश्चय है कि आप अपने काम पर तत्पर रहेंगे। और श्रीमान् महाराजाधिराज को अति आनन्दित करेंगे। और अपने पुरुषार्थ
१५ स्वाभाविक सद्गुणों और उत्तम कामों से अपनी कीर्ति को बढ़ावेंगे[2]।...

मिति ज्येष्ठ कृष्ण १० [सं० १९४०। ३१ मई] सन् १८८३ जोधपुर।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८२५] पत्र

२० ओ३म्[3]

श्रीयुत महाराज राजाधिराज श्री नाहरसिंह जी आनन्दित रहो।

विदित हो कि ज्येष्ठ वदि ४ शनिवार[4] के दिन शाहपुरा से

---

१. ३१ मई, १८८३।

२५ २. यह पत्र भाई जवाहरसिंह के नाम लिखा गया था।। भाई जवाहरसिंह जी ने ऊपर मुद्रित अंश "रद्दे बुतलान" पृ० ९८ पर छापा है।

३. मूल पत्र राजकार्यालय शाहपुरा में सुरक्षित है।

४. सं० १९४०। २६ मई १८८३।

चलकर जेष्ठ वदि १० गुरुवार[1] के प्रातःकाल योधपुर में आनन्द-पूर्वक पहुंच गये। और पहुंच के कुछ देर से श्रीयुत महाराजा प्रताप सिंह जी और श्रीयुत रावराजा तेजसिंह जी आदि भद्रजन प्रीति-पूर्वक मिले। और हम यहां फैजुल्लाखांजी के बाग में ठहरे हैं और जो आप पत्रादि लिखें सो इसी बाग के पते से लिखना। ५ यह बाग और इस में मकान तथा जलवायु भी अच्छा है, सो जानना। और जो आपने २००) रु० चित्तौड़ी कौचमान के हस्ते भेजे, सो पहुंचे। यहां का जो विशेष समाचार होगा, सो लिखा जायगा। और आप भी वहां का जो विशेष समाचार हो सो लिखियेगा। बूंदी से पत्र[2] का प्रत्युत्तर आया वा नहीं[3]। १०

[दयानन्द सरस्वती]
(राज मारवाड़ योधपुर)

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८२६]   पत्रांश

[पं० मुन्नालाल सं० देशहि० अजमेर]

…हम जोधपुर बहुत उत्तम प्रकार से पहुंच गये।[4] … १५

२ जून ८३[5]। जोधपुर

दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८२७]   पोस्टकार्ड आशय

[कमलनयन शर्मा, मन्त्री आर्यसमाज, अजमेर]

लेफ्टिनेन्ट लोंग साहब के जाने के विषय में जानकारी २० दो[6]।

—:o—

१. सं० १६४०। ३१ मई १८८३।

२. सम्भवतः गोरक्षार्थ लिखे गये पत्र का।

३. सम्भवतः यह पत्र ३१ मई अथवा १ जून १८८३ को लिखा होगा।

४. देशहितैषी के रजिस्टर से   ५. ज्येष्ठ कृष्ण १२, सं० १६४०। २५

६. इस पत्र की सूचना कमलनयन शर्मा के ७ जून १८८३ के पत्र में है। पत्र का आशय भी उसीके आधार पर बनाया है। लौंगसाहब के भाग जाने

[पूर्ण संख्या ८२८]   पत्र-सूचना

[सेवकलाल कृष्णदास, बम्बई]

घड़ी के विषय में ।[1]

— :o: —

[पूर्ण संख्या ८२९]   विज्ञापन[2]

५ ओ३म् नमः सच्चिदानन्दादिलक्षणाय परमेश्वराय

सब सज्जन लोगों को विदित हो कि श्रीयुत परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ज्येष्ठ वदि १० गुरुवार[3] के प्रातः समय योधपुर में आके फैजुलाखां जी के बाग में ठहरे हैं। जो कोई उन से मिलना चाहे, वह सायंकाल के ५ बजे १० से रात्रि के १० बजे तक आनन्द पूर्वक मिल के सभ्यता के साथ बात चीत करे वा सुने। उक्त स्वामी जी सन्ध्या के बजे से ६ बजे से ८ बजे तक फैजुल्लाखां जी के बाग में सनातन वेदादि सत्य-

---

का विवरण कमलनयनशर्मा ने अपने १७ जून १८८३ के पत्र में लिखा था। कमलनयन शर्मा के दोनों पत्र तीसरे भाग में देखें। लौंग साहब के भाग १५ जाने का वृत्तान्त आगे झालावाड़ के राजराणा को लिखे पूर्णसंख्या ९३२ के पत्र में भी देखें।

१. इस की सूचना सेवकलाल कृष्णदास के २५ जून १८८३ के पत्र में है। पत्रानुसार घड़ी १२ जून को भेजी जा चुकी थी। अतः ऋ० द० ने यह पत्र जून के प्रारम्भ में भेजा होगा। तारीख का निश्चय न हो सकने से यहां २० जोड़ा है। सेवकलाल कृष्णदास का पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. यह विज्ञापन जोधपुर में दिया गया था। पीले चिकने देशी कागज पर लिथो में काली स्याही से छपा हुआ है। इसकी मुद्रित प्रति श्री महावीरसिंह जी गहलौत एम० ए० रिसर्चस्कालर मेड़ती दरवाजा जोधपुर के संग्रह में सुरक्षित है। उस की प्रतिलिपि प्रो० महेशप्रसाद जी मौलवी २५ आलिम फाजिल हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस द्वारा ता० ३ मई १९४५ को हमें प्राप्त हुई।

३. ३१ मई १८८३। पं० लेखरामकृत जीवनचरित में २९ मई को जोधपुर पहुंचना लिखा है। यह भूल है। विशेष देखो पृष्ठ ८५२, टि० ६।

शास्त्रोक्त विषयों में ज्येष्ठ वदी १३ रविवार सम्वत् १९४० के दिन से वक्तृत्व करेंगे। जिन महाशयों को श्रवण करने की इच्छा हो वे पूर्वोक्त स्थान और समय पर उपस्थित हो कर सभा को सुशोभित करें। सब विषयों के सुनने के पश्चात् यदि किसी विषय में सन्देह रह जाय तो वह उस में आनन्दपूर्वक प्रश्नोत्तर कर लेवे। ५
सुनने और प्रश्नोत्तर होने के पश्चात् सज्जनों को यही योग्य है कि सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करके स्वयं सदा आनन्दित हो कर सब को आनन्दित किया करें।

मिति ज्येष्ठ वदी १२ शनि सम्वत् १९४०[1]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८३०]　　पत्र-सारांश　　१०

[बाबू दुर्गाप्रसाद, फर्रुखाबाद]

हम जोधपुर पहुंच गये हैं। अच्छे आम भेजो।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८३१]　　पत्र-सारांश

[मुंशी समर्थदान, वै० य० प्रयाग]

यदि बाहर का काम बन्द न करोगे तो हम तुम पर दण्ड कर देंगे।[3] १५

[ज्येष्ठ कृष्ण ३० मङ्गल १९४० (=५ जून १८८३)]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८३२]　　पत्र

ओ३म्[4]

श्रीयुत प्रधान दुर्गाचर्णादि तथा श्रीयुत साहू श्यामसुन्दर जी आनन्दित रहो। २०

---

१. २ जून १८८३।

२. इस पत्राशय की सूचना बाबू दुर्गाप्रसाद के ७ जून १८८३ के पत्र में मिलती है। बाबू दुर्गाप्रसाद का पत्र तीसरे भाग में देखें।

३. इस सारांश की सूचना अगले पूर्णसंख्या ८३३ के पत्र में है। २५

४. मूल पत्र आर्यसमाज मुरादाबाद में सुरक्षित था। यह पत्र पं०

कार्ड आप का आया,[1] समाचार विदित हुआ। जो प्रधान और पुस्तकाध्यक्ष जो कि आर्य्यसमाजों के उद्देश्यों के विघ्न थे, पृथक् कर दिये गये। बहुत अच्छी बात हुई। अब आप का समाज उन्नतिशील होगा। और यही बात देशहितैषी और भारतसुदशा-
५ प्रवर्त्तक तथा मेरठ और लाहौर के समाज के पत्रों में छपवा दीजिये। और आगे को कोई समाज के उद्देशों से विरुद्ध आचरण, भाषण करे, उस को एक दो बार समझा दीजिये। और न समझे तो इसी प्रकार पृथक् करते रहिये। और अब वैदिक यन्त्रालय में आप के समाज के १००) रु० लगे हैं। और १०) के पुस्तक वैदिक
१० यन्त्रालय से मंगवा लीजिये। अथवा ११०) रु० ही के पुस्तक मंगवा लीजिये। और सब सभासदों से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

मि० ज्ये० शु० १ सं० १९४० बुद्धवार जोधपुर[2]।

हस्ताक्षर

१५ [दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८७३] पत्र

बाबू विश्वेश्वरसिंह जी आनन्दित रहो[3]।

विदित हो कि हम कई वार मुन्शी समर्थदान को लिख चुके हैं कि बाहर का छापना बिलकुल बन्द कर दो। परन्तु उसने अबतक
२० बन्द नहीं किया। इसलिये तुम उस को समझा दो कि बाहर का काम कभी न छापे। यदि बन्द न करेगा तो हम उस पर दण्ड कर देंगे। इस प्रकार की चिट्ठी परसों हम ने उस को लिख दी[4]। और उस को दण्ड भरना पड़ेगा। इस को बाहर का काम छापने का उस को क्या प्रयोजन है। और तुम समर्थदान को सहायता देते

---

२५ लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृष्ठ ८२३ (हिन्दी सं० पृष्ठ ८५३) पर भी छपा है।

१. यह पत्र नहीं मिला। तीसरे भाग में सूचना छापी है।

२. ६ जून १८८३।

३. मूल पत्र श्री नारायण स्वामी जी के संग्रह में सुरक्षित है।

३० ४. यह पत्र नहीं मिला।

हो, इसमें हमारी बड़ी प्रसन्नता है। और तुम पिन्शिन कब लोगे। जब तुम पिन्शिन लोगे तब तुम्हारी नौकरी शीघ्र वैदिक यन्त्रालय में हो जायगी। और सब यन्त्रालय की भी खबरदारी रक्खा करो। और लिखने के योग्य समाचार हम को तत्काल लिखा करो। और कितनी हानि निघण्टु उणादिगण और धातुपाठ सत्यार्थप्रकाश के छपने से बन्द[1] हो रहा है। अब शीघ्र तुम पिन्शिन लो और शीघ्र यन्त्रायल में आ जाओ। जब तुम यन्त्रालय में आकर काम करोगे तभी काम ठीक बनेगा। और देख लो कि मुम्बई (से टाइप) मंगवाने में समर्थदान का हठ था। नहीं तो पंडित जी ने कहा था कि हम कलकत्ते से लेते आवेंगे। इसने कहा कि नहीं मुंबई का मंगावेंगे। अब न ही मुंबई का आया, न कलकत्ते का। बहुत हानि हो रही है। और मुंबई से मंगाना भी नहीं है। २५०)[2] रु० ऐसे आदमी के पास भेजा है कि जिस का न ठोर न ठिकाना। इन सब बातों का उत्तर शीघ्र भेज दो। यहां बहुत आनन्द हो रहा है। विशेष समाचार आगे लिखा जायगा। और तुम वहाँ का समाचार सदा लिखा करो। और यह समर्थदान अपनी चिट्ठी में कभी तुम्हारा नमस्ते भी नहीं लिखता। यह क्या बात है। और सब से हमारा आशीर्वाद कह देना।

मि० ज्ये० सु० २ सं० १६४० गुरुवार[3] जोधपुर राज मारवाड़।

हस्ताक्षर
[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८३४]　　　पत्र

ओ३म्[4]

श्रीमदनवद्यगुणगणालंकृत मान्यवर महाशय शाहपुराधीश आनन्दित रहो।

---

१. यहां 'छपने के बन्द होने में हो रही है' पाठ होना चाहिये।

२. पूर्णसंख्या ८२३ के पत्र में १५०) रु० भेजने का उल्लेख है।

३. ७ जून १८८३।

४. मूल पत्र राजकार्यालय शाहपुरा में सुरक्षित है।

निश्चय है कि जवाहिरसिंह जी शाहपुरा में पहुंच गये होंगे। और आज रुड़की से एक पत्र आया है सो आप के पास भेजा जाता है। सबओवरसीअर भी थोड़े ही समय में आप के पास पहुंचेगा। आप के लिखे अनुसार उदयपुर को लिख दिया जायगा। आपने जो ५ पत्र भेजा था सो पहुंचवाय दिया गया है[1]। यहां का वर्तमान यह है कि आज कल विशेष कर प्रजाजनों की भीड़ भाड़ सायं समय उपदेश सुनने और प्रश्नोत्तर करने के लिये होती है। आगे विशेष समाचार जो कुछ होगा लिखा जायगा। बूंदी से कुछ पत्रोत्तर आया वा नहीं[2]। **अग्निहोत्र की शाला और कुण्डादि बन गये** १० **होंगे। क्षात्रशाला का आरम्भ हो गया होगा।** और विशेष समाचार हो सो लिखियेगा। और यह रुड़की का पत्र बांच कर जवाहरसिंह जी को दे दीजियेगा।[3]

मि० जेष्ट शु० सं० १९४०[4]।

जोधपुर राज मारवाड़

१५ | दयानन्द सरस्वती |

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८३५] पत्रांश

[लाल जी बैजनाथ मुम्बई —]

.. ..

चालीस रुपये मनीआर्डर द्वारा भेजते हैं। विट्ठल भाणा ब्राह्मण २० को देकर रसीद ले कर भेज दो। ..... समाज मन्दिर का काम

---

१. यह पत्र राजाधिराज ने अपनी भूआ अजबजी के नाम का ता० ५ जून १८८३ के पत्र के साथ श्री स्वामी जी को जोधपुर में भेजा था। इस के लिये शाहपुराधीश का ५ जून १८८३ का पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. देखो पूर्ण संख्या ८२५ पृष्ठ ८५५ तथा इसी पृष्ठ की टि० २।

२५ ३. शाहपुराधीश नाहरसिंह का आषाढ़ कृष्ण ३ सं० १९४०=२३ जून १८८३ का लिखा पत्र सम्भवतः इसी पत्र के उत्तर में लिखा गया है। शाहपुराधीश का पत्र तीसरे भाग में देखें।

४. १० जून सन् ८३।

कैसा चल रहा है।[1]

ज्येष्ठ शुद्ध ७ संवत् १६४०[2]।

दयानन्द सरस्वती
जोधपुर

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८३६] मनिआर्डर सूचना

५

लाल जी बैजनाथ, बम्बई]

४० रु० बिट्ठल भाणा के लिये।[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८३७] पत्र

ओ३म्[4]

मन्त्री आर्य्यसमाज फरक्काबाद लाला रामचरण कालीचरण जी आनन्दित रहो। १०

---

१. यह पत्रांश लालजी बैजनाथ के एक पत्र के आधार पर हमने बनाया है। तिथि उसी पत्र में है और संवत् उस से पहले पत्र के आधार से लिखा है। संभवत: बिट्ठल ब्राह्मण कुछ काल तक श्री स्वामीजी के पास नौकरी करता रहा। लालजी के ये दोनों पत्र तीसरे भाग में देखें। १५

२. १२ जून १८८३ मंगलवार।

३. इस मनिआर्डर की सूचना ऋ० द० के पूर्ण संख्या ८३५ के पत्रांश में है। इन रुपयों की पहुंच बिट्ठलभाणा ने सं० १६४० ज्येष्ठ शु० १३ सोमवार (= १८ जून १६४०) के पत्र में दी है। बिट्ठल भाणा का पत्र तीसरे भाग में देखें। २०

४. मूल पत्र आर्यसमाज फर्रुखाबाद में सुरक्षित है। सन् १६२७ में म० मामराज जी ने इस की प्रतिलिपि की। फर्रुखाबाद का इतिहास पृ० २०५ पर भी छपा है।

इसी पत्र की दूसरी प्रतिलिपि रामानन्द ब्रह्मचारी की पुस्तकों आदि में (अतरोली स्टेशन के निकट रायपुर ग्राम) से ता० १८ सितम्बर सन् १६२८ की रात्रि के तीन बजे तक खोजने पर मिली थी। उन के भ्राता त्रिलोचनदेव की आज्ञा से म० मामराज जी ले आये। वह उन के पास श्रीरामनिवास (बिल्डिङ्ग) खतौली में सुरक्षित है। २५

विदित हो कि रामानन्द ब्रह्मचारी की माता मुहल्ला नुनिहाई साह बिहारीलाल जी की हवेली के पिछवाड़े जो कि लाला बलदेवदास ने मकान मोल लेकर इसके पिता शङ्करानन्द जी को धर्मार्थ दिया, उसमें रहती है। यदि जब कभी उस का शरीर छूट जाय तो उस के अन्त्येष्टि कर्म के लिये ५०) पचाश रुपये लाला निर्भय राम जी की कोठी से लेलेना और हमारे हिसाब में लिखा देना। और उन रुपयों से घृत और सुगन्ध्यादि पदार्थों को लेकर जैसा विधान षोडश संस्कारविधि के पुस्तक में लिखा है उस के अनुसार मृतक कर्म करा देना। और इस काम के कराने में किसी प्रकार आलस्य न करना। और इस बात को प्रत्येक सभासद को विदित कर देना जिससे समय पर सहायक होवें।

ज्येष्ठ शुक्ल ६ बृहस्पति संवत् १९४०[1]।

राज मारवाड़ योधपुर। [दयानन्द सरस्वती]

निम्न लेखानुसार मृतकसंस्कार करने के लिये घृतादि पदार्थ लिये जावेंगे।

२५) पच्चीस रुपये का अच्छा घृत।

१०) रुपये का सफेद सुगंधि वाला चंदन।

५) अगर तगर और कपूर आदि सुगन्धित वस्तु।

५) वस्त्रादि लिये जावेंगे।

५) और पांच रुपये की पलास अर्थात् ढाख की लकड़ी अथवा आंब की और संस्कारविधि लेखानुसार वेदी बनानी होगी।

उक्त लेखानुसार ५०) रु० केवल दाहकर्म में खर्च होने चाहिये।

:o:

[पूर्ण संख्या ८३८] पत्र

(श्री स्वामी जी महाराज के आज्ञापत्र की प्रति)

ओ३म्

मंत्री आर्यसभाज फर्रुखाबाद लाला कालीचरण रामचरण जी आनन्दित रहो!

विदित हो कि रामानंद ब्रह्मचारी की माता मुहल्ला नुनिहाई साह बिहारीलाल जी की हवेली के पिछवाड़े जो कि लाला बल-

---

१. १४ जून १८८३।

देवदास ने, मकान मोल लेकर उस के पिता शंकरानन्द जी को धर्मार्थ दिया, उसमें रहती है। यदि जब कभी उसका शरीर छूट जाय तो उसके अंत्येष्टि कर्म के लिए ५०) पचास रुपये लाला निर्भयराम जी कोठी से ले लेना, और हमारे हिसाब में लिखा देना और उन रुपयों से, घृत और सुगंध्यादि पदार्थों को लेकर　५
जैसा विधान षोडश- संस्कारविधि के पुस्तक में लिखा है। उसके अनुसार मृतक कर्म करा देना; और इस काम के कराने में किसी प्रकार आलस्य न करना, और इस बात को प्रत्येक सभासद को विदित कर देना जिससे समय पर सहायक होवें।

ज्येष्ठ शुक्ल ९ सं० ४०　१०

[दयानन्द सरस्वती]

जोधपुर

निम्नलेखानुसार मृतकसंस्कार करने के लिए घृतादि पदार्थ लिए जावेंगे

२५) पच्चीस रुपये का अच्छा घृत　१५
१०) दश रुपये का सफेद सुगन्धि वाला चंदन
५) अगर तगर आदि कपूर आदि सुगंधित वस्तु
५) वस्त्रादि
५) पलास अर्थात् ढाक की लकड़ी
५०) उक्त लेखानुसार ५०) रुपये केवल दाह कर्म में खर्च　२०
होने चाहिये

[स्वामी जी द्वारा लाला कालीचरण जी को लिखे पत्र की यह प्रतिलिपि परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान है।]

विशेष—

हमने पूर्ण संख्या ८३७ (पृष्ठ ८६१) में ऋषि दयानन्द के　२५
इस पत्र का जो पाठ छापा है उसमें **'रामचरण कालीचरण जी'** पाठ छपा है, वह अशुद्ध है। अन्य सब पत्रों में **'कालीचरण रामचरण'** यही पाठ है।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८३९] पत्रांश

[पं० मुन्नालाल सं० देशहि० तथा मन्त्री आर्यस० अजमेर[1]]

………. पं० सुखदेव, पं० दामोदर और शालिगराम कहां हैं[2] ।……

५ १५ जून ८३ । जोधपुर[3] दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८४०] पत्र-सूचना

[भाई जवाहरसिंह, शाहपुरा][4]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८४१] पत्र

[बाबू विश्वेश्वरसिंह[5] ……]

१० …. खला देना। और मुझ को दृढ़ निश्चय है कि मुंशी समर्थदान और तुम दोनों मिल कर यन्त्रालय का काम अच्छी प्रका[र] रखोगे। और सब से मेरा आशीर्वाद कह देना। (अलमति विस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु)। और पण्डित सुन्दरलाल जी की भी सम्मति नये काम में सदा लिया करोगे जैसी कि मेरी। और यह १५ दोनों पत्र तुम्हारे पास भेजते हैं जो कि शाहपुरे की हैं। किसी समाचार में छपवा देना।

मि० ज्ये० शु० १२ सं० १९४०[6]।

जोधपुर राज मारवाड़ (दयानन्द सरस्वती)

—:o:—

---

१. देश हि० के रजिस्टर से।

२० २. यह अभिप्रायमात्र है। इस के उतर में १७-६-८३ को लिखा कमल नयन शर्मा का पत्र तीसरे भाग में देखें।

३. ज्येष्ठ शुक्ल १० शुक्र, सं० १९४०।

४. इस पत्र की सूचना भाई जवाहरसिंह के २० जून १८८३ के पत्र में मिलती है। भाई जवाहरसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें।

२५ ५. यह पत्र बाबू विश्वेश्वरसिंह जी के पास प्रयाग को भेजा गया था। पत्र के पहले ४ पृष्ठ लुप्त हैं। मूल पत्र श्री नारायण स्वामी जी के संग्रह में सुरक्षित है।

६. १७ जून १८८३।

[पूर्ण संख्या ८४२] पत्र-सूचना

[भाई जवाहरसिंह, शाहपुरा]

१. भत्ते के विषय में।

२. भोजन अलग बनाने के विषय में[1]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८४३] पत्र ५

ओ३म्

श्रीयुत माननीयवर शूरवीर महाराजे प्रतापसिंह जी आनन्दित रहो[2]।

यह पत्र बाबा[3] साहब को भी दृष्टिगोचर करा दीजियेगा।

(१) मुझ को इस बात का बहुत शोक होता है कि श्रीमान् १० योधपुराधीश आलस्य आदि में वर्तमान, आप और बावा साहब दोनों रोगयुक्त शरीर वाले हैं। अब कहिये इस राज का कि जिस में १६००००० सोलह लाख से कुछ ऊपर मनुष्य बसते हैं। उन की रक्षा और कल्याण का बड़ा भार आप लोग उठा रहे हैं। सुधार और बिगाड़ भी आप ही तीनों महाशयों पर निर्भर है। तथापि १५ आप लोग अपने शरीर का आरोग्य, संरक्षण और आयु बढ़ाने का काम पर बहुत कम ध्यान देते हैं। यह कितनी बड़ी शोचनीय बात है। मैं चाहता हूं कि आप लोग अपनी दिनचर्य्या मुझ से सुन के सुधार लेवें। जिस से मारवाड़ तो क्या अपने आर्य्यावर्त देश भर का कल्याण करने में आप लोग प्रसिद्ध होवें। आप जैसे योग्य पुरुष २० जगत् में बहुत कम जन्मते हैं और जन्म के भी बहुत कम चिरंजीवी शतायु होते हैं। इस के हुए विना देश का सुधार कभी नहीं होता। उत्तम पुरुष जितना अधिक जीवे उतनी ही देश की उन्नति होती

---

१. इस पत्र की तथा उपरि निर्दिष्ट दो विषयों की सूचना भाई जवाहरसिंह के आषाढ़ बदी ५, सं० १९४० (=२५ जून १८८३) के पत्र में २५ मिलती है। यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. मूल पत्र रावराजा तेजसिंह जी के पास था।

३. अर्थात् जोधपुराधीश।

है। इस पर ध्यान आप लोगों को अवश्य देना चाहिये। आगे जैसी आप लोगों की इच्छा हो वैसे कीजिये।

(२) आगे जो यह सुना जाता है कि आगामी सोमवार के दिन यहां के लालजी आदि की मेरे साथ बात चीत होने वाली
५ है[1]। उस में आप की सम्मति है वा नहीं। यदि सम्मति है तो सायंकाल के सात बजे से साढ़े आठ बजे तक सभा में बराबर उपस्थित होंगे वा नहीं। जो आप और बाबा साहब उचित समय सभा में उपस्थित न रहेंगे तो मैं भी इन स्वार्थी, देश के बिगाड़ने वाले पुरुषों के साथ वाद करने के लिए उपस्थित न होऊंगा।
१० कारण यह कि उन में सभ्यता की रीति बहुत कम देखने में आती है। और पक्षपात भी अधिकतर है। एक आप को छोड़ कर अन्य पुरुष भी समय पर सभा में निष्पक्षपाती होकर सत्य बोलने वाला अब तक मेरी दृष्टि में नहीं आया है। इस से आप का उस सभा में उपस्थित रहना अत्यन्त उचित समझता हूं।

१५ (३) यदि सोमवार को शास्त्रार्थ कराने की इच्छा हो तो कल सायंकाल ७ बजे से साढ़े आठ बजे तक उस के नियम एक दिन पहले बन जाने अवश्य चाहियें कि जिस से दूसरे दिन बराबर शास्त्रार्थ चले। इसलिये लालजी को कल सायंकाल बुलवा लेना चाहिये। और आप भी सभा में उपस्थित हों कि सब के
२० सामने पक्षपात रहित नियम नियत लिखित हो जावें।

(५) इस पोप लीला की निवृत्ति करके यहां से अन्यत्र यात्रा करने का मेरा विचार है। अनुमान है कि बाबा साहब ने आप से कह भी दिया होगा।

इन उपरि लिखित सब बातों का उत्तर लेखपूर्वक आज सायं-

---

२५ १. आषाढ़ वदी ५, संवत् १९३९ (४० ? सोमवार) को रायजादा सांगी (अग्रवाल वैश्य) नारनौली दामोदरदास जयपुर से राजा दुर्गाप्रसाद फर्रुखाबाद को लिखता है—"पुराण पढ़ने वालों ने मुबाहिसा का आज का रोज मुकरर किया था। मगर हस्ब कयास वकू में आया। यानी जुनाब महाराजा श्री प्रतापसिंह साहब बहादुर प्राइम मिनिस्टर आज तशरीफ
३० लाकर फरमाया कि अभी तो मुबाहिसा नहीं किया चाहते।"

काल तक मेरे पास भिजवा देवें। अलमिति विस्तरेण महामान्य-वर्य्येषु।

भि० आ० व० ३ शनि सं० १९४०[1]।

दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८४४]　　　पत्रांश　　　५

[कमलनयन मन्त्री आर्यसमाज अजमेर][2]

······दामोदर शास्त्री[3] को भेज दो।

२४ जून १८८३। जोधपुर[4]

दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८४५]　　　कार्ड　　　१०

ओ३म्[5]

श्रीयुत महाशय श्री रूपसिंह जी योग्य रामानन्द ब्रह्मचारी का नमस्ते विज्ञात हो। आगे परमात्मा की कृपा से श्री जगत्गुरु जी के सहित सब लोग आनन्द में हैं। आशा है कि आप भी सकुटुम्ब आनन्द मङ्गल में होंगे। यह आप का पत्र कई महीनों के पश्चात् १५ आया। मैं तो निरास हो गया था कि अब रूपसिंह जी मुझको भूल गये हैं। परन्तु अब इस तुम्हारे पत्र से पूर्ण निश्चय हो गया कि

---

१. २३ जून १८८३। पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृ० ८३४ (हिन्दी सं० पृष्ठ ९१४) पर इसी पत्र का (१) संख्या वाला अंश छपा है। वहां आश्विन वदी ३ शनिवार अथवा २२ सितम्बर १८८३ छपा है। यह २० भूल है। आश्विन वदी ३ को शनिवार नहीं था, बुधवार था। और २२ सितम्बर को वदी ६ है। वस्तुत: 'आ' से यहां आषाढ़ अभिप्रेत है।

२. देशहि० के रजिस्टर से। इस के उत्तर में ३-७-८३ को लिखा कमलनयन शर्मा का पत्र तीसरे भाग में देखें।

३. दामोदर शास्त्री हरिश्चन्द्र मोहनचन्द्रिका के सम्पादक थे। २५ देखो देशहितैषी वैशाख १९४०।

४. आषाढ़ कृष्ण ४ रवि, सं० १९४०।

५. मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

किसी कार्य विशेष से अपना कुशल पत्र आप न भेज सके। वर्तमान समय में श्री स्वामी जी राज देश मारवाड़ योधपुर में फैजुल्लाखां जी के बाग में ठहरे हैं। यहां के प्रजापुरुष प्रतिदिन आते हैं। दो एक बार व्याख्यान भी हुए। बहुत से श्री स्वामी जी के अनुकूल हैं ५ और यहां के योधपुराधीश भी दो चार दिन के पश्चात् श्री स्वामीजी से मिलने को आने वाले हैं। और महाराजा जी के भाई महाराजा राजाधिराज श्री प्रतापसिंह जी आते जाते हैं। उपदेश सुन कर बहुत प्रसन्न हुए हैं। विशेष समाचार पश्चात् लिखूंगा। तुम पत्र के देखते ही अपना विस्तारपूर्वक कुशल समाचार का पत्र शीघ्र १० लिख भेजना।

आषाढ़ बदी ५ सोम संवत् १९४[०][1]

रामानन्द ब्रह्मचारी राज मारवाड़ जोधपुर

— :०: —

[पूर्ण संख्या ८४६] **पत्र**

ओ३म्

१५ मुन्शी समर्थदान जी आनन्दित रहो[2]।

पत्र तुम्हारा आया[3] समाचार विदित हुआ। हमारे आशय को तुम नहीं समझते हो। इसलिये एक बात को बहुत बार लिखनी पड़ती [है]। यह समझो कि वेदभाष्य माहवारी ही निकले ऐसा विशेष नेम कभी न रहा है। किन्तु १२ बारह अङ्क पहुंचने २० से वर्ष पूरा माना जाता है। इसलिये जब तक टेप न आवे वेद-भाष्य का छापना ठीक नहीं। **किन्तु आवश्यक सत्यार्थप्रकाश और धातुपाठ का छापना है, उसको तुमने रोक रखा। यह बड़ी हानि का काम है।** इसलिये चाहे वेदभाष्य एक आध महीना बन्द रहे, पर उनका छप जाना अत्यावश्यक है। और अन्य पत्र भेजे हैं। २५ उनका उत्तर शीघ्र भेजो। और जो तुमने पुस्तकें भेजीं, सो वेद-भाष्य के सहित पहुंच गईं। और यह पत्र बाबू विशेश्वरसिंह जी

---

१. २५ जून १८८३।

२. शताब्दी संस्करण (परो० सभा, सन् १९२५) पृष्ठ १७ पर इसका थोड़ा सा अंश छपा है। मूल पत्र परोपकारिणीसभा अजमेर में सुरक्षित है।

३० ३. यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

को भी सुना देना। और उन को मेरा आशीर्वाद भी कह देना। पं० ज्वालादत्त ने ८ दिन में ५० मन्त्र की भाषा बनाई कुछ भी नहीं बनाई। काम न करने के लिये चाहे १० अर्जियां दो। हम जानते हैं कि ये सब काम न करने की बातें हैं। हम निश्चय कर कहते हैं कि तुम इसका काम यथातथ्या निकलो। ज्वालादत्त जो ५ भाषा बनाता है, ऐसा नहीं हो कि कहीं पोपलीला घुसेड़ डाले। जैसी हमारी संस्कृत है उस के अनुकूल [करे] और कुछ न करे। पण्डित शिवदयाल को काम हो तो रहने में कुछ हर्कत नहीं।

पुण्डरीक शिवशर्मा छीतरदत्त जी से दाम नहीं लिये गये हैं। सर्दार मेहरसिंह जी के पास ≡) आने के पुस्तक भेज दो। उन्होंने १० ५॥) रु० जिल्द सहित के दिये थे। वेद के मन्त्रों का क्रम तो अच्छा है, परन्तु लागत बढ़ जायगा और कागज भी बहुत खर्च होगा। और अपने कोई समाज होगा तो उसको १०) रु० सैकड़े से अधिक कमीशन नहीं मिलेगा। सत्यार्थप्रकाश शोध कर भेज दें[गे] और जोधपुर का हाल आगे लिखेंगे। निर्णयसागर से १५०)[1] १५ की रसीद आ गई। अच्छा हुआ। अब टैप शीघ्र मंगवालो। जो पहले ही रुपये निर्णयसागर में भेज देते तो इतने दिन क्यों रहते। **संस्कारविधि बना सोधकर भेज देंगे।**

मिति अ० व० ६ सं० १९४० मङ्गलवार[2]। हस्ताक्षर

[दयानन्द सरस्वती] २०

जोधपुर राज मारवाड़ मरुस्थल

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८४७] पत्र-सूचना

[श्री महाराणा सज्जनसिंह जी, उदयपुर][3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८४८] पत्राशय

[श्री मनोहरदास खत्री, सम्पादक भारत मित्र, कलकत्ता] २५

१. ८५९ की टि० २ भी देखें। २. २६ जून १८८३।

३. इस पत्र की सूचना बारहट किशनसिंह के आषाढ़ शु० ७, सं० १९३९ (१९४०) के पत्र में है। बारहट किशनसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें।

गोरक्षार्थ अरजी देने का मसौदा वहां के वकील बारिस्टरों से पूंछ कर लिखो।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८४६] उर्दू-पत्र

बाबू दुर्गाप्रसाद जी[2]

हस्ब-उल-ईमाए [आज्ञा] जुनाब स्वामी दयानन्द सरस्वती साहब आप को यहां की कैफियत से इत्तिला देता हूं। चुनाचे २६ **जून सन् हजा को महाराजा महाराजाधिराज राजराजेश्वर वालिए मुल्क मारवाड़ जुनाब स्वामी साहब मौसूफ के दर्शन करने को भैय्या फैजउल्लाखां साहब के बाग में तशरीफ लाए**[3] और २५ रु० और पांच अशरफी नजर गुजरानी। और चन्द लमहा तक महाराजा मौसूफ बख्याल अदब स्वामी साहब कुर्सी नशीनी से बसद अजरूए इनकार फरमाते रहे। मगर जुनाब स्वामी

---

१. [illegible]

२. [illegible] १९२७ में लाए थे। मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

३. पं० लेखरामकृत उर्दू जीवनचरित पृष्ठ ८६० (हि० सं० पृ० ६०७) और इस अंश में उनके अनुवादक स्वामी सत्यानन्द (दूसरा संस्करण पृष्ठ ५०२) और पं० घासीराम (पृ० ६६४) लिखते हैं कि २६ मई सन् १८८३ को श्री स्वामी जी जोधपुर पहुंचे। उस के ठीक सतारहवें दिन [१५ जून] महाराज यशवन्तसिंह जी उनसे मिलने आये। ये दोनों बातें अशुद्ध हैं। इस पत्र से ज्ञात होता है कि महाराज जोधपुर २६ जून को श्री स्वामी जी से मिले। यही बात श्री स्वामी जी के राजाधिराज शाहपुरा नरेश को लिखे गये एक अगले पत्र (पूर्णसंख्या ८५३) से भी ज्ञात होती है। उस पत्र में श्री स्वामी जी लिखते हैं कि "मिति आषाढ़ बदि ७ मङ्गलवार के दिन सर्वाधीश महाराजा जोधपुराधीश पधारे थे।" मङ्गलवार को ही २६ जून पड़ती है। इस पक्ष में आषाढ़ बदि १० लुप्त है। विज्ञापन पूर्णसंख्या ८२६ और पत्र पूर्णसंख्या ८२३, ८२५ के अनुसार ३१ मई प्रातःकाल को श्री स्वामी जी जोधपुर पहुंचे और पूर्णसंख्या ८४६, ८५३ के अनुसार २६ जून को प्रथम बार महाराज उन से मिले।

साहब ने जब दूसरी तीसरी मर्तबा फरमाया, तब मजबूरन जनाब मौसूफ के रोबरु कुर्सी नशीन होकर गुफतगू आगाज की और नौह बनौह की गुफतगू अनकरीब दो घण्टे के ६ बजे शाम से ८ बजे शाम के करते रहे। और बसद बशाशत यानी खुशदिली तशरीफ ले गए। और नीज वाएदा फरमा गए कि अब आप की खिदमत में हाजिर होता रहूंगा। चुनाचे महाराजा मौसूफ की ऐन खवाहिश दिली है कि स्वामी साहिब की हदायत यहां बखूबी ले ली जावे। मुकाम जोधपुर।

तारीख २७ जून सन् ८३।[1]

कमतरीन रायजादा सिंगी नारनौली दामोदरदास[2]

वर मकान जनाब जयकिशनदास

अज जानिब जुनाब स्वामी साहब आनन्दित रहो पहुंचे।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८५०]   पत्र

ओ३म्

बाबू विश्वेश्वरसिंह जी आनन्दित रहो।

मुन्शी समर्थदान को कह देना कि ७० मन्त्र की भाषा का बण्डल भेजा, सो पहुंच गया। अब देखो ज्वालादत्त की बेसमझ का नमूना। हमने यह लिखा था कि जो भाषा बनाने का कागज दूसरे पृष्ठ पर हो और मन्त्र पदार्थ अन्वय भावार्थ दूसरे पर हो। जब ऐसा हो तो भाषा बनाने में विलम्ब होता है। क्योंकि हर बार पत्र उलटाने में देर होती है। और विना पदार्थ अन्वय देखे भाषा नहीं बन सकती। इसलिये लिखा था उसी के सामने कि जिधर की ओर मन्त्र है उसी के सामने नीचे की ओर कागज चेप कर भाषा बनाने से शीघ्र बन सकती है। सो ज्वालादत्त ने उलटा समझ कर सोलह मन्त्र की भाषा दो दो बार लिख दी। यदि ऐसा न करता तो ८ दिन में ७० मन्त्र की भाषा आती। अब देखा जायगा कि

---

१. आषाढ़ कृष्ण ७ बुध, सं० १९४०।

२. इसी मुंशी दामोदरदास के पत्र का संकेत पूर्णसंख्या ८०१, पृष्ठ ८३० में देखें।

३. मूल पत्र श्री नारायण स्वामी जी के संग्रह में सुरक्षित है।

अब के अठवाड़े में कितने मन्त्र की भाषा भेजता है। और समर्थदान ने लिखा है कि **कुछ ज्वालादत्त नई भाषा बनाता है।** यदि वह हमारे संस्कृत और अभिप्राय के अनुकूल हो, तो ठीक है। नहीं तो जो पोपलीला की भाषा बनाकर वहां ही छपवा दे और हमको
५ मालूम न हो, पश्चात् प्रसिद्ध होने से कोलाहल होगा, तो क्या होगा। हां, अब तक तो इसने कुछ नहीं किया है। परन्तु सम्भव है कि कुछ गड़बड़ करे, तो हो सकता है। इसलिये जो कुछ वो बनावे उसको समर्थदान देखले। जैसा कि **अब की भाषा में एक गोल माल शब्द (देवता) लिख दिया था। सो यह हमारे दृष्टिगोचर**
१० **होने से शुद्ध हो गई। यदि वहां ऐसी छप गई तो बड़ी हानि का काम है।** इसलिये ऐसा न होना चाहिये। और हमने कई बार समर्थदान को लिखा है कि धातुपाठ, गणपाठ, उणादिगण, निघण्टु का सूचीपत्र छपना बाकी है। सो तो नहीं छापते और वेदभाष्य वेदभाष्य करते हैं। छापना वेदभाष्य का महीनों पर नहीं है,
१५ किन्तु बारह अङ्क ग्राहकों के पास पहुंचने पर वर्ष माना जाता है। इसलिये इस में थोड़ा बहुत विलम्ब हो तो कुछ चिन्ता नहीं। किन्तु धातुपाठ आदि और **सत्यार्थप्रकाश छपने में विलम्ब होना नहीं चाहिये।** सो जब लिखा है तब अब तो वेदभाष्य छपता है, यह उत्तर देता है। तुम भी ऐसी सम्मति उन को दो कि जिस में
२० यह ४ पुस्तक शीघ्र छप जायें। अब वेदभाष्य के टाइटल पेज पर किसी ग्राहक का रुपया नहीं लिखा। सो क्या रुपया नहीं आया है वा अन्य कुछ है। इन सब बातों का उत्तर समर्थदान से पूछ कर शीघ्र भेजो[1]।

मि० आ० व० ६ शुक्रवार सम्वत् १९४०[2]

दयानन्द सरस्वती
२५ जोधपुर मारवाड़

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८५१] **पत्र**

ओ३म्

---

१. इस पत्र को कई स्थानों पर श्री स्वामीजी ने स्वहस्त से शोधा है।
३० २. ३० जून १८८३।

बाबू नन्दकिशोरसिंह जी आनन्दित रहो[1]—

विदित हो कि तुम्हारे तीन चार पत्र हमारे पास आये[2]। उनका उत्तर समय पर इसलिये नहीं लिख सके [कि] इस समय वेदभाष्य का अधिक काम कर रहे हैं। तुम ने उदयपुर से लेकर शाहपुरा तक कई पत्र इस विषय में भेजे कि जब आप की यात्रा करने में ५ दश पन्द्रह दिन शेष रहें, तब हम को विदित करना। इस बात का अभिप्राय जो होगा वह तुम जानते ही[3] होगे और कुछ लिखा भी था।

यहां के श्रीयुत महाराजे योधपुराधीश और महाराजे प्रतापसिंह जी तथा रावराजा तेजसिंह जी आदि ने प्रीति के साथ पाली १० में सवारी भेज कर मुझ को बुलाया। अब यहां श्री योधपुराधीश तथा म[हा]राजे प्रतापसिंह जी आदि प्रेम प्रीति के साथ समागम करते हैं। और दो एक व्याख्यान भी दिये। और प्रतिदिन राजपुरुष तथा प्रजापुरुष आते जाते हैं। यथाबुद्धि पूछते हैं। हम यहां फैजुल्लाखां जी के बाग में ठहरे हैं। और जो विशेष लिखने योग्य १५ होगी सो पश्चात् तुम को लिख के विदित करेंगे। **और जो अं[ग]रेजी में बायबिल का पूर्वापर विरुद्ध आयतें लिखी हैं। उस की देवनागरी ठीक ठीक कराके शीघ्र योधपुर में हमारे पास भेज देना**[4]। सब से हमारा आशिष कह देना।

---

१. मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है। २०

२. बा० नन्दकिशोर जी के तीन चार पत्रों में से केवल एक पत्र ज्येष्ठ कृष्णा ३० भौमवार सं० १९४० (५ जून १८८३) का ही उपलब्ध हुआ है। इस पत्र को तीसरे भाग में देखें।

३. यहां 'तुम ही जानते होगे' ऐसा होना चाहिये।

४. इन्हीं दिनों अमेरिका से "सेल्फ कण्ट्रोडिक्शन्स् आफ दि बाईबल" २५ नामक एक अंग्रेजी पुस्तक प्रकाशित हुई थी। उसी के देवनागरी अनुवाद की ओर यह संकेत है। बाबू नन्दकिशोरसिंह ने आषाढ़ शु० ३ सं० १९४० (७ जुलाई) तथा २४ जुलाई के पत्रों में इसके भाषानुवाद के विषय में लिखा है (बाबू नन्दकिशोरसिंह जी के ये दोनों पत्र तीसरे भाग में देखें)। बाबू नन्दकिशोरसिंह द्वारा भाषा में अनूदित तथा छपी हुई उक्त पुस्तक का प्रथम ३० संस्करण वैदिक पुस्तकालय (सं० ३१५।२००) अजमेर में तथा द्वि० सं०

आषाढ़ वदी १० शनि[1]	लिखने योग्य वहां का जो समाचार
संवत् १९४०	हो सो भी लिखना[2]

[दयानन्दसरस्वती] राज मारवाड़ योधपुर

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८५२] पत्र-सूचना

[कविराज श्यामलदास, उदयपुर][3]

आषाढ़ वदी ११ [सं० १९४०][4]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८५३] पत्र

ओ३म्

श्रीयुत मान्यवर श्रीमहाराजाधिराज शाहपुरेश आनन्दित रहो[5]।

मैंने दो पत्र आप के पास भेजे[6]। उस का उत्तर भी आज तक नहीं आया। एक ५०) रु० का मनीआर्डर[7] भेजा था, जो कि शाहपुरे के डाकखाने का था रजिस्ट्री कराके भेजा था[8]। उस की

आर्यसाहित्य मण्डल अजमेर में है। इस विषय में विशेष "ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास" पृष्ठ ४१, ४२ देखें।

१. वदी ११ लिखकर १० की गई है। वस्तुतः ११ चाहिये। १० लुप्त है। ३० जून १८८३।

२. इस पत्र का उत्तर ठा० नन्दकिशोरसिंह ने मिती आषाढ़ शुक्ल ३ शनि सं० १९४० को दिया। इसे तीसरे भाग में देखें।

३. इस पत्र का संकेत कविराज श्यामलदास के श्रावण शुक्ल ५ सं० १९४० के पत्र में है। कविराज श्यामलदास का पत्र तीसरे भाग में देखें।

४. ३० जून शनि १८८३।

५. मूल पत्र शाहपुरा राज्य में सुरक्षित है।

६. यह संकेत पूर्णसंख्या ८२५, ८३४ के पत्रों की ओर है।

७. सम्भवतः 'पोस्टल आर्डर'। क्योंकि अगला लेख उसी सम्बन्ध में सम्भव है; मनियार्डर के सम्बन्ध में नहीं।

८. इसके साथ भेजा गया पत्र हमें उपलब्ध नहीं हुआ।

रसीद आज तक नहीं आयी। इसलिये वहां के डाकखाने से रु० लेकर हुंडी कराकर यहाँ मेरे नाम भेज दीजिये। और रसीद भी और जो छीतरदत्त जी भी वेदभाष्य के रुपए दें, तो इसी के साथ भेज देवें, क्योंकि वेदभाष्य उन के पास पहुंच गया है। और छा(क्षा)त्रशाला का आरम्भ हुआ कि नहीं। अग्निहोत्र का आरम्भ हो गया, यह बहुत अच्छी बात हुई। मिति आषाढ़ वदी ७ मंगलवार[1] के दिन सर्वाधीश महाराजा योधपुराधीश पधारे थे। दो घंटे तक बात चीत कर और उपदेश सुन कर और प्रसन्न हो कर पीछे पधार गये, और महाराजा प्रतापसिंह जी तथा रावराजा तेजसिंह जी नित्य आया करते हैं। जैसा चाहिये वैसा तो बन्दोबस्त नहीं, परन्तु ठीक ठीक है। और ज्वाहरसिंह जी का वर्तमान आपने कुछ नहीं लिखा। और जो बात आपके पूर्व प्रतिज्ञात पत्र से कुछ विरुद्धाचरण हो सो भी मुझको लिखिये। और सब को मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

मि० आ० [illegible] सं० १९४०[2]। जोधपुर राज मारवाड़।

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८५४] पत्रांश

[कमलनयन मन्त्री आर्यसमाज अजमेर][3]

·········· काशीस्थ पं० से पत्रव्यवहार से पूछो कि मासिक कितने तक आ सकता है।

४ जुलाई १८८३[4]। जोधपुर दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८५५] पत्र

ओ३म्[5]

---

१. २६ जून १८८३। देखो पत्र पूर्ण संख्या ८४९। [वस्तुतः यहां आषाढ़ वदी ६ चाहिये।]

२. ३० जून शनिवार १८८३। ३. देशहितैषी के रजिस्टर से।

४. आषाढ़ कृष्ण ३०, बुध सं० १९४०।

५. पं० चमूपति जी सम्पादित पत्रव्यवहार पृष्ठ ३८ पर छपा है। वहीं से लिया गया है।

श्रीयुत माननीयवर शुभगुणगणालंकृत श्रीमहाराजा राजाधिराज श्रीशाहपुराधीश आनन्दित रहो।

विदित हो कि हम ने ५०) रुप्या का मनियाडर[1] भेज्या था। सो रुपया ५०) काका साब सबलसिंह जी के हाथ आ पहुंचा। और ५ अग्निहोत्र का आरम्भ हो गया, सुन के अत्यन्त आनन्द हुआ। और क्षात्रशाला का आरम्भ होगा, सुनेंगे जब, अत्यन्द आनन्द होगा।

सम्वत् १९४० मि० आषाढ़ शुक्ल ४ रवि[2]।

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

१० [पूर्ण संख्या ८५६] पत्रांश

[ठाकुर सबलसिंह जी]

अब कुछ दिन यहां ठहरेंगे। तुम्हारे साथ नहीं (कहीं?) चलेंगे[3]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८५७] पोस्ट कार्ड-सारांश

१५ [श्रीयुत बारट किशनसिंह जी]

पुरोहित उदयलाल को पूछ के लिखो। तुम्हारे पास घड़ी आई कि नहीं[4]।

—:o:—

१. देखो पूर्व पृष्ठ ८७४ की टि० ७। २. ८ जुलाई १८८३।

३. इस का संकेत पूर्ण संख्या ८५९ के पत्र में है (द्र० – पृष्ठ ८७९, २० पंक्ति ८)।

४. ऋ० द० के द्वारा भेजे गये एक पोस्टकार्ड का उल्लेख बारहट किशनसिंह ने अपने श्रावण बदि ५ को लिखे गये पोस्टकार्ड में किया है। यह पोस्टकार्ड ऋ० द० के पूर्ण संख्या ८५९ के पत्र के अन्त (पृ० ८७९) में संकेतित पोस्टकार्ड से भिन्न है अथवा उसी का उत्तर देते समय घड़ी की २५ पहुंच की सूचना देनी रह गई, जिसकी सूचना बारहट किशनसिंह ने श्रावण बदी ९ सं० १९४० के पत्र में दी है। बारहट किशनसिंह के श्रावण ब० ५ तथा ९ के पत्र तीसरे भाग में देखें।

[पूर्ण संख्या ८५८] पारसल-सूचना

ईसाई मुसलमान मत के खण्डन विषयक दो पुस्तक[1]।

आषाढ़ शुक्ल १४ सं० १९४०[2] (१९ जुलाई १८८३)।

---:o:---

[पूर्ण संख्या ८५९] पत्र

श्रीयुत बार्ट किसनसिंह जी आनन्दित रहो[3]। ५

पत्र आप का आया[4] समाचार विदित हुआ। श्रीमान् महाशयों के शरीर की आरोग्यता की बात सुन कर अत्यानन्द हुआ। और जो सर्वाधीशों की अनुमति से लिखा है सो ठीक है। अब मैंने इस का सद्यः उपाय यह निश्चय किया है कि **ईसाई वा मुसलमानों के** १० **मत का खण्डन थोड़ा सा कल की डाक में तुम्हारे पास रजिष्टरी करा के रवाना किया है।**[5] उसको वहां यन्त्रालय में १००० वा १०००० छपवा कर ५०० वा १००० उदयपुर में बांट देना चाहिये। और बाकी देश में ठिकाने ठिकाने पर वा अच्छे चतुर स्कूल के मास्टर और तालबिलमों को देनी उचित हैं।

और वहां राज में दो चार पांच सात पण्डित निकमे बैठे रहते १५ हैं। उन को यह खण्डन देकर बाजार में जहां कि वे[6] खड़े हों वहां जाकर इन्हीं प्रश्नों में से प्रश्नोत्तर करें। और पण्डित अर्थात् — उपदेशक जिन नियमों पर चाहा है वैसा मिलना और उस का इन

---

१. इस पारसल का उल्लेख पूर्णसंख्या ८५९ के पत्र तथा पूर्णसंख्या ८७५ के पत्र में है। २०

२. पूर्णसंख्या ८५९ के आधार पर।

३. पं० चमूपति सम्पा० पत्रव्यवहार पृष्ठ १७५, १७७ पर छपा मूल पत्र ठा० किशोरसिंह जी के पास है।

४. बारहट किशनसिंहजी का सं० १९३९ (?, १९४०) आषाढ़ शुक्ला ७ का पत्र तीसरे भाग में देखें। २५

५. इस की पहुंच तथा प्रस्तुत पत्र का निर्देश बारहट किशनसिंह जी ने सं० १९४० श्रावण शुक्ला २ के पत्र में किया है। बारहट किशनसिंह जी का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

६. अर्थात् पादरी और मौलवी लोग।

बातों को स्वीकार करना कठिन पड़ेगा। क्योंकि ईसाई वा मुसलमान लोग तीर्थ मूर्ति मन्दिर इन तीनों बातों पर खण्डन चलाते हैं। यदि जो इन तीनों को स्वीकार करेगा, वह उनके सामने कुछ न कर सकेगा। क्योंकि वे ईसाई मुसलमान लोग इन्हीं के दृष्टान्त ५ दिया करते हैं। और ये बातें वेद शास्त्र से सिद्ध तो क्या, परन्तु युक्तिसिद्ध भी नहीं हो सकती। इस से चाहे वह भीतर मानता भी हो तो परन्तु उनके सामने तीर्थ मूर्ति मन्दिर और चौथा पुराण, पाचवां माहात्म्य छवां व्रत, सातवां कण्ठी तिलक, आठवां कोई संप्रदायानुकूल और नवां अवतार आदि सिवाय वैदिक मत के जब १० तक नहीं मानेगा तब तक उनका खण्डन न कर सकेगा। इसलिये यह बात अवश्य होगी। इस कारण उस उपदेशक को समझा दिया जाय कि जब उनके सामने चर्चा की जाय तब जो इन ९ बातों पर शंका अर्थात् तर्क ईसाई लोग करें तब उस समय वह कह दें कि इन बातों को हम नहीं मानते। हम तो केवल एक सच्चिदानन्द १५ परमात्मा को मानते हैं। तभी उन का विजय कर सकेगा। और जो कोई आर्यसमाज से विद्वान् आवेगा, वह इन प्रतिज्ञाओं को स्वीकार नहीं करेगा। क्योंकि जब तक आप निर्दोषमत को नहीं मानता, स्वयं दोषी होता है। तब तक दूसरे दोषयुक्त मतों को कभी नहीं काट सकेगा। इसलिए उपदेशक तो शुद्ध ही होना २० चाहिये। और जैसा श्रीमानों का देशकालानुकूल अभिप्राय है उस अभिप्राय कीत से जो उपाय पूर्व मैंने लिखा है, सो ठीक है। यदि जो मैंने लिखा है कि इन नौं बातों का जो खण्डन करेगा तो उनके सामने मानेगा भी नहीं। तभी यह बात पार पड़ेगी। और श्रीमानों का अभिप्राय भी इसी प्रकार सिद्ध होगा। यदि किसी २५ को बुलाने ही की इच्छा हो तो वह नौ बातों को स्वीकार न करे। और अंगरेज ईसाईयों को २५०००० ढाई लाख रुपये देते हैं तो हम लोगों में सहायक क्यों न हों ? और मिथ्या मत का खण्डन और सत्य मत का प्रचार होना, इस से उत्तम धर्म और क्या होगा।

३० मिति आ० शु० १५ संवत् १९४०[1]।

---

१. २० जुलाई १८८३।

मेरा यहां से किस स्थान में जाना होगा, जु अब तक निश्चय नहीं किया। और यहां रहने का भी कोई निश्चय समय नहीं है। अनुमान है कुछ यहां रहना होगा। यहां का सुधार कुछ थोड़ा सा हुआ है और बहुत सा बाकी है। संपूर्ण परमात्मा की कृपा से हो सक्ता है। क्योंकि कई प्रकार के रोग लगे हैं। औषधी सेवन और पथ्य बहुत कम है। इस का विस्तार पश्चात् लिखा जायगा। **ठाकर सबल सिंह जी को यही जवाब दिया है कि अब कुछ दिन यहां ठहरेंगे। पश्चात् तुम्हारे साथ नहीं (कहीं ?) चलेंगे। और हमने एक कार्ड में तुमको लिखा था। पुरोहित उदयलाल को पूछ के लिखो तुम्हारे पास घड़ी आई कि नहीं।** इसका उत्तर हमारे पास अब तक नहीं आया है। और घड़ी तुम्हारे पास एक आई वा दो। जो एक आई तो कुछ चिन्ता नहीं। और जो दो आई हों तो एक हमारे पास भेज दो।

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८९०]　　पत्र सूचना

[पं० गोपालराव हरि देशमुख][2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८९१]　　पत्र-सूचना

[स्वामी सहजानन्द सरस्वती][3]

---

१. इस घड़ी का संकेत पूर्णसंख्या ७८० (पृ० ८०९) की पत्रसूचना में है। ऊपर संकेतित पोस्टकार्ड का उल्लेख तथा इस पत्र का उत्तर बारहट किशनसिंह ने श्रावण वदि ९ सं० १९४० के पत्र में दिया है। बारहट किशनसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. इस पत्र का संकेत गोपालराव हरि देशमुख के पुत्र लक्ष्मण गोपाल देशमुख के ७ अगस्त १८८३ के पत्र में है। उस में दो पत्र पहुंचने का उल्लेख है। एक पत्र की सूचना यहां जोड़ी है तथा दूसरे पत्र की सूचना आगे पूर्णसंख्या ८९७ पर जोड़ी है। लक्ष्मण गोपाल देशमुख का पत्र तीसरे भाग में देखें।

३. इस पत्र का निर्देश स्वामी सहजानन्द के २९ जुलाई १८८३ के पत्र में है। स्वामी सहजानन्द का पत्र तीसरे भाग में देखें।

[पूर्ण संख्या ८६२] पत्र-सूचना

[स्वामी ईश्वरानन्द][1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८६३] पत्र

ओ३म्

५ श्रीयुत भारतमित्र सम्पादक महाशय निकटे निवेदनम्।[2]

महाशय, आपके संवत् १९४० आषाढ़ शुदी ८ गुरुवार[3] के छपे हुए पत्र में किसी ने वेद पर आक्षेपपत्र छपवाया है।[4] उस लेखक का अभिप्राय यही विदित होता है कि वेद ईश्वर की वाणी और अभ्रान्त नहीं है। परन्तु इस प्रश्न के करने वाले ने प्रश्नमात्र ही
१० किया है। अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिये कोई विशेष हेतु नहीं लिखा। अर्थात् उत्तर उस बात का होता है जो किसी वेद-वचन मूल पर भ्रान्तपन दिखलाता तो उसका उत्तर उस समय दिया जाता। जैसे कोई कहे कि यह १०००) एक हजार रुपयों की थैली सच्ची नहीं। दूसरे ने उस से पूछा क्या मैं तुम्हारे कहने
१५ मात्र ही से थैली को झूठी मान सकता हूं। जबतक तुम झूठा रुपया इस में से एक भी निकाल के सिद्ध नहीं कर देते, तब तक मैं थैली को झूठा नहीं मानूंगा। वैसा ही मिष्टर ए० ओ० ह्यूम साहेब और जिसने आप के पत्र में छपाया है इन दोनों महाशयों का लेख

---

१. इस पत्र की सूचना स्वामी ईश्वरानन्द के श्रावण वदी ८ सं०
२० १९४० (२७ जुलाई १८८३) के पत्र में है। स्वामी ईश्वरानन्द का पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. मूल पत्र म० मामराज जी ने फरवरी १९२७ में फर्रुखाबाद के पत्रों में से खोजा। अब हमारे संग्रह में सुरक्षित है। इस पत्र पर "भारत-मित्र" काटकर "भारतसुदशाप्रवर्तक" बनाया हुआ है।

२५ ३. १२ जुलाई १८८३। भारतमित्र का यह अङ्क कमलनयन शर्मा ने स्वामी जी के पास उत्तर लिखने के लिये भेजा था। देखो कमलनयन शर्मा का २१-७-८३ का पत्र। यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

४. यह आक्षेप पत्र मिस्टर ह्यूम का था। यह आक्षेप पत्र तीसरे परिशिष्ट में देखें।

है। यहां उनको योग्य था और है कि किसी एक वा अनेक मन्त्रों को अपने अभिप्राय के अर्थ सहित वेद, अध्याय, मन्त्र, संख्यापूर्वक लिख कर पश्चात् कहते कि वेद ईश्वर की वाणी और अभ्रान्त नहीं है, तो प्रत्युत्तर के योग्य प्रश्न होता। अब भी यदि उत्तर जानने की इच्छा हो तो इसी प्रकार करें, नहीं तो कुछ भी नहीं ५
है। किन्तु इस में इतनी बात तो समाधान देने के किसी प्रकार योग्य है कि वेदों में मतभेद क्यों है। अब देखिये यह भी इनकी गोलमाल बात है। क्योंकि वेदों में किस ठिकाने और किन मन्त्रों में किस प्रकार के मतभेद हैं। हां, विद्याभेद से कथन का भेद होना तो उचित ही है। जैसे व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, वैद्यक, १०
राजविद्या, गान, शिल्प और पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त की अनेक विद्याओं की मूल विद्या वेदों में हैं। इन के संकेत शब्दार्थ और सम्बन्ध भिन्न भिन्न हैं। जैसे व्याकरण विद्या से ज्योतिष विद्यादि के संकेत परिभाषा और पदार्थ विज्ञान पृथक् पृथक् होते हैं, वैसे इन सब विद्याओं के वाचक अर्थात् प्रकाशक मन्त्र भी पृथक् १५
पृथक् अर्थ के प्रतिपादक हैं। यदि इन्हीं को मतभेद कहते हैं तो प्रश्नकर्त्ता का कथन असंगत है। और जो दूसरे प्रकार मतभेद मानते हैं तो उन का कथन सर्वथा अशुद्ध है। इसलिये प्रश्नकर्त्ताओं को उचित है कि पूर्वोक्त प्रकार से चारों वेदों में से जो कोई एक मन्त्र भी भ्रांत प्रतीत होवे, वह आप के पत्र में मिष्टर ए० ओ० २०
ह्यूम साहेब छपवावें। उनका उत्तर भी आप ही के पत्र में उचित समय पर छपवा दिया जायगा। और उनको वेद के निर्भ्रान्त होने के जानने की पक्की जिज्ञासा हो तो मेरी बनाई ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका को देख लेवें। यदि उन के पास न हो तो वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से मंगा कर देखें। और जो उन को आर्यभाषा का पूरा ज्ञान २५
न हो तो किसी सत्यवक्ता दुभाषिये पुरुष से सुनें। इस पर जो उन को शंका रह जाय तो मुझ से समक्ष मिल के जितनी शंका हों उन सब का यथावत् समाधान लेवें। क्योंकि पत्रों से शंका समाधान होने में विलम्ब होता और अधिक अवकाश की भी अपेक्षा है। और मुझ को वेदभाष्य बनाने के काम से अवकाश न मिलने के ३०

कारण विशेष प्रश्नोत्तर करने का समय नहीं है। और जो उन्होंने यह लिखा कि स्वामी जी ईश्वर वा ईश्वर को प्रेरणायुक्त हों तो उनका भाष्य निर्भ्रम हो सके। मैं ईश्वर नहीं, किन्तु ईश्वर का उपासक हूं। परन्तु वेद मनुष्यों के हितार्थ परमात्मा ने प्रकाशित ५ किये हैं। इस अभिप्राय से कि यहां तक मनुष्यों की विद्या और बुद्धि पहुंच सकेगी और इतने तक कार्य मनुष्य कर सकेंगे। इस लिये यावत् मेरी बुद्धि और विद्या है तावत् निष्पक्षपात होकर वेदों का अर्थ प्रकाशित करता हूं। और वह अर्थ सब सज्जनों के दृष्टिगोचर हुआ है, होता है और होगा भी। यदि कहीं भ्रांति हो १० तो उक्त साहेब प्रकाशित करें। बड़े शोक की बात है कि आज पर्यन्त एक भी दोष वेदभाष्य में से कोई भी नहीं निकाल सका है फिर भी इन का भ्रम दूर नहीं हुआ। ऐसी निर्मूल शंका कोई भी किया करे, इस से कुछ भी हानि नहीं हो सकती। और सत्यार्थ होने ही से वेदों का निर्भ्रान्तत्व यथावत् सिद्ध है। यदि इस मेरे १५ बनाए भाष्य में मिस्टर ए० ओ० ह्यूम साहेब को भ्रम हो तो इस में से भ्रांतिमत्त्व किसी मन्त्र के भाष्य द्वारा आप के पत्र में छपा देवें। मैं उत्तर भी आप ही के पत्र द्वारा देऊंगा'[1]। और जो थियोसोफिस्ट के अध्यक्ष ऐसी बातें करें, इस में क्या आश्चर्य है ?। क्योंकि वे अनीश्वरवादी बौद्धमतावलंबी हो कर भूत, प्रेत और २० चुटकुलों के माननेवाले हैं। बड़े शोक की बात है कि सर्वथा विद्या-सिद्ध परमात्मा को न मान कर भूत, प्रेत, मृतकों में फस कर और भोले मनुष्यों को फसा अपने को सुधारने वाले मानना यह कितनी बड़ी अनुचित बात है। इन को तो नास्तिकमत जो कि ईश्वर को न मानना है वही प्रिय लगता है। परन्तु इस में इतनी ही न्यूनता २५ है कि भूत प्रेतों ने इन को घेर लिया। सच है जो सत्य ईश्वर को छोड़ेंगे वे मिथ्या भ्रम जाल भूत प्रेतों और बन्ध्यापुत्रवत् कुतूहूंवी-लालसिंह[2] (?) आदि में क्यों न फसेंगे। बहुत से समाचारों में छपवाते हैं कि इतने हजार मनुष्यों को मिष्टर एच० ए० करनेल

---

१. इस से अगला लेख सम्पादक भारतमित्र ने नहीं छापा। देखो पत्र ३० पूर्णसंख्या ८७३ का आरम्भ।

२. इस विषय में पूर्ण संख्या ६४८ पृ० ६८१ की टि० २ देखें।

ओलकाट साहब ने रोग रहित किया। यदि यह बात सच हो तो मुझ को क्यों नहीं दिखलाते और मनवाते। और मेरे सामने कि जिसको मैं कहूं उस एक को भी नीरोग कर दें तो मैं थियोसोफिस्टों के अध्यक्ष को धन्यवाद देऊं। इस में मुझ को निश्चय है कि जैसे एक थियोसोफिस्ट दंभ के मारे लाहौर में अपनी अंगुली कटवा के अंग भंग हो गया, कहीं ऐसी गति मेरे सामने इनकी न हो जावे। और करामात कुछ भी काम न आवेगी। प्रसिद्धि से कहता हूं कि यदि उन में कुछ भी अलौकिक शक्ति वा योगविद्या हो तो मुझ को दिखलावें। मैंने जहां तक इन की लीला सिद्धि और योगविषयक देखी हैं कि वह मानने के योग्य नहीं थी। अब क्या नई विद्या कहीं से सीख आए? मुझ को तो यह विषय निकम्मा आडम्बर रूप दीखता है। अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु।

मिति श्रावण वदी ४ संवत् १९४०। दयानन्द सरस्वती[1]
तदनुसार २३ जुलाई सन् १८८३। जोधपुर।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८६४] पत्र

श्रीयुत भारतसुदशाप्रवर्तक सम्पादक महाशय निकटे निवेदनम्[2]।

[पूर्ण संख्या ८६३ का पत्र]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८६५] पत्र

श्रीमान् देशहितैषी सम्पादक महाशय निकटे निवेदनम्[3]।

[पूर्ण संख्या ८६३ का पत्र]

—:o:—

१. यह भारतमित्र सम्पादक के नाम का पत्र मुंशीराम सम्पादित पत्रव्यवहार पृष्ठ ९८-१३ पर छपा है। इसमें हस्ताक्षर और तिथि नहीं है। अगले भारतसुदशाप्रवर्तक और देशहितैषी वाले में है।

२. देखो पूर्व पृष्ठ ८८० की टि० २ तथा पूर्ण संख्या ८६९ के पत्र का अन्त (पृष्ठ ८८५)।

३. देशहितैषी के सम्पादक और आर्यसमाज अजमेर के मन्त्री कमल-

[पूर्ण संख्या ८६६] पत्रांश

[कमलनयन मन्त्री आर्यसमाज अजमेर]

.........पत्र छापने को भेजते हैं[1] ।.........

२५ जुलाई १८८३[2] जोधपुर। दयानन्द सरस्वती

—:०:—

५ [पूर्ण संख्या ८६७] पत्र-सारांश

[पं० गोपालराव हरि देशमुख]

घड़ी पहुंची, घड़ी के मूल्य के विषय में............।[3]

श्रावण वदी १० रवि सं० १९४०

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८६८] पत्र-सूचना

१० [सेवकलाल कृष्णदास, बम्बई]

नयन शर्मा को यह पत्र २५-७-८३ को भेजा गया। देखो कमलनयन शर्मा का २९-७-८३ का पत्र। कमलनयन शर्मा का पत्र तीसरे भाग में देखें।

इस विषय में अगला पूर्णसंख्या ८६६ का पत्र और उसकी टिप्पणी भी देखें।

१५ १. देशहि० के रजिस्टर से। पूर्ण संख्या ८६३ वाला पत्र।

इस का उत्तर कमलनयन शर्मा ने २९-७-८३ को लिखा। उसे तीसरे भाग में देखें। उसमें लिखा है—"मिस्टर ए० यू० होम (ह्यूम) साहब के कथन का खण्डन जो आपने देशहि० में छपने को भेजा है सो पहुंचा।...... कमलनयन"

२० २. श्रावण कृष्ण ३ बुध, सं० १९४०।

३. इस पत्र की सूचना लक्ष्मण गोपाल देशमुख के ७ अगस्त १८८३ के पत्र में है। वहां लिखा है—'आपका श्रावण वद्य १० का पत्र है सो आषाढ़ वद्य १० होना चाहिये।' महाराष्ट्र में अमावास्यान्त मास होता है। उत्तर भारत में पूर्णिमा पर मास समाप्त हो जाता है। उत्तरभारतीय पञ्चाङ्ग

२५ की पद्धति का ज्ञान न होने से लक्ष्मण गोपाल ने उक्त पंक्ति लिखी है। उत्तरभारत में कृष्णपक्ष जिस मास में गिना जाता है, वह दक्षिण में अमान्त मास मानने से उससे पूर्व मास का कृष्णपक्ष होता है।

घड़ी पहुंचने के विषय में।[1]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८६९]　　　　कार्ड

ओ३म्　　　　जोधपुर
श्रावण वदी १० रवि सं० १९४०[2]।

श्रीयुत बाबू दुर्गाप्रसाद जी आनन्दित रहो।　　५

आपने १२५ आम भेजे सो पहुंचे। उन में से ८० आम अच्छे रहे और बाकी बिगड़ गये। परन्तु आम बहुत अच्छे थे। और उदयपुर और साहपुरे की रसीद के लिये लिख भेजेंगे, पहुंच जायंगी। आप अपने २००) रुपये लेके बाकी रुपये लाला निर्भैराम की दूकान पर जमा करा दीजिये। क्योंकि आज कल वैदिक यन्त्रा-　१० लय की दशा जब से समर्थदान आया है तब से अच्छी है। और पण्डित सुन्दरलाल प्रवन्ध भी अच्छा करते हैं। यहां का समाचार अच्छा है, पश्चात् लिखेंगे।

लाला कालीचरण जी के पास मिष्टर ऐ० ओ ह्यूम साहब के प्रश्नोत्तर का पत्र छापने के लिये भेजा है, पहुंचा होगा[3]।　१५

सब से हमारा आशीर्वाद कह देना[4]।

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८७०]　　　　पत्र

ओ३म्

श्रीयुत बहारट किशन जी आनन्दित रहो[5]—　　२०

---

१. इस का निर्देश श्री लक्ष्मण गोपाल देशमुख को ७ अगस्त १८८३ के ही पत्र में है। देखो तीसरा भाग।

२. २९ जुलाई १८८३।

३. देखो पूर्ण संख्या ८६४ का पत्र तथा पृष्ठ ८८३ की टि० २।

४. मूल कार्ड हमारे संग्रह में सुरक्षित है। म० मामराज जी ने आर्य-　२५ समाज फर्रुखाबाद के पत्रों में फरवरी सन् १९२७ में खोजा।

५. मूल पत्र ठाकुर किशोरसिंह के संग्रह में सुरक्षित था।

कार्ड तुम्हारा आया[1], समाचार विदित हुआ। हमने मुसलमान और ईसाई के मतविषयक दो पुस्तक रजष्टरी कराके भेजे थे,[2] अवश्य पहुंचे होंगे। उसका उत्तर अब तक क्यों नहीं भेजा। पहुंचे वा नहीं। और उस के साथ एक पत्र भेजा था[3]। वह पहुंचा ५ होगा। सर्वाधीशों के दृष्टिगोचर भी कराया होगा। अब मेरी चिट्ठी और वे दोनों पुस्तक पहुंचने के पश्चात् क्या निश्चय किया गया। क्या जो मैंने लिखा वही ठीक माना गया वा कुछ विचारान्तर किया। इन सब बातों का उत्तर शीघ्र भेजना। यहां का समाचार पश्चात् लिखेंगे।

१० और जो एक पत्र लाहौर का श्रीमानों के अवलोकन और संमत्यर्थ भेजा था, उस का क्या विचार ठहरा। जो कि लाला साईंदास प्रधान आर्यसमाज लाहौर ने भेजा था। उस का भी उत्तर श्रीमानों से पूछ के भेजो। तथा श्रीमान् महाशयों के आरोग्यता का वर्तमान और वर्षा का भी वर्तमान लिखो।

१५ और जैकर्ण जी से कहना कि तुमारे पिता जी की मित्रता श्रीमान् योधपुराधीश प्रतापसिंह जी और रावराजा तेजसिंह जी से अच्छी प्रकार करा दी है[4]। और पूर्व जो उन के हृदय में भ्रांति थी वह भी निकाल दी। और श्रीमानों से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

२० संवत् १९४० मिति श्रावण वदी ११[5]।

[दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़

—:०:—

१. यह कार्ड बारहट किशनसिंह ने श्रावण वदी ५ मङ्गलवार सं० १९४० को भेजा था। यह कार्ड तीसरे भाग में देखें।

२५ २. पूर्ण संख्या ८५८, पृष्ठ ८७७।

३. पूर्णसंख्या ८५९ का पृष्ठ ८७७ पर छपा।

४. इस बात का उल्लेख श्री जयकर्ण जी के पत्र में है। जयकर्ण का पत्र तीसरे भाग में देखें।

५. ३० जुलाई १८८३। इस पत्र का उत्तर बारहट किशनसिंह ने सं० ३० १९४० श्रावण शुक्ला २ के पत्र में दिया है। यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

[पूर्ण संख्या ८७१] **पत्र-सारांश**

[पं० छगनलाल द्विवेदी, मसूदा राज्य]

[पारस्कर गृह्यसूत्र की भाष्य सहित पुस्तक कहीं से ढूंढ कर भेजो][1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८७२] **पत्र** ५

ओ३म्[2]

स्वस्ति श्रीमद्राजराजेश्वर महाराजाऽधिराजवर्य्येभ्यः श्रीमद्योधपुराऽधिपतिभ्यो मत्प्रेरिता आशिषः सन्तु।

(गुप्तसमाचार)

पुरुषाः सुलभा राजन् सततं प्रियवादिनः। १०
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥१॥[3]

हे धृतराष्ट्र ! इस जगह में बहुत पुरुष सुलभ अर्थात् सुख से प्राप्त होते हैं जो सदा दूसरे की खुशामद की बातें करके अपना मत[ल]ब सिद्ध करते। परन्तु सुनने में अप्रिय और परिणाम में कल्याणकारी वचन का उपदेष्टा और सुनने वाला ये दोनों पुरुष १५ अति दुर्लभ हैं। १।

यथा योधृषु वर्तमानो जयः पराजयश्ज राजनि व्यपदिश्यते। महाभाष्य[4]—

---

१. यह पत्र-सारांश पं० छगनलाल द्विवेदी के श्रा० शु० १५ सं० १६४० के संस्कृत पत्र के अनुसार बनाया है। इन दिनों ऋ० द० संस्कार- २० विधि का संशोधन कर रहे थे। उसी के लिये पारस्करगृह्य-भाष्य की आवश्यकता हुई होगी। छगनलाल द्विवेदी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. पं० चमूपति सम्पादित पत्र-व्यवहार पृष्ठ ६८ पर छपा है। मूल लेख कई स्थानों पर श्री स्वामी जी का शोधा हुआ है। मूल पत्र ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में सुरक्षित है। प्रतीत होता है कि इसी की शोधित २५ प्रतिलिपि महाराज योधपुर को भेजी गयी होगी।

३. महाभारत उद्योगपर्व अ० ३६, श्लोक १५, विदुर का उपदेश। वहां **'सुलभाः पुरुषा राजन्'** पाठ है।

४. महाभाष्य में यह पाठ नहीं है। योग व्यासभाष्य १।२४ में इस

जैसे सेना की हार वा जीत राजा की ही हार और जीत मानी जाती है वैसा ही श्रीमानों को अवश्य चाहिये ।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तद्राजसमुदाहृतम् ॥ गीता [१८।३८][1]

५ जो विषय और इन्द्रियों के संयोग से आदि में अमृतरूप सुख प्रतीत होता है, वही परिणाम अर्थात् पश्चात् विष के तुल्य होकर महादु:खदायक हो जाता है ।

आप स्वयं बुद्धिमान् हैं। इतने ही से बहुत समझ लेंगे। सौभाग्य की बात है कि आप में अनेक प्रशंसनीय शुभगुण आरोग्य १० और राज्यैश्वर्य्य सम्पन्नता वर्त्तमान है। परन्तु शोक की बात है कि ऐसे आप बुद्धिमान् होके नीचे लिखी हुई थोड़ी सी बातों में न जाने क्योंकर प्रवर्त्तमान रहते हैं। वे ये हैं—यदि आप मद्यपान, वेश्या सङ्ग, पतङ्ग उड़ाना, घुड़दौड़ आदि द्यूत नहीं छोड़ते और राज्य-पालन कर्म में कम से कम छ: घण्टा परिश्रम और महालक्ष्मीरूप १५ राजकन्या स्वपत्नियों से अधिक प्रेम नहीं करते हैं इत्यादि शोच-नीय बातें आप में हैं। आप निश्चय समझिये कि जितने आप के आधीन-पुरुष कीर्ति वा निन्दा का काम करेंगे, वह सब आप की ही पर गिने जायेंगे। यदि आप स्वयं मद्यपानादि में प्रवृत्त न हों तो क्या कोई भी इन में आपको प्रवृत्त कर सकता है। जो स्वार्थी २० खुशामदी हैं वे तो सदा यही चाहते हैं कि राजा प्रमाद में लगें तो हमारे सब प्रयोजन सिद्ध हो जायें। परन्तु संसार में इन का नाम कोई भी न लेगा, किन्तु—

(प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्य्ये सम्प्रत्ययः) महाभाष्य[2]—

प्रकार पाठ है—"**यथा जय: पराजयो वा योधृषु वर्तमान: स्वामिनि व्यप-** २५ **दिश्यते** "।

१. गीता में '**तत्सुखं राजसं स्मृतम्**' पाठ है ।

२. महाभाष्य के नाम से यही वचन ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदविषय-विचार पृष्ठ ५१ (रा० ला० क० ट्र० संस्क०) में भी पढ़ा है। परन्तु महाभाष्य में 'प्रधाने कार्यसम्प्रत्ययात्' (२।१।१) इतना ही पाठ है। पारि-३० भाषिक (परि० ८५) में 'प्रधानाप्रधानयो: प्रधाने कार्यसम्प्रत्यय:' यही पाठ है।

भलाई और बुराई प्रधान पुरुष के साथ लगती है, गौण अर्थात् अप्रधान के साथ नहीं।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्त[द्] देवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ [गीता ३।२१]

जैसा अच्छा वा बुरा आचरण श्रेष्ठ पुरुष कर्त्ता है वैसा ही ५ इतर जन करने लग जाते हैं। और जिसका प्रमाण उत्तम पुरुष कर्त्ता है उसी का प्रमाण सब लोग करने लगते हैं। अर्थात् (**यथा राजा तथा प्रजाः**) जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा भी होती है। इसलिये प्रधान पुरुष बहुत विचार से उत्तम आचरण करे कि जिससे उसको संसार के बिगड़ने का अपराध न लगे। बुद्धिमानों १० के सामने विशेष लेख करना उचित नहीं होता।

अब मुझ को यह बड़ा सन्देह है कि जो आप जैसे दीर्घजीवी न्यायकारी राजा बने रहें तो सब प्रजा का कल्याण होवे। और जो मद्यपानादि कर्म हैं वे अवश्य आयु, बुद्धि, बल, पराक्रम, आरोग्यता, कीर्ति, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तथा प्रजा के पुत्रवत् १५ पालना करने में विघ्नकारी हैं। इसलिये मुझको निश्चय है कि आप मद्यपानादि दुष्कर्मों से पृथक् होके अपने समीपस्थों का भी यथावत् कल्याण करेंगे। (इसका उत्तर आप जैसी इच्छा हो वैसे दीजिये। मैं कड़ा उत्तर दूंगा तो स्वामी जी अप्रसन्न हो जायेंगे ऐसा ध्यान मत कीजिये। मुझको निश्चय है कि आप निष्कपट २० और सत्यवादी हैं। इस पर जैसा विचार होगा उत्तर यथावत् शीघ्र लिखेंगे। यद्यपि यह प्रथम ही पत्र आपके समीप भेजा जाता है तदपि यदि आगे आवश्यकता होगी तो मैं और आप जब समक्ष न हो सकेंगे, तब पत्रों ही से यथोचित बात होगी। जैसा मैं आवश्यक कार्य करने वा पत्र के उत्तर देने में क्षण मात्र विलम्ब नहीं २५ कर्त्ता, वैसे श्रीमान् भी करेंगे)। यदि आप ही पूर्वोक्त निषिद्ध कर्म करने और विहित न करने में प्रवृत्त रहेंगे तो अन्य पुरुष सब आप के दृष्टान्त से वर्त्तेंगे। जब तक मनुष्य के हाथ में सर्वाधिकार, आरोग्यता, उत्तम सङ्ग, शुभगुण-कर्म-स्वभाव होता है तब तक कोई भी विघ्न सुखनाशक नहीं खड़ा होता। विघ्नों का निवारण ३० बुद्धिमान् प्रथम ही करते हैं कि जब तक वे प्राप्त न हों। नहीं तो बुद्धिमान् और निर्बुद्धि में दूसरा क्या भेद है। निर्बुद्धि लोग विघ्न

के पूर्व कुछ भी ध्यान नहीं देते और विघ्न आये पश्चात् गभरा भी जाते हैं। विद्वान् लोग वैसे नहीं होते।

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥

५ गीता [१८-३७]—

जो ब्रह्मचर्यादि कर्मों का आचरण आदि में विषतुल्य दुःख प्रतीत होता है वही पश्चात् अमृत के सदृश विदित होता है। वही आत्मा और बुद्धि को प्रसन्न करने वाला सुख है कि जो विद्या सुविचार सत्सङ्ग और योगाभ्यासादि उत्तम कर्मों से प्राप्त होता १० है।

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥

मनुस्मृतौ [६।५८]।

जो विवाहित स्त्रियां पति माता पिता वन्धु और देवर आदि १५ से दुःखित होके जिन घर वालों को शाप देती हैं वे जैसे किसी कुटुम्ब भर को विष देके मारने से एक बार सब के सब मर जाते हैं वैसे उन के पति आदि सब ओर से नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। और

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥

२० मनुस्मृतौ [३।६०]

अर्थ०—जिस कुल में स्त्री से पति और पति से स्त्री अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती है, उस कुल में निश्चय कल्याण अर्थात् आनन्द बढ़ता है॥१॥

देखिये जैसे किसीकी स्त्री उपपति अर्थात् दूसरे पुरुष से प्रसिद्ध २५ वा अप्रसिद्ध प्रीति करे तो उसके पति को कितना बड़ा क्लेश होता है। इसी प्रकार पति के परस्त्री वा वेश्या-गमन से पत्नी को महा दुःख होता है। और वह उनका क्लेश कुटुम्ब भर का नाशक और उनकी प्रसन्नता सब कुटुम्ब को आनन्द देने वाली है। इसलिये आप अपने अमूल्य समय मद्य वेश्यासङ्ग आदि में न लगा के न्याय ३० धर्म से प्रजापालनादि शुभ कर्मों में व्यय करके धन्यवादार्थ सर्वत्र सत्कीर्ति हूजिये।

किमधिकलेखेन महामान्यवर्यतमेषु[1]।

—:०:—

पूर्ण संख्या ८७३] पत्र

ओ३म्

श्रीयुत मनोहरदास जी सम्पादक भारतमित्र आनन्दित रहो।

आप ने मेरे भेजे पत्र[2] को प्रसन्नतापूर्वक छाप दिया, उसका ५
उपकार मानता हूं। परन्तु शेष विषय[3] भी छापने योग्य जानकर
मैंने लिखा था, क्योंकि इस पूर्वपक्ष के सम्बन्धी थियोसोफिकल
सुसायटी के प्रधान हैं। इसलिये यह विषय लिखा था। और मैं
आप को सुहृद्भाव से लिखता हूं कि यदि आप अपने भारतमित्र
समाचार की विद्वानों में प्रतिष्ठा चाहें तो करनल ओलकाट आदि १०
के करामात वा मिसमिरेजम से अनेकों रोग निवारण आदि
नितान्त मिथ्या विषय कभी न छापें। नहीं तो समाचार की
प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी। अब थोड़े समय में करनेल ओलकाट
लाहौर गये थे। उन का रोगनिवारणादि सामर्थ्य अत्यन्त झूठ
बड़े-बड़े बुद्धिमान् लाहौर निवासियों ने निश्चित करके लिखा १५
कि यह सब ऊपर का ढोंग है। और जितना व्यवहार बाहर वा
भीतर का थियोसोफिस्टों का मैं जानता हूं, इतना आर्य्यावर्त्तीय
लोगों में बहुत थोड़े लोग जानते हैं। जब इन लोगोंने झूठ दाम्भिक
मिथ्या छल व्यवहारों में मेरी सम्मति लेनी चाही, मैंने नहीं दी,
तभी से वे अपना प्रपञ्च पृथक् करने लगे। और मैं उनसे पृथक् २०
हो गया। अस्तु, थोड़े ही लेख से आप बहुत समझ लेंगे।

एक [पत्र] श्रीकृष्ण खत्री ने ता० २८ वीं जुलाई सन् १८८३
को लिखकर हमारे पास भेजा है[4]। और उन्होंने बहुत से सनातन
आर्यधर्म के प्रयोजनादि विषयों में आर्य पञ्चाङ्ग बनाने के लिये
मुझ से सहायता चाहते हैं तथा आर्यसमाजों से भी। जिस पत्र २५

---

१. अनुमानत: जुलाई सन् १८८३ का अन्त।

२. यह संकेत पूर्णसंख्या ८६३ पृष्ठ ८८० पर छपे पत्र की ओर है।

३. देखो पत्र पूर्णसंख्या ८६३ पृ० ८८२ पर टि० १।

४. श्री कृष्ण खत्री का पत्र तीसरे भाग में देखें।

पर लेख किया है वह पत्र भारतमित्र कार्यालय का है। इसलिये मैं आप से पूछता हूं कि उक्त महाशय किस प्रकार के गुण, कर्म, स्वभाव वाले हैं। और जैसा उन ने लिखा है कि इस में भारत-मित्र सम्पादक की भी विशेष सहानुभूति है आप इन को योग्य ५ समझते हैं। यदि इस कार्य के योग्य समझते हों तो इस पत्र को देखते ही मुझ को प्रत्युत्तर लिखिये। तत्पश्चात् आर्यसमाजों को उचित होगा, लिखा जायगा। और **जो एक पत्र बहुत दिन हुए मैंने लिखा था**[1], **जिस में गोरक्षार्थ अर्जी देने का मसोदा वहां के वकील बारिस्टरों से पूंछ के आप लिखें, उसका क्या हुआ, अब** १० **उस में अधिक विलम्ब करना उचित मैं नहीं समझता**। यहां जोधपुर का समाचार पश्चात् लिखा जायगा[2]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८७४] पत्र-सूचना

[स्वामी सहजानन्द सरस्वती][3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८७५] पत्र[4]

१५ ओ३म्

श्रीयुत बारहट किसन जी आनन्दित रहो[4]।

पत्र आप का आया[5], समाचार विदित हुआ। यह पत्र सर्वाधीशों[6] के दृष्टिगोचर करा देना।

---

१. यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

२० २. अगस्त के आरम्भ में लिखा गया। म० मुन्शीराम सम्पादित पत्र-व्यवहार पृ० ७८ पर छपा है।

३. इस पत्र की सूचना स्वा० सहजानन्द के १२ अगस्त १९४० के पत्र में मिलती है। स्वा० सहजानन्द का पत्र तीसरे भाग में देखें।

४. मूल पत्र ठा० किशोरसिंह जी के संग्रह में है।

२५ ५. यह संकेत बारहट किशनसिंह जी के श्रावण बदि ९ शनिवार सं० १९४० को लिखे पत्र की ओर है। किशनसिंह जी का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

६. अर्थात् उदयपुराधीशों।

१—मेरी भी यह मनसा नहीं है न थी कि पादरियों के सामने शास्त्रार्थ ही किया जाय। किन्तु जिस से कोई अपनी प्रजा का पुरुष उन के मझब में न फसे वैसा उपदेश किया जाय। इसलिये वे छोटे-छोटे खण्डन जो कि मैंने भेजे हैं[1] वे छपवा के योग्य योग्य पुरुषों को चाहे वे पण्डित हों वा बुद्धिमान् हों, बांट कर प्रचार ५ करने से उन के फन्दे में कोई भी न फसेगा। आप से आप बहुत से उपदेशक उसी राज्य के पुरुष हो जायगे। इसका बाँटना विशेष कर सरदार, हाकम, भूमिये, थाने वा अच्छे अच्छे गामों में अथवा जहां कहीं कोई बुद्धिमान् हो इस को देखकर उन ईसाइयों को हटा दे सकेंगे। और यदि श्रीमानों के नियमानुसार उपदेश नहीं करना १० हो तो वहां राज के नौकर बहुत से पण्डित हैं जिसको योग्य समझें उस को यह दोनों पुस्तक दे के उपदेशक कर देवें।

२ जैसा श्रीमान् महाशयों ने लिखा है, वैसा उपदेशक आर्य-समाज से आने में असक्य नहीं है। किन्तु जो उस पत्र में नियम लिखे हैं उन के अनुसार और ईसाई मत का खण्डन होना असक्य १५ है। क्योंकि जब तक उपदेशक झूठ मत को मानेगा और दूसरे झूठ मत के खण्डन में प्रवृत्त होगा, कुछ भी न कर सकेगा। जब तक मनुष्य स्वयं झूठी बातों का त्याग करके सत्य बातों में निश्चित प्रवृत्त नहीं होता, तब तक वह अलौकिक शक्ति परमात्मा की ओर से नहीं मिलती। और न दृढोत्साही वह हो सकता है। यावत् इन २० ईसाई आदि के सामने वैदिक मतानुसार ईश्वर धर्म आदि को नहीं मानता और मूर्तिपूजा आदि को मानता है, तब तक वह जायगा खण्डन करने को, आप ही खण्डित हो रहेगा। जैसे कोई किसी को दुर्व्यसन छुड़ाने का उपदेश करता और आप उसी दुर्व्यसन में फंसा है उस का उपदेश कोई भी न मानेगा। इसलिये २५ असक्यता लिखी थी। नहीं तो पण्डित तो क्या किन्तु एक कोई साधारण उपदेशक भी आर्यसमाज का आवे तो इन का कुछ भी बल न चले। इसलिये जो उपाय मैंने उन के निवारण के लिये लिखा है वह अच्छा है। परन्तु ईसाई आदि के सामने जब कभी बातचीत हो, तब उस को अति उचित है कि उस समय मूर्ति और ३०

---

१. देखो पूर्ण संख्या ८५९ का पत्र, पृष्ठ ८७७ पं० ९-११।

पुराण आदि का पक्ष छोड़ ही के बोले, तभी कृतकारी होगा ।

३—यहां जयकरण के पिता नाथूराम जी का श्रीमान् जोधपुराधीश महाराजे प्रतापसिंह जी और बाबा साहब से कहकर मैंने मिलाप करा, इन की ओर से जो शङ्का थी सो दूर करा दी है[1]। ५ अब तीनों महाशय उनसे प्रसन्न हैं। और अब श्रीमान् योधपुराधीश भी कुछ मेरे उपदेश सुनने में प्रवृत्त हुए हैं। अनुमान है कि कुछ सुधार हो। परन्तु अब मद्यपानादि दुष्कर्मों से कुछ कम हटे हैं। आज तक लोगों ने बहुत सी बहकावट की थी, परन्तु (**सत्यमेव जयति नानृतम्। सत्येन पन्था विततो देवयानः। नास्ति सत्यात्परो** १० **धर्मो नानृतात्पातकं परम्[2]॥ सत्ये नास्ति भयं क्वचित्।**) सत्य के सामने झूठ कभी नहीं ठहर सकता। महाराज का स्वभाव अत्युत्तम है, परन्तु संगदोष ने कुछ का कुछ स्वभाव को कर रक्खा है। अब तक मद्यपान वेश्यासंग खेल हांसी ठट्ठा छुकरपन संपूर्ण नहीं छूटे हैं। परमेश्वर अंतर्यामी पूर्ण कृपा करें, जिससे ये महाशय अपने १५ राजधर्म में प्रवृत्त हो प्रजा को पुत्रवत् न्याय से पालन कर कीर्तिमान् होवें। महाराजे प्रतापसिंह जी और बाबा साहब भी अति प्रसन्न हैं। जो यह यहां मेरा आना, इन लोगों का मेरी ओर इतना प्रेम होना, सब आर्यकुलदिवाकरों के प्रताप से हुआ है, ऐसा मैं समझता हूं। जैपुर का कृत्य[3] शीघ्र करा लेना चाहिये। श्रीमानों २० के शरीर की आरोग्यता सुन कर बड़ा आनन्द हुआ। सबसे मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा। और इस पत्र का उत्तर शीघ्र देना।

मि० श्रावण शुक्ल ३ रविवार सम्वत् १९४०[4]।

दयानन्द सरस्वती

ठाक[र] सबलसिंह जी अब यहीं है॥ जोधपुर मारवाड़।

—:o:

२५ १. इस विषय में पूर्ण संख्या ८७० का पत्र (पृष्ठ ८८६, पं० १७-१८) भीं देखें।

२. ये ही वचन सत्यार्थप्रकाश के अन्त में स्वमन्तव्यामन्तव्य के आरम्भ में दिये गए हैं। प्रतीत होता है कि उन्हीं दिनों सत्यार्थप्रकाश का वह अन्तिम प्रकरण भी शोधा गया था।

३० ३. सम्भवत: गोरक्षा सम्बन्धी।

४. ५ अगस्त १८८३ रविवार। परन्तु उस दिन शुक्ल २ है।

[पूर्ण संख्या ८७६] पारसल-सूचना

मन्त्रों के भाष्य के पत्रे ।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८७७] पारसल-सूचना

धातुपाठ की सूची ।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८७८] पत्र ५

ओ३म्[3]

श्रीयुत भारतमित्र संपादक समीपेषु ।

महाशय, आप के संवत् १९४० मिति श्रावण शुदी ६ गुरुवार[4] के दिन के छपे हुए पत्र में जो विविध समाचार के दूसरे कोष्ठ में यह छपा है कि मुसलमानों के मभ्रब का मूल अथर्ववेद है, सो बात १० [असत्य] है । क्योंकि उसके नाम निशान का एक अक्षर अथर्ववेद में नहीं है । जो शब्द कर्तृम अल्लोपनिषद् नामक जो कि मुसलमानों की पादशाही के समय किसी थोड़ा सा संस्कृत और अरबी फारसी के पढ़नेवाले ने छोटासा ग्रन्थ बनाया है वह वेद, व्याकरण, निरुक्त के नियमानुसार शब्द अर्थ और संबंध के अनुकूल नहीं है । और १५ अल्ला, रसूल, अकबर आदि शब्द चारों वेदों में नहीं है । किन्तु जो अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण है, उस में भी यह उपनिषद् तो क्या किन्तु पूर्वोक्त शब्दमात्र भी नहीं है । पुनः जो कोई इस बात

१. इस पारसल की सूचना मुंशी समर्थदान के १५ अगस्त १८८३ के पत्र के अन्त में है । ये मन्त्रभाष्य के पत्रे सम्भवतः ऋग्वेदभाष्य पृष्ठ २० १६९८-१७६८ तक रहे होंगे, क्योंकि पृष्ठ १६९७ तक के पृष्ठ भेजने का निर्देश पूर्ण संख्या ८०४ में है । पृष्ठ १७६८ से आगे के पृष्ठ भेजने का उल्लेख पूर्णसंख्या ८८० में आगे होगा । समर्थदान का पत्र तीसरे भाग में देखो ।

२. इस का उल्लेख भी मुंशी ससर्थदान के १५ अगस्त १८८३ के ही २५ पत्र के आरम्भ में मिलता है । समर्थदान का पत्र तीसरे भाग में देखो ।

३. म० मुंशीराम सम्पादित पत्र-व्यवहार पृ० ७३-७४ से लिया ।

४. ९ अगस्त बृहस्पति, १८८३ ।

का दावा करता है, वह अथर्ववेद की संहिता जो कि वीस काण्डों से पूर्ण है, अथवा उसके गोपथ ब्राह्मण में एक शब्द भी दिखला देवें, वह कभी नहीं दिखला सकेगा[1]। यदि ऐसा होता तो उस पुरुष का कहना भी सत्य होता। अन्यथा कथन सच क्योंकर हो सकता है? कहां राजा भोज कहां गांगा तेली? वेदों के आगे यह ग्रन्थ ऐसा है कि जैसे अमूल्य रत्न के सामने भूड़ा। यही एक बात नई नहीं है। किन्तु स्वार्थी लोगों ने वेदों के नाम पर ऐसे ऐसे निकम्मे बहुत से ग्रन्थ बनाये हैं जिन का मिथ्यात्व वेद के देखने से यथावत् विदित होता है। यदि बालादत्त शर्मा हेडमास्टर रियास्त टिहरी गढ़वाल की इच्छा ....जाने वा शास्त्रार्थ करने की इच्छा हो तो इस बात के लिये यहां सब दिशाओं के दरवाजे खुले हैं। अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु[2]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८७९] पत्रांश

[कमलनयन मन्त्री आर्य स० अजमेर[3]]

---

१. अज्ञानी लोगों की इस मूर्खता को देख कर ही श्री स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास के अन्त में इस अल्लोपनिषद् की कड़ी समीक्षा की। प्रतीत होता है कि वर्तमान सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास की प्रेसकापी भी उसी समय संशोधित हो रही थी। उसी के अन्त में इस के मिथ्यात्व का खण्डन भी निविष्ट कर दिया गया। इस विषय में 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' ग्रन्थ (पृष्ठ ३२, ३३) भी देखें।

२. अगस्त १८८३ के उत्तरार्ध में लिखा गया प्रतीत होता है। [इस पर म० मुंशीराम जी का नोट इस प्रकार है- "इस पत्र के अन्त में महर्षि दयानन्द का हस्ताक्षर नहीं है और न इस से पूर्व पृ० ५३२-५३३ पर मुद्रित पत्र पर उनका हस्ताक्षर है। परन्तु इन दोनों पत्रों के साथ एक और सादा कागज नत्थी है, जिस पर लिखा है—'भारत मित्र कलकत्ते वाले के नाम जो पत्रादि स्वामी जी की ओर से लिखे गये, उनकी प्रती"] म० मुंशीराम की टिप्पणी में निर्दिष्ट 'पूर्व पत्र' इस संस्करण में पृष्ठ ८८०-८८३ तक छपा है। उसके विषय में पृष्ठ ८८० की टि० २ भी देखें।

३. देशहि० के रजिस्टर से। बालकराम बाजपेयी ने १-८-१८८३ को एक पोस्ट कार्ड ऋ० द० के नाम लिखा था। उसमें उसने अपने पास कार्य

बालकराम वाजपई कौन है।'
१० अगस्त १८८३[2] जोधपुर।

[दयानन्द सरस्वती]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८८०] **पत्राशय**

[रमादत्त त्रिपाठी, नैनीताल] ५

'विश्वरूपाणि' मन्त्र यजुर्वेद अ० १२ का तीसरा है। तुम क्या करते हो ………………।[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८८१] **पत्र**

ओ३म्

श्रीयुत महिमहेन्द्र महामान्यार्यकुलदिवाकर आनन्दित रहो। १०

श्रीमानों को विदित हो कि मैं जोधपुर में भाद्र पौर्णमासी[4] तक रहना चाहता हूं। पश्चात् कहां जाना होगा, इस का निश्चय अब तक नहीं किया है। जब निश्चय हो जायगा तब श्रीमानों को विदित कर दिया जायगा।

देने का निवेदन किया था। बालकराम वाजपेयी का पत्र तीसरे भाग में देखें। बालकराम के इसी पत्र के उत्तर में ऋ० द० ने १० अगस्त १८८३ को जो पत्र कमलनयन शर्मा मन्त्री आ० स० अजमेर को लिखा था, उसका अभिप्रायमात्र यहां देशहितैषी के रजिस्टर से दिया गया है। १५

१. यह अभिप्राय मात्र है।

२. श्रा० शु० ७ शुक्र, सं० १९४०। २०

३. इस पत्राशय की सूचना रमादत्त त्रिपाठी के २० अगस्त १८८३ के पत्र में है। रमादत्त त्रिपाठी ने ७ अगस्त के पत्र में इस मन्त्र का पता और अर्थ पूछा था। ऋ० द० ने प्रश्न के अनुसार मन्त्र का अर्थ भी लिखा होगा। रमादत्त त्रिपाठी के पत्र तीसरे भाग में देखें।

४. १६ सितम्बर १८८३। २५

महाराजे प्रतापसिंह जी और रावराजा तेजसिंह जी उदयपुर में श्रीमन्महोदयों को मिलने के लिये आने को कहते थे। अनुमान है कि पूने से वहीं आवेंगे। यदि आवें तो अच्छे प्रकार आप शिक्षा करेंगे। इसमें कहना वा लिखना क्या है। किन्तु **आर्यराजोत्कर्ष,**
५ **वैदिकधर्म की उन्नति** करने आदि का उपदेश यथायोग्य कीजियेगा। **कुछ औषधि लिख के भेजी जाती** हैं[1]। इन को यथायोग्य उपयोग में लावें।

॥ उपदेश ॥

१—कभी साहित्य जो नायका आदि भ्रष्ट रीति है उस का
१० स्मरण श्रवण और वैसे गणेशपुरी से मनुष्यों का सङ्ग भी कभी मत कीजियेगा। और न मद्यपान, न वेश्या का दर्शन, नृत्यगान आदि प्रसङ्ग करना।

२—जैसी दिनचर्या[2] मैं लिख आया हूं उससे विपरीत आचरण न कभी करना। किन्तु वही रात्रि के प्रातः ३ चार बजे उठना।
१५ दिन और रात में १० बजे[3] भोजन करना, दिन में निद्रा न लेनी और रात्रि १०, १०॥ साढ़े दश वा ११ बजे तक शयन सदा कीजियेगा।

---

१. इन औषधों का संकेत बारहट कृष्णसिंह जी के पत्र में है—

"और येक पत्र आप का श्रीमान् के पास आया था जिस में सर्प,
२० बिच्छु, ज्वर, विषम ज्वर, मन्दाग्नि बुद्धिवर्धक आदि परीक्षित औषधियें लिखीं थीं। ....सम्वत् १९४० आश्विन कृष्ण १० तारीख २६ सितम्बर"। बारहट कृष्णसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखो।

एक औषधिपत्र का निर्देश आश्विन वदी ११ बृहस्पतिवार सं० १९४० (२७ सितम्बर १८८३) के पूर्णसंख्या ९३६ के पत्र के आदि और अन्त में
२५ भी है। उसे हम उक्त पत्र के आगे ही छापेंगे। हमारा विचार है कि यहां भी उसी औषधिपत्र से अभिप्राय है, क्योंकि उसमें भी बारहट किशनसिंह जी द्वारा लिखित सर्प, बिच्छु, ज्वर, विषम ज्वर आदि सभी की औषधियां हैं।

२. दिनचर्या के ५१ नियम, देखो पूर्णसंख्या ७२९।

३० ३. यहां पाठ अशुद्ध है। 'दिन में १० और रात में ६ बजे' ऐसा होना चाहिये। देखो पृष्ठ ७५८, पं० १-२।

३—सदा छः घण्टे तक समय राजकार्य में लगाया कीजियेगा। और जब कभी राजकार्य से अवकाश मिलें, तभी व्याकरणादि शास्त्र और मनुस्मृति के ३ अध्यायों का अभ्यास कीजियेगा। और व्यर्थ समय एक क्षणमात्र भी मत गमाइयेगा। जैसा कि सतरंज, हास्य, और विनोद आदि में मूर्ख लोग अपना अमूल्य समय खोते ५ हैं—वैसा करना सर्वथा अनुचित है।

४—प्रातः समय योगाभ्यास की रीति से ध्यान करना। और नाम लेना आदि पुरोहित के आधीन कर दीजियेगा, जिससे ध्यान करने और राज्यपालन में समय यथोचित श्रीमानों को मिले। बुद्धि, बल, पराक्रम, आयु, प्रताप बढ़ता रहे। १०

५—निरामय महोत्सव[1] में निम्नलिखित कार्य अवश्य कीजियेगा। एक वेदमन्त्रों से होम। १२५०००) सवा लाख रुपये क्षात्रशाला और २५०००) पच्चीस हजार रुपये स्वराज्य में अनाथ, वृद्ध, विधवा और रोगियों के पालन के लिये। और १००००) मेवाड़ में वैदिक धर्मप्रचार और **प्राचीन आर्षग्रन्थों के** १५ **छपवाने [तथा] प्रदान करने के लिये**। और २०००००) दो लाख वहां के क्षत्रिय सरदारों से लेकर क्षात्रशाला स्थापन शीघ्र कीजियेगा। इस में ऐसा समझिये कि जानो एक गवर्नर जनरल साहेब और आये थे।

६—सदा बलवान् और राजपुरुषों से सताए हुओं की पुकार २० यदि भोजन पर भी बैठे हो तो भोजन को भी छोड़ के उनकी बात सुननी और यथोचित उनका न्याय करना। ऐसा न होवे कि निर्बल अनाथ लोग बलवान् और राजपुरुषों से पीड़ित होके रुदन करें और अश्रुपात भूमी पर गिरे कि जिससे सर्वनाश हो जावे। और इनकी रक्षा से सब प्रकार की उन्नति अर्थात् शरीरारोग्य आयु- २५

---

१. बार्हट कृष्णसिंह जी अपने श्रावण शुक्ल २ सम्वत् १९४० (५ अगस्त १८८३) के पत्र में इस महोत्सव के होने की सूचना श्री स्वामी जी को दे रहे हैं (बारहट कृष्णसिंह जी का पत्र तीसरे भाग में देखो)। प्रतीत होता है कि श्री स्वामीजी का ऊपर मुद्रित पत्र महाराणा उदयपुर को १० से १५ अगस्त तक किसी तिथि को लिखा गया होगा। ३०

वृद्धि, धनवृद्धि, राजवृद्धि, धर्मवृद्धि और प्रतापवृद्धि को सदा करते रहिये ।

७ अब परमात्मा की कृपा से महाशयों का शरीर निरामय हुआ है। अब इस को वीर्यरक्षणादि से सदा रोगरहित रखियेगा कि जिस से ऐहिक और पारमार्थिक सुख की सिद्धि करना सुगम होवे। और श्रीमानों के दीर्घायु होने से स्वराज्य और समस्त आर्यावर्त्त देश का सौभाग्य बढ़े ।

८—कभी सत्य बात के करने और झूठ बात के छोड़ने में भय न करें, किन्तु युक्तिपूर्वक इस बात को पूरी करें। और अपने राज्य में २५ वर्ष का पुरुष और १६ वर्ष की कन्या का विवाह करने के लिये दृढ़तापूर्वक आज्ञा दीजिये[1]। कुमार और कुमारी का यह समय सनातन आर्ष ग्रन्थस्थ विद्याओं के ग्रहण करने में व्यतीत होवे, जिस से सब मनुष्यजाति की सत्य उन्नति होवे ।

९—एक विवाह से अधिक दूसरा भी विवाह कोई न करने पावे। परन्तु यह विवाह दोनों की प्रसन्नतापूर्वक होवे, जिस से अत्युत्तम सन्तान उत्पन्न हों।

१०—स्वराज्य और प[र]राज्य का जो चिकीर्षित और अच्छे बुरे काम होते हैं उन को दूत द्वारा यथावत् जानकर दुष्ट कार्य-कर्त्ताओं को दण्ड और उत्तम कार्य करने हारों का सत्कार यथा-योग्य कीजिये, जिस से उत्तम कार्य बढ़ें और दुष्ट कर्म घट जायें।

११—जो जितना अपराध करे, उसी को उतना दण्ड और जो जितना अच्छा काम करे, उस को उतना ही पारितोषिक देना, अधिक वा न्यून नहीं, चाहे माता पिता भी क्यों न हों।

१२—जैसा कुत्तों पर अन्याय अर्थात् एक के हड़के होने और अपराध करने में सब जाति को दण्ड देना अन्याय है, इस के लिये जितना धन व्यय इस प्रबन्ध में होता है उतने धन से जितनों से प्रबन्ध हो सके उतने पुरुष हड़के कुत्ते को मारने के लिये नौकर रखिये। वे रात दिन इसी कार्य करने में तत्पर रहें। और बिना अपराधियों को दण्ड मत दिलाइये ।

---

१. श्री स्वामी जी का लगभग यही अभिप्राय चिरकाल के पश्चात् भारत सरकार ने परोपकारिणी सभा के मन्त्री महोदय श्री हरविलास सारदा जी द्वारा प्रस्तावित सारदा एक्ट के नाम से प्रचलित किया।

१३—अब दशहरा निकट आया। उस में अनपराधी भैंसे बकरों का प्राण न लेकर उस के स्थान में सिरनी मिठाई मोहन-भोग लपसी आदी [की] बलि प्रदान कीजिए। और क्षत्रियों को जो कि शस्त्र चलाना जानते हैं उन के उत्साह शौर्य धैर्य बल और पराक्रम की परीक्षा करने के लिये जंगली सुअरों को वा सिंह को प्रथम पकड़ा रख के उस दिन मैदान में छोड़ शस्त्रप्रहार करने की आज्ञा दीजिये। इन को विदित तो होवे कि शस्त्र चलाना ऐसा होता है।

१४—आरोग्य और अधिक वर्षा होने के लिये एक वर्ष में १००००) दश हजार रुपये के घृतादि का जिस रीति से होम हुआ था उसी रीति से प्रतिवर्ष होम कराइये। परन्तु उनमें से ५०००) पांच हजार रुपयों के सुगन्धित घृत मोहनभोग का होम वर्षा ही में कि जिस दिन वर्षा का आरद्रा नक्षत्र लगे उस दिन से लेके विजय दशमी तक चारों वेदों के ब्राह्मणों का वरण करा एक सुपरीक्षित धार्मिक पुरुष उन पर रख के होम कराइयेगा।

सब से मेरा आशीर्वाद कहियेगा। और इस लेख को यथावत् सफल कीजियेगा। और इसका प्रत्युत्तर शीघ्र भिजवा दीजिये। किमधिकलेखेन महामान्यवर्यतमेषु।

१५—अब कविराज जी आ गये होंगे[1]। गोरक्षा के अर्थ अर्जी शीघ्र देनी चाहिये। जितनी आशा लार्ड रिपन साहेब के ही समय में इस कार्य की सिद्धि होने की हैं उतनी दूसरे गवर्नर के समय में अनुमित नहीं है। इस कार्य की सिद्धी करने का यत्न शीघ्र होना चाहिये ऐसी सब आर्यवरों की सम्मति है तथा मेरी भी यही सम्मति है कि यह कार्य अब शीघ्र होना चाहिये, क्योंकि शुभ कार्य करने में

---

१. संख्या १५ का लेख मासिक पत्र आर्य, भाग १३ अंक ९ जनवरी १९३२ पृ० ३८९ पर छपा था। पीछे से यह अंश खोया गया। प० चमूपति जी के आर्यपत्रस्थ लेखानुसार इतना अंश ऋषि ने स्वहस्त से एक कागज के टुकड़े पर लिखा हुआ था। पं० चमूपति सम्पादित पत्रव्यवहार में यह अंश नहीं छपा। म० मामराज जी ने सम्वत् १९९० में ठा० किशोर सिंह जी के संग्रह की प्रतिलिपि की थी। अतः हमारे पास और आर्य में यह लेख सुरक्षित रहा।

विलम्ब होना उचित नहीं। जितनी शीघ्रता हो उतना ही अच्छा है।

रहस्य नियम

१—स्वयंवर विवाह के पश्चात् कम से कम एक महीने और अधिक से अधिक ३ महीने तक ऋतुदान से पूर्व ब्रह्मचर्य सेवन ५ पूर्वक पत्नी और पति भोजन का प्रबन्ध रक्खें। अर्थात् अतिशीत, अत्युष्ण, अतिरुक्ष, मादक द्रव्यों का भोजन पान छोड़ तरोष्ण मध्यस्थ गुण युक्त दुग्ध मिष्ट सुगन्ध तण्डुल गोधूम मूंग उड़द दधि सद्योघृत सुसंस्कृत सुगन्धियुक्त बुद्धिवर्धक हृद्य पदार्थों का भोजन पान किया करें कि जब तक ऋतुदान समय न आवे।

१० २—ऋतुकाल प्रतिमास षोडश रात्रि पर्यन्त होता है। उन में से रजोदर्शन दिन को लेके चतुर्थ दिन पर्यन्त स्पर्श दर्शन भी परस्पर न करें। जब पांचवें दिन शुद्ध हो जावे तब यदि पुत्रेच्छा हो तो समाङ्क अर्थात् छठीं आठमीं दशवीं द्वादशी चतुर्दशी और सोलहवीं रात्रि ऋतुदान के लिए उत्तम हैं। और जो कन्योत्पत्ति की इच्छा १५ हो तो पांचवीं सातवीं नवमी एकादशी त्रयोदशी और पंचदशी तिथि[1] प्रशस्त हैं। परन्तु इन्हीं सोलह रात्रियों में दोनों पक्ष की अष्टमी चतुर्दशी पौर्णमासी और अमावस्या तिथि आवे तो उस रात्रि में भी ऋतुदान न देना चाहिये।

३—जिस रात्रि में शरीर आत्मा प्रसन्न हो उसी में १० बजे २० के उपरान्त २ बजे से पूर्व ऋतु दान देके पश्चात् किंचित् ठहर स्नान कर शालम मिश्री और केशर आदि सुगन्धियुक्त परिपक्व दूध शीतल यथारुचि पी के तांबूल भक्षण कर मुख प्रक्षाल[न] कर के पृथक् पृथक् शयन करें।

४—यदि पत्नी विदुषी चतुर हो तो उसी समय गर्भस्थित हुआ २५ वा न हुआ जान लेवेगी। नहीं तो जब पुनः द्वितीय मास में रजस्वला न हो तब जानना कि गर्भ रहा। उस समय से आगे यावत् बालक के जन्म होने के पश्चात् दो महीने अर्थात् वर्ष व्यतीत न हो तब तक दोनों सिवाय सुभाषणादि व्यवहार के मध्य में समागम (न) करें किन्तु पति पत्नी पूर्वोक्त प्रकार युक्ताहारविहार

---

३० १. तिथि से अभिप्राय रजोदर्शन काल से गिनी गई रात्रि से है। जैसा पूर्व वाक्य में लिखा है।

करते हुए ब्रह्मचारी रहें, जिस से अग्रिम सन्तान भी उत्तम होवें ।

५—दोनों मन कर्म वचन से व्यभिचार अर्थात् अन्य स्त्री अन्य पुरुष से समागम छोड़ पातिव्रत्य और स्त्रीव्रत रह के धर्मार्थकाम-मोक्षों को सिद्ध कर के आनन्दित और दीर्घायु होवें ।

यदि इतने पर भी गर्भ स्थित न हो तो पत्नी एक यति वा बाल चान्द्रायण अर्थात् मध्यान्ह दि[न] में नित्य प्रति तीन तीन तोले या ३६ मासे का ग्रास एकाग्र के आठ ग्रास खावे । एक महीने अर्थात् पौर्णमासी से द्वितीय पौर्णमासी, अमावस्या से २[री] अमावस्या और संक्रान्ति से २[री] संक्रान्ति तक व्रत करे। नित्य होम और भूमि शयन करे और पति ब्रह्मचारी होकर वीर्य की रक्षा वृद्धि करे। पुनः पूर्वोक्त समय और रीति से वीर्य स्थापन करें तो संभव है कि सन्तानोत्पत्ति होवे[1] ।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८८२] पत्र-सूचना

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]
[समर्थदान के निजी पत्र का उत्तर][2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८८३] पत्र-सारांश

[बिहारीलाल ·· ·········]
कविराज श्यामलदास जी का समाचार लिखो ।[3]

—:o:—

---

१. यह पत्र १०-१५ अगस्त के मध्य में लिखा गया। देखो पृष्ठ ८९९ टि० १ ।

२. इस पत्र की सूचना ऋ० द० के पूर्ण संख्या ८८५, ८९० के पत्रों में है ।

३. इस पत्र और आशय की सूचना श्री बिहारीलाल जी (अमझेरा) के विना तारीख के पत्र में है। कवि० श्यामलदास जी सं० १९४० के श्रावण और भाद्र मास में दो बार आंखों की चिकित्सा कराने इन्दौर गये थे (द्र०—कविराज श्यामलदास का सं० १९४० श्रावण शुक्ला ५ तथा

[पूर्ण संख्या ८८४] पारसल-सूचना

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]

ऋग्वेदभाष्य के पृष्ठ १७६८ से १८०६ तक ।[1]

श्रावण सुदि ११, सं० १६४० [१४ अगस्त १८८३]

—:०:—

५ **[पूर्ण संख्या ८८५] पत्र**

ओ३म्

मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो।

कल ऋग्वेदभाष्य के पृष्ठ १७६८ से पृष्ठ १८०६ तक का पाकट रजस्टरी कराके भेजा है, पहुंचेगा। यदि उनमें से पांच ५
१० वा १० दश मन्त्र शिवदयाल को भाषा बनाने के लिये दे देना और पत्र में लिख देना कि फलाने मन्त्र से फलाने मंत्र तक शिव-दयाल की बनाई भाषा है। परन्तु उन्हीं मन्त्रों की भाषा की जिन की शिवदयाल बनावे ज्वालादत्त से भी बनवा के भेजना। अच्छी भाषा बनावेगा तो उनके पास भी भाषा बनवाया करेंगे। अब तक
१५ किसी का सूची छपकर तैयार हुआ वा नहीं। और आज कल क्या छपता है। सत्यार्थप्रकाश छपता है वा और कुछ। प्रयाग समाचार का छपना दो सप्ताह के लिए था, पश्चात् बन्द हो ही गया होगा। अब टेप आने में कितनी देर है। जहां तक जल्दी आवे तो अच्छा है। बीच बीच में उनको चिट्ठी भेजकर तकादा किया करो। और
२० कलकत्ते में जो छोटे टेप हैं जिन में भाषा छपती है वे बहुत अच्छे छपते हैं। यदि उनमें से भी दो चार फर्म[ों] के टेप आ जाय तो अच्छा है। जो हमने तुम्हारे निजपत्र[2] के उत्तर में पत्र भेजा है[3]

भाद्र शुक्ला ६ को इन्दौर से लिखे गये पत्र। ये पत्र तीसरे भाग में देखें)। उसी समय कविराज श्यामलदास का समाचार जानने के लिये ऋ० द० ने
२५ पत्र लिखा होगा। बिहारीलाल जी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

१. इस पारसल की सूचना और तिथि का निर्देश ऋ० द० के पूर्ण-संख्या ८८५ के पत्रानुसार किया है।

२. समर्थदान ने निजपत्र १३।७।८३ को श्री स्वामीजी को भेजा था। उस में अनार्य नौकरों का विषय है।

३० ३. यह पत्र प्राप्त नहीं हुआ।

उसके सकारण हेतु लिख कर शीघ्र भेजो[1]

मिति श्रावण सुदि १२ सं १९४० ।[2]

[दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़

--:०:--

[पूर्ण संख्या ८८६] **पत्र** ५

ओ३म्

बाबू विश्वेश्वरसिंह जी आनन्दित रहो[3] ।

उस बात का स्मरण होगा कि जो तुम ने काशी में मुझ से कहा था कि आप यन्त्रालय कीजिये, दो एक वर्ष में पेंशन लेलूंगा, पश्चात् वैदिक यन्त्रालय का ही काम करूंगा । क्योंकि यह आर्या- १० वर्त देश भर का उपकार है । अब भी वही निश्चय है वा कोई दूसरा हो गया है । प्रयाग समाचार छपना बन्द हो गया वा नहीं । क्योंकि दो सप्ताह की प्रतिज्ञा थी । कभी की हो चुकी है । बन्द कर ही दिया होगा । टेप आने की अवधी हो चुकी वा नहीं । अब कब तक आवेगा । १५

और हमें आज मुंशी समर्थदान जी को भी लिखा है[4] कि जिन अक्षरों में भाषा छपती है वे कलकत्ते के ६ टेप[5] बहुत अच्छे हैं। यदि वे भी कुछ मंगवाये जांय तो ठीक है वा नहीं ? और वहाँ किसी वकील से पूछ निश्चय कर लिखना कि मुंशी बख्तावरसिंह पर नालिश की जाय [तो] प्रयाग में हो सकती है वा नहीं । क्योंकि २० दो ही ठिकाने हो सकती है। एक जहां बात हुई हो वहां और दूसरे जहां मुद्द[इलेह] होवे । जब वह बात हुई थी तब यन्त्रालय काशी में था, अब प्रयाग में है । सो किसी अच्छे वकील से पूछ के लिखो । और यह भी पूछ के लिखो कि नालिश फौजदारी में

---

१. इस पत्र का मुंशी समर्थदान का २०।८।८३ का लिखा उत्तर तीसरे २५ भाग में देखें ।

२. १५ अगस्त १८८३ ।

३. मूल पत्र श्री नारायण स्वामी के संग्रह में सुरक्षित है ।

४. द्र० —पूर्णसंख्या ८८५ का पत्र ।

५. सम्भवत: यहां '६ टेप' के स्थान में 'छोटे टेप' चाहिये । देखो पूर्व पृष्ठ ९०४ की २०-२१ पंक्तियां । ३०

करना चाहिये वा दीवानी में। मेरी समझ में और अन्य वकीलों की भी सम्मति है कि दीवानी में करना अच्छा है। सब से मेरा आशीर्वाद कह देना।

इन सब बातों का प्रत्युत्तर लिखो। श्राव० सु० १२ सं० ५ १९४०[1]।

(दयानन्द सरस्वती)
जोधपुर राज मारवाड़

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८८७] पत्र-सारांश

[भाई जवाहरसिंह, शाहपुरा]

१० मासिक के हिसाब में गड़बड़ मत किया करो।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८८८] पत्र

ओ३म्[3]

ठाकुर नन्दकिशोर जी आनन्दित रहो—

पत्र तुम्हारा श्रावण सुदी १० का लिखा आया,[4] समाचार १५ विदित हुआ। मुंशी गङ्गाप्रसाद बुद्धिमान् दृढोत्साही निर्भय धार्मिक निःशंक था। ऐसे पुरुष का मृत्यु सुन कर जो कि उन को जानते थे, शोक किस को न होगा—

(एति जीवन्तमानन्दः) यह महाभाष्यकार [२।३।१२] का वचन है, कि जीते हुए पुरुष को आनन्द प्राप्त होता है। इस लिये २० अशोचनीय बात पर शोक करना किसी को उचित नहीं। जो एक अशक्य बात है उस के शोक में वर्तमान और भविष्यत् में हानि के सिवाय दूसरा कुछ भी फल नहीं होता। अस्तु जो हुआ सो

---

१. १५ अगस्त १८८३।

२. ऋ० द० के सं० १९४० भाद्र सु० ५ (६ सितम्बर १८८३) के २५ पूर्णसंख्या ९०६ के पत्र में इस आशय के कई पत्र लिखने का उल्लेख है। हम यहां एक पत्र-सूचना दे रहे हैं।

३. मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

४. ठा० नन्दकिशोर का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

हुआ। रहे को सम्भालो। और बड़े प्रयत्न प्रीति और दृढ़ोत्साह से आर्यावर्त देश के परम हितकारक सभा के उद्देशों को अपने तन मन धन से पूरे करने के लिये सर्वदा उद्यत रहो। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर सब बातें अच्छी करेगा। **(सत्यमेव जयति नानृतम्।)** सत्य ही सर्वदा विजयी होता है, झूठ कभी नहीं। इस लिये सर्वदा सत्य की उन्नति में सब जने उद्यत रहें। सब से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।   ५

मिती श्रावण शुक्ला १४ शुक्र संवत् १९४०[1]।

[दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़   १०

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८८९]   पत्र-सूचना

[श्रीमद्राजराजेश्वर महाराजाधिराज जोधपुरेश आनन्दित रहो[2]]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८९०]   पत्र

ओ३म्[3]   १५

भादवा बदी १—४०[4]

(१)

मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो।

धातुपाठ का सुचि जैसा हम ने भेजा है वैसा ही छाप दो। उस से बड़ा लाभ है[5]। और गौवध का उपाय हो रहा है। निश्चय   २०

---

१. १७ अगस्त १८८३।

२. इस के लिये पूर्ण संख्या ९११ का पत्र और पृष्ठ ९२४ की टिप्पणी ३ देखें।

३. मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है।

४. १९ अगस्त १८८३।   २५

५. मुंशी समर्थदान ने १५।८।८३ के पत्र में धातुपाठ की सूची छापने के विषय में सुझाव दिया था। उस के उत्तर में ऋ० द० ने यह निर्देश किया है। समर्थदान का पत्र तीसरे भाग में देखें।

है कि लार्ड रिपन साहिब के समय ही में यह काम किया जायगा। और इसके फार्म नये छापने की कुछ आवश्यकता नहीं, क्योंकि हमारे पास बहुत पड़े हैं। तुम को चाहिये तो मंगवा लो। और तुम ग्राहकों का रजष्टर क्यों नहीं भेजते। क्या अब तक मिलान नहीं
५ हुआ। शीघ्र भेज दो। मुन्शी इन्द्रमणी जी [ने] जो भी दिया है वह टाइटल पेज पर छप गया है। उस में देख लो। यदि अधिक निकले तो ले लो। न दे तो उस के नाम पर धूल डालो। यह वर्तमान महीने की १५ तारीख के पत्र का उत्तर हुआ।

और ऊपर लिखा ज्वालादत्त हमारे पास पन्द्रह दिन पहले पत्र
१० क्यों नहीं भेजता, जो कि पत्र[1] हम बराबर भेज दें। और अब यह भाषा भी अच्छी नहीं बनाता, जैसी कि पहले बनाता था। जैसी कि प्रति दिन उन्नति करनी चाहिये, यह प्रति [दिन] गिरता जाता है। **अब के भाषा में कई पद छोड़ दिये हैं। कहीं अपनी ग्रामणी भाषा लिख देता है। और (च) का अर्थ भी और करना**
१५ **चाहिये। यह (भी) कर देता है[2]।**

अब १४ अगष्ट के पत्र का उत्तर[3]। श्रीमान् महाराणा जी ने धन्यवाद[4] पत्र के प्रत्युत्तर में लिखा[5] सो बहुत अच्छी बात हुई। जो

---

१. यहां 'पत्रे' पाठ चाहिये। अभिप्राय वेदभाष्य के भाषा बनानेवाले पत्रों से है।

२० २. इन बातों का उत्तर ज्वालादत्त ने भाद्र कृष्ण ६ सं० १९४० (२३ अगस्त १८८३) के पत्र में दिया है। ५ और ६ तिथि सम्मिलित हैं। ज्वालादत्त का पत्र तीसरे भाग में देखें।

३. इस पत्र का उत्तर उक्त मुंशी जी ने ता० २४।८।८३ को पत्र नं० ६३७ द्वारा दिया है। उसमें 'अनुचित' शब्द का अभिप्राय 'कड़ा' लिखा
२५ है। मुंशी समर्थदान का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

४. पूर्णसंख्या ७६३ के पत्र में (पृष्ठ ७९५, पं० २६ से पृष्ठ ७९६, पं० २ तक जिस पत्र को छपवा कर महाराणा सज्जनसिंह जी को भेजने का उल्लेख है, वह 'आर्यसमाज समर्पित धन्यवाद पत्र' शीर्षक से छपा था, उस को ओर यह संकेत है। इसे तीसरे परिशिष्ट में देखें।

३० ५. महाराणा सज्जनसिंह जी ने इसका जो उत्तर दिया, उसकी ओर यह संकेत है। महाराणा जी के प्रत्युत्तर की प्रति 'श्रीमान् उदयपुराधीश

जो छपता जाय सो भी बराबर हमारे [पास] भेजते जाओ। सत्यार्थप्रकाश में जो कोई ऐसा अनुचित शब्द हो निकाल कर जो हमारे आशय से विरुद्ध न हो वह शब्द उसके स्थान में धरना और हम को लिख कर सूचित करना कि यह शब्द धरे हैं। साहपुरे का जो वर्तमान हुआ था सो तुम्हारे पास लिख भेजा था। और मान्य- ५
पत्र की नकल[1] भेज देंगे। और संस्कृत में जो पत्र आया है[2] उस साधु को हम नहीं जानते कि वह कैसा है। और पहले तुम्हारे निज पत्र के विषय में लिखा था[3] उस का उत्तर भेजो। और ग्राहकों का रजष्टर भेजो तथा जो जो पुस्तक छपे सो सो शीघ्र भेजो। और प्रयागसमाचार बन्द हो गया वा नहीं। और भूपालसिंह का १०
भी जो कुछ आया है वह सब टाइटल पेज पर छपवा दिया गया है।

मिति भाद्रपद वदी १ सं० १९४०[4]।

दयानन्द सरस्वती[5]
जोधपुर राज मारवाड़ १५

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८९१] पोस्ट कार्ड-सारांश

[बालकराम वाजपेई अजमेर]

······ क्या क्या पढ़े हो और लेख कैसा **है**। ······ ····· ··

के आज्ञापत्र की प्रति' शीर्षक से दयानन्ददिग्विजयार्क के भाग ३ में पृष्ठ १५२-१५३ पर छपा है। इसे तीसरे परिशिष्ट में देखें। २०

१. मान्यपत्र की प्रतिलिपि तीसरे परिशिष्ट में देखें।

२. यह पत्र हमें उपलब्ध नहीं हुआ। तीसरे भाग में भाद्र शु० २ सं० १९४० का पत्र देखें।

३. इस का संकेत पूर्णसंख्या ८८५ पृष्ठ ९०४ पं० २२ में भी है।

४. १९ अगस्त १८८३। २५

५. इस पत्र का थोड़ा भाग दयानन्द ग्रन्थमाला, भूमिका पृ० १७ पर भी छपा है। इस पत्र का उत्तर मुंशी समर्थदान ने २७।८।८३ को दिया। समर्थदान का पत्र तीसरे भाग में देखें।

भाद्रपद कृष्ण ५ सं० १९४०[1]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८९२] पत्र-सूचना

[पं० शुकदेव जी अजमेर]

पं० शिवकुमार जी शास्त्री[2] (काशी) के लिखे हुए पण्डितों के
५ विषय में।[3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८९३] पत्र

ओ३म्

मुन्शी समर्थदान जी आनन्दित रहो[4]।

इसके पूर्व तुम्हारे दोनों पत्रों का उत्तर भेज चुके हैं[5]। और जो

---

१० १. २३ अगस्त १८८३, गुरुवार। इस पत्र का संकेत इस पत्र के उत्तर में लिखे गये बालकराम वाजपेयी के ३१ अगस्त १८८३ के पत्र में है। बालकराम वाजपेयी का पत्र तीसरे भाग में देखें। ऋ० द० ने उपरि-निर्दिष्ट पत्र में जो 'लेख कैसा है' पूछा है, इस के निर्देश के लिये आठ मन्त्रों का बालकराम वाजपेयी द्वारा लिखा पाठ कमलनयन शर्मा ने अपने
१५ ३१।८।१८८३ के पत्र के साथ भेजा था। इसे तीसरे भाग में कमलनयन शर्मा के पत्र के साथ देखें।

२. पं० शिवकुमार शास्त्री जी (काशी) का एक बिना तिथि का संस्कृत पत्र पं० शालग्राम शर्मा (अजमेर) के नाम लिखा उपलब्ध है। इस में ऋ० द० के समीप कार्य करने योग्य दो पण्डितों का उल्लेख है। पं० शिवकुमार
२० शास्त्री अपने समय के काशी के विशिष्ट विद्वान् माने जाते थे। इन की विद्वत्ता की धाक अभी तक काशी पण्डित मण्डली पर विद्यमान है। पं० शिवकुमार शास्त्री का पत्र तीसरे भाग में देखें।

३. इस पत्र का उल्लेख पं० शुकदेव शर्मा के १९ सितम्बर १८८३ के पत्र में मिलता है। पं० शुकदेव शर्मा का पत्र तीसरे भाग में देखें।

२५ ४. मूल पत्र परोपकारिणी सभा में सुरक्षित है।

५. १४ और १५ अगस्त के पत्रों का उत्तर पूर्णसंख्या ८९० के पत्र में दिया है। ऋ० द० ने यह पत्र मुंशी समर्थदान के २० अगस्त १९४० के पत्र के उत्तर में लिखा है। मुंशी समर्थदान का पत्र तीसरे भाग में देखें।

गणपाठ के १० पुस्तक और उसके साथ भाषा भेजी सो पहुंचेगी। तुम थोड़ी भी भाषा देख लिया करो। **यह ज्वालादत्त तो विक्षिप्त पुरुष है।** इस का ध्यान सदा मासिक बढ़ाने पर रहता है, काम बढ़ाने पर नहीं। यद्यपि मैंने सब पुस्तक गणपाठ का नहीं देखा, परन्तु भूमिका के पहले पृष्ठ में दृष्टी पड़ी तो दूर दूर के स्थान में (दर २)अशुद्ध छपा है। ऐसी भाषा को तुम भी देख सकते हो। और अब **यह भाषा भी अच्छी नहीं** बनाता, **किन्तु घास सी काटता है।** इस के नमूने के लिये एक पत्र भेजते हैं जिस की उसने भाषा बनाई है। और बडी भूल करी है कि **जिस का पदार्थ है कुछ और भाषा कुछ बनाई है। और भावार्थ संस्कृत के अनुसार और पूरी भाषा भी नहीं** बनाई है। तुम प्रत्यक्ष देख लो और उसके सामने दिखला दो। और छः मन्त्र की भाषा भी रोज नहीं बनाता। और उस पर भी यह हाल है। यदि यह प्रीति और परिश्रम से काम करता तो इस की उन्नती और हमारी प्रीति क्यों न होती। और अब भी जो अच्छा काम करेगा तो उसके लिये अच्छा होगा। यह तो एक नमूना भेजते हैं। थोड़े दिन के पश्चात् पुराणे बहुत से पत्र इसके भाषा बनाये भेजेंगे। उस में इस के दोष सैकड़ों दीख पड़ेंगे। बाबू विशेश्वरसिंह ने भी इस के लिये लिखा था कि इस के तीन रुपये मासिक बढ़ा दिया जाय, परन्तु यह काम भी करे। ऐसे पुरुष हमारे सामने ही काम दे सकते हैं। और यह भी है कि ऐसे पुरुष हमारे पास रह नहीं सकते। यह पत्र बाबू विशेश्वरसिंह जी को भी दिखला देना। और इस विषय में तुम दोनों जने सम्मिति करके लिखो, वैसा किया जाय। इस से जो एक साधारण पुरुष जिस की दृष्टि सच्ची हो वह भी इस से अच्छा छपवा सकता है। और एक तुम को यह लिखते हैं कि जैसा कागज गणपाठ में लगाया है वैसा ही सब साधारण पुस्तकों में लगाया करोगे तो आगे जाकर खर्च की तंगी पड़ जायगी। इससे जैसा प्रथम लगता था, उसी प्रकार का लगाना चाहिये। न अति उत्तम और न अति उत्कृष्ट [निकृष्ट ?]। और धातुपाठ तथा निघण्टु उणादिगण की सूची भी बराबर उस के साथ छपे। और जो तुम पत्र लिखते हो उस में एक महीने में इतने फार्म फलाने फलाने पुस्तक के छपे अवश्य लिखा करो। और आज कल वेदभाष्य भी

नहीं छपता। सत्यार्थप्रकाश के पत्रे भी शीघ्र शीघ्र नहीं मंगाते हो, जितना कि हम अनुमान करते हैं। इस लिये हर महीनों के फर्मों का हिसाब लिखा करो। बाहर का कुछ काम भी मत लो। हमारे पास छपने को बहुत सी पुस्तकें हैं तुम छापते छापते थक जाओगे, ५ तो भी न चुकेगा।

ऋग्वेद का चौथा अष्टक भी पूरा हो गया। पांचवें अष्टक का एक अध्याय कल पूरा होगा और छटा मंडल आज पूरा हो गया। परमेश्वर की कृपा से १ वर्ष में सब ऋग्वेदभाष्य पूरा हो जायगा[1]। और एक वा डेढ़ वर्ष साम, और अथर्व में लगेगा। १० और अब के संस्कारविधि बहुत अच्छी बनाई गई है। और अमावस्या तक बन चुकेगी[2]।

और हम ने कब कहा था कि निघण्टु व्याकरण के पुस्तकों में गिना जाय। वह वेदाङ्गप्रकाश में गिना जायगा। क्योंकि निघण्टु मूल और निरुक्त व्याख्यान [वेदाङ्ग] है। इसलिये वेदाङ्गप्रकाश में १५ अवश्य गिणना होगा। और पठन पाठन की व्यवस्था में जो इसका संख्यांक हो वही टाइटल पेज और भूमिका के एक पृष्ठ में धरना। [दयानन्द सरस्वती]

मिति भाद्र बदी ५ सं० ४०[3]। जोधपुर राज मारवाड़।

—:o:—

१. यह भाद्र वदी ५ सं० १९४० (२१ अगस्त १८८३) को लिखा गया २० था। इस के २ मास ९ दिन पश्चात् (कार्तिक वदी ३० सं० १९४० = ३० अक्तूबर १८८३) श्री स्वामी जी महाराज ने भौतिक शरीर छोड़ा। मृत्यु से पूर्व ऋग्वेद अष्टक ५ अ० ५ वर्ग ४ मन्त्र २ (मं० ७ सू० ६२ मं० २) तक भाष्य कर पाये थे। देखो "ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास" परिशिष्ट १ पृ० ४-६ पर रामानन्द ब्रह्मचारी का पत्र। रामानन्द ब्रह्मचारी का यह २५ पत्र इस ग्रन्थ के अन्त में भी तीसरे परिशिष्ट में दे रहे हैं।

२. संस्कारविधि का संशोधन आषाढ़ बदी १३ रविवार संवत् १९४० का प्रारम्भ हुआ और लगभग दो मास में समाप्त हुआ। इस विषय में ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास पृष्ठ ८४-८९ तक देखें।

३. २३ अगस्त १८८३। दयानन्द ग्रन्थमाला शताब्दी संस्करण भूमिका ३० पृ० १७-१८ पर इस पत्र का किञ्चित् अंश मुद्रित हुआ है। वहां भाद्र

[पूर्ण संख्या ८९४] पत्र-सूचना

[भीमसेन शर्मा][1]

रामानंद ब्रह्मचारी

—:o—

[पूर्ण संख्या ८९५] अशुद्ध भाषा का नमूना-सूचना

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग] ५

ज्वालादत्त के द्वारा बनाई गई अशुद्धभाषा का नमूना।[2]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८९६] पत्र-सारांश

[कविराज श्यामलदास]

महाराजा हुलकर से गोरक्षार्थं सही कराओ।[3]

भाद्र वदी ९ सं १९४० १०

—:o:—

[पूर्ण संख्या ८९७] पत्र-सूचना

[पं० गोपालराव हरि देशमुख][4]

—:o:—

वदी ६ छपा है। यह अशुद्ध है। मु० समर्थदान के उत्तर में इस पत्र की तिथि भाद्र वदी ५ ही लिखी है। इसका उत्तर मुंशी समर्थदान जी ने ता० २७।८।८३ पत्र नं० ९४९ द्वारा दिया। सत्यार्थप्रकाश के ३२० पृ० तक छपने की सूचना इसी पत्र में है। मुंशी समर्थदान का पत्र तीसरे भाग में देखें। १५

१. इस पत्र की सूचना पं० भीमसेन शर्मा के भाद्र वदी १२ [सं० १९४०] (२९ अगस्त १८८३) के पत्र में मिलती है।। भीमसेन का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. इस पत्र की सूचना पूर्णसंख्या ८९३ के पत्र में पृष्ठ ९१० पर है। २०

३. यह पत्र-सारांश तथा तिथि का निर्देश कविराज श्यामलदास के इन्दौर से लिखे सं० १९४० भाद्र शुक्ला ६ ता० ७ सितम्बर १८८३ के पत्र में है। कविराज श्यामलदास का पत्र तीसरे भाग में देखें।

४. इस पत्र की सूचना गोपालराव हरि देशमुख के पुत्र लक्ष्मण गोपाल

[पूर्ण संख्या ८६८] पारसल-सूचना

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]
१० गणपाठ, वेदभाष्य की भाषा।[1]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ८६६] पत्र

५ ओ३म्

मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो[2] !

पत्र तुम्हारा २६ अगस्त का लिखा आया, [3]समाचार विदित हुआ। और जो तुमने रजिष्टर और दोनों की भाषा और सभा का कृत्य भेजा सो पहुंचा। इस भाषा को देखकर जैसा होगा वैसा
१० लिखा जायगा। बाबू विशेश्वरसिंह सुख से यन्त्रालय में रहें, उन का घर है। **आज यहां से २४८ से लेके २७८[4] तक सत्यार्थप्रकाश** और १८१० से लेके १८६५ तक ऋग्वेद के पत्रे भाषा बनाने के लिये भेजे हैं। पहुंचने पर ज्वालादत्त को दे देना और रसीद भेज देना। प्रथम सत्यार्थप्रकाश के पत्रे २५० तक तुम्हारे पास भेजे थे
१५ और तीन पृष्ठ रामसनेही के विषय के पश्चात् धरे हैं। सो ४८-४६-५० अंक घटे हैं। तुमको भ्रम न हो। परन्तु इतना अवश्य करना कि जो वहां २५० पृष्ठ हैं उसके अंत और २४८ पृष्ठ के आदि की संगति तुम मिला देना। और २५१ के पृष्ठ के आदि और जो अब २५० वा भेजा है उस की सभी संगति मिला लेना।

---

२० देशमुख के सं० १६४० श्रावण वदी १३ (दक्षिण भारतीय पञ्चाङ्गानुसार, उत्तर भारतीय भाद्र वदी १३) = ३० अगस्त १८८३ के पत्र में है। लक्ष्मण गोपाल देशमुख का पत्र तीसरे भाग में देखें।

१. इस पारसल की तथा तिथि की सूचना पूर्ण संख्या ८६३ के पत्र में है।

२५ २. मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है।

३. मुन्शी समर्थदान का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

४. अगले आश्विन वदी १ सं० १६४० (=१७ सितम्बर १८८३) के पत्र में पृष्ठ २७२ से ३१६ तक भेजना लिखा है।

और ग्यारह समुल्लास की समाप्ति तक सब पत्रे भेज दिये हैं[1]। **और इसके अन्त में महाराजे युधिष्ठिर से लेके यशपाल तक आर्य राजाओं की वंशावली पीछे से लिखी है।** और उसके पृष्ठों के अंक ठीक ठीक हैं। वैसे ही छाप देना।

और प्रथम तुम जो काम अकेले करते थे उसके लिये अब तीन हो, सो उगाही और तकाजे में आलस्य नहीं करना, परन्तु स्मरणार्थ लिखा है। और जो ठाकुर भूपालसिंह ६ अंक बिना मूल्य ले गये हैं और तुम्हारे नोटिस के पहुंचने पर तुमको इतना भी नहीं की[2] फिर उनका मूल्य न देना वा तुम न लो तो नियम टूटता है। और उन्होंने जो जो रुपये जब जब दिये हैं, टाटल पेज पर बराबर छप गये हैं। उस से अधिक न दिये न छपे हैं। और अगष्ट महीने में कितने फार्म छपे सो लिख भेजो। यहां वर्षा हो रही है और दो तीन दिन से यहां वर्षा अच्छी होती है। अनुमान है कि यह प्रयाग आदि में भी हुई होगी। सब से हमारा आशीर्वाद कह देना।

भाद्र वदी ३० सम्वत् १९४०[3]।

[दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर (मारवाड़)

मैनेजर भारतमित्र श्रीकृष्ण खत्री ने एक आर्य पंचांग नामक ग्रन्थ बनाना चाहा है।[4] उस में आर्यधर्म के प्रयोजन, जिस जिस स्थान पर समाज है, जिस दिन आरंभ हुआ, और जिस दिन वार्षिक उत्सव होता है, और मंत्री का नाम उसमें लिखाना चाहते हैं। सो हमने तुम्हारा नाम लिख दिया है। यदि वह तुम्हारे पास पत्र भेजे तो जहां तक तुम जानते हो पूर्वोक्त विषयों में सहाय देना। और जो उन्होंने समाजस्थ पुरुषों की संख्या और हमारा

---

१. यहां तक का भाग "वर्क्स आफ महर्षि दयानन्द" पृ० १२९ पर छपा है।

२. यहां कुछ पाठ खण्डित प्रतीत होता है।

३. १ सितम्बर १८८३।

४. इस का उल्लेख श्री कृष्ण खत्री ने अपने १८ अगस्त १८८३ के पत्र में किया है। श्री कृष्ण खत्री का पत्र तीसरे भाग में देखें।

इतिहास भी लिखना चाहा है, सो तो अब इस समय उनको नहीं मिल सकता। और समाजस्थ पुरुषों की संख्या बतलाने में कुछ लाभ नहीं। इसलिये पूर्वोक्त विषयों में जो सहाय मांगे तो दे देना, क्योंकि वह प्रसिद्ध समाचार का सम्पादक है और उसकी प्रीति भी
५ अधिक दीखती है, चाहें स्वार्थ वा परमार्थ से।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९००] पारसल-सूचना

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]

१. सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ २४८-२७८ तक।

२. ऋग्वेदभाष्य के पृष्ठ १८१०—१८९५ तक।[1]

१० भाद्र सुदी ३० सं० १९४० [१ सितम्बर १८८३]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९०१] पत्र-सारांश

[लाल जी बैजनाथ, मुंबई]

विट्ठल भाणा को भेज दो।[2]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९०२] पत्र-ओषधिपत्र-सूचना

१५ [महाराणा सज्जनसिंह, उदयपुर][3]

—:०:—

---

१. इस पारसल की सूचना पूर्ण संख्या ८९९ में मिलती है।

२. इस पत्राशय की सूचना लाल जी बैजनाथ (मुम्बई) के सं० १९४० भाद्र शु० ७ (९ सितम्बर १८८३) के पत्र में मिलती है। इस विषय में सेवकलाल कृष्णदास का २५ जून १८८३ का तथा विट्ठल भाणा का सं०
२० १९४० ज्येष्ठ शु० १३ (३० मई १८८३) का पत्र भी द्रष्टव्य है। इन सभी पत्रों को तीसरे भाग में देखें।

३. इस पत्र का तथा साथ में ओषधि पत्र भेजने का निर्देश बारहट किशनसिंह के सं० १९४० आश्विन कृष्णा १० = २६ सितम्बर १८८३ के पत्र में है। बारहट किशनसिंह ने अपने पत्र में जिन ओषधियों का संकेत
२५ किया है, वे प्राय: आगे रावराजा तेजसिंह को आश्विन वदी ११ सं० १९४०

[पूर्ण संख्या ६०३] पत्र

ओ३म्

श्रीयुत बिहारीलाल जी आनन्दित रहो[1]।

विदित हो कि भाद्र कृष्ण १२ द्वादशी बुधवार[2] के दिन का लिखा तुमारा पत्र आया, समाचार विदित हुआ। ५

इस विषय के नियम

१—वहां पं० गौरीशंकर जी का १ प्रथम माहवारी मासिक क्या था और जब राज में नौकरी थी तब क्या मासिक था। जब अंगरेज में नौकरी थी तब क्या मासिक नियत था।

२ और अब कितना मासिक उन को देना चाहिये और १० कितने मासिक में उन का निर्वाह हो सकेगा।

३—और जितना मासिक उन को देना होगा, जिस में तुम कितना दोगे और कितने महीने वे अन्यत्र घूमेंगे और कितने महीने वहां रखना चाहते हो।

४—और जब वे बाहर घूमेंगे, वह रेल का भाड़ा और खाने १५ पीने का खरच समाज से मिलेगा। और जैपुर में रहेंगे, तो अपना मासिक में से खावेंगे। जब बाहर घूमेंगे तब समाज से रेल का भाड़ा खाने पीने का खरच मिलेगा।

५—इस में हमारा विचार यह है कि ८ आठ महीने बाहर घूमें और ४ चार महीने जैपुर में रहा करें। इस में तुमारी क्या २० सम्मति है। इन सब का प्रत्युत्तर शीघ्र भेजो। जब भेजोगे उस के पश्चात् हम उसका प्रबन्ध ठीक ठीक करेंगे। और हम अपनी

(२६ सितम्बर १८८३) को लिखे पूर्ण संख्या ६३६ पत्र के साथ जो ओषधि-पत्र भेजा था, उससे समानता रखती हैं। अतः सम्भव है आगे मुद्र्यमाण ओषधिपत्र की ही प्रतिलिपि महाराणा उदयपुर को भेजी गई होगी। तिथि २५ का निश्चय न होने से अनुमान से यह सूचना यहां जोड़ी है। बारहट किशन सिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें।

१. मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

२. २६ अगस्त १८८३। बिहारीलाल जी का यह पत्र तीसरे भाग में देखें। ३०

सम्मति भी लिखेंगे। पश्चात् और इस प्रबन्ध के समय के प्रथम पं० गौरीशंकर जी को २०।१५ दिन हम अपने पास बुलावेंगे, जब कि जोधपुर से अजमेर को आवेंगे। इसलिये इस पत्र का उत्तर पं० गौरीशंकर से और सभासदों से सम्मति लेकर शीघ्र भेजो[1]। और
५ सब से मेरा आशीर्वाद कह देना।

यहां का समाचार पश्चात् लिखेंगे। और यहां वर्षा बहुत अच्छी हो गई और हो रही है।

संवत् १९४[०] मि० भा० शु० १[2]। [दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़

—:०:—

१० [पूर्ण संख्या ६०४] पत्र

ओ३म्

बाबू विश्वेश्वरसिंह जी आनन्दित रहो[3]

बख्तावरसिंह के समय के रजिस्टर सब प्रयाग में हैं। और चिट्ठी पत्र तथा हिसाब किताब कुछ मेरठ में भी हैं। यदि अब तक
१५ न आया हो तो मन्त्री आर्यसमाज मेरठ बाबू आनन्दीलाल से मंगा कर वकीलों को दिखला देओ। और प्रबन्ध शीघ्र करो। कलकत्ते के टेप कितने मंगाना चाहते हो। और उसके कितने रुपये मन लगेंगे। जब कि प्रथम आये थे तब ४०) रुपये मन के नाम लगे थे। इस विषय का सब हाल लिखो। यदि मुम्बई के टेपों से कार्य
२० निकल सके तो फिर मंगाना कुछ आवश्यक नहीं।

और यह जो सभा का प्रबन्ध हुआ है सो बहुत अच्छा है। एक को अधिकार देने में खराबी होती है। और एक को अधिकार न देना। इस सभा में तुम लोग तथा सुन्दरलाल जी और हमारी भी पूर्ण सम्मति है। इसलिये जो प्रबन्ध इसका तुम विचारते हो वही

---

२५ १. इस पत्र का उत्तर श्यामसुन्दरलालजी मंत्री वैदिक धर्म सभा सवाई जयपुर ने भाद्र शुक्ला ९, सं० १९४० (११ सितम्बर १८८३) के पत्र में दिया था। श्यामसुन्दरलाल जी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. २ सितम्बर १८८३।

३. मूल पत्र श्री नारायण स्वामी जी के संग्रह में सुरक्षित है।

हमने विचारा है। क्योंकि स्वतन्त्र अधिकार देने में हानि ही हानि होती है। और लाभ कुछ भी नहीं होता। और तुमने लिखा कि धन के कार्य में किसी को स्वतन्त्रता न देनी चाहिये, वह सच है। क्योंकि धन के काम में स्वतन्त्रता से लाखों आदमियों में से कोई ही रह सकता है। और यहां धन का ही केवल काम नहीं किन्तु ५ पुस्तकों का ही बड़ा भारी माल है। जैसे हरिश्चन्द्र ने और बख्तावरसिंह ने चोरी से वेदभाष्य के ग्राहक कर लिये थे। और छापेखाने में भी हम को प्रसिद्धि करता था १००० हजार और छपवाता था २००० तथा १५०० डेड़ हजार। और बाहर का चोरी से छपवा लेना। उस का हिसाब कुछ न देना। यदि दिया तो १० हिसाब में लिया १०० सौ और लिखा २० बीस। इत्यादि बहुत प्रकार के छापेखाने में काम रहते हैं। दो मनुष्यों को जो तुम सभा में बढ़ाना चाहो, हमारी ओर से बढ़ा दो। और पण्डित जी की भी सम्मति ले लो। और तुम प्रसन्नता से यन्त्रालय में रहो, तुम्हारा घर है। और मुंशी समर्थदान ने भी हमको लिख भेजा है, वह भी १५ तुम्हारे रहने से राजी है।

जो पिछला रुपया बाकी है उसका तकादा करना विचारा है, सो अच्छी बात है। परन्तु मैं शोक करता हूं कि जिस काम में मुन्शी समर्थदान अकेले रहते थे, तब वसूल और तगादा भी होता था। और जब से पं० शिवदयाल और रामचन्द्र रक्खे हैं, तो भी २० तगादा और वसूल अच्छा नहीं होता। यह अपने देश का अभाग्य है, क्योंकि जितने अधिक होंगे, उतना विरोध करेंगे। और काम ठीक ठीक नहीं करते। इसलिये इन तीनों को समझा दो कि अपना अपना काम प्रीति और उत्साह से करें। विशेष कर पं० शिवदयाल और रामचन्द्र को समझाना। समर्थदान तो समझा ही हुआ है। २५ इस कमेटी के विषय में कोई निन्दा लिखे, हम कभी नहीं सुनेंगे। हां, जो कुछ हमको लिखितव्य[1] होगा, सो पं० सुन्दरलाल जी को लिखा करेंगे। ऐसा विचार मत रक्खो कि इस प्रेस से मैं कुछ न

१. जो आधुनिक वैयाकरण लिख धातु में गुण का निषेध मानते हैं, वे 'गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन् ङित्' (अष्टा० १।२।१) सूत्र में 'कुटस्य आदिः ३० कुटादिः' ऐसा समास भी स्वीकार करते हैं।

लूं। क्या घर के माल में से घर के आदमी यथोचित नहीं लेते। जो काम धार्मिक उत्तम मनुष्य से बनता है, वह धन से कभी नहीं होता। जो तुमसे यन्त्रालय की उन्नति होगी, वह निश्चय है कि लाखों रुपये खर्च करने से भी न होगी। क्योंकि सब पदार्थ संसार ५ में सुलभ हैं, परन्तु शुद्ध मनुष्य का मिलना दुर्लभ है। क्या तुम इस द्रव्य को बुरा और अधर्म का समझते हो, जो नहीं लेओ। यह सब उत्तर लिखो। बड़ों बड़ों और छोटों छोटों का कुछ नियम नहीं है। यह तो अपने आत्मा के साथ है। क्योंकि बड़े बड़े तो बिगड़ कर तेल के बड़े हो जांय और छोटे छोटे सुधर कर बड़े हो जाते १० हैं।

अब बाकी का तगादा कर जहां तक हो सके धन इकट्ठा करो। और पश्चात् २०००) का सामग्री मंगवाओ। यदि उस में कुछ न्यूनता होगी, तो हम दे देंगे। यदि यह सब प्रबन्ध हो जाय तो पेन्शन लेकर यहीं तुम रहना। और जो मासिक पाते हो वही यहां १५ मिले। और १०) रुपये वे भी लिये जायं तो उस में से प्रति मास बचाते बचाते बहुत सा धन हो जायगा। और यह निश्चय है कि जहां जहां जिस जिस की उन्नति हुई है वह सब सभा ही से हुई है। इसलिये इस की भी उन्नति सभा ही से होगी। इससे यह बहुत अच्छा प्रबन्ध है। और सबसे हमारा आशीर्वाद कह देना। यहां २० वर्षा बहुत हुई और हो रही है। निश्चय है कि वहां भी हुई होगी।

मिति भाद्र सुदी २ संवत् १९४०[1]।

दयानन्द सरस्वती
जोधपुर राज मारवाड़

—:o:—

२५ [पूर्ण संख्या ९०५] **पत्राशय**

[कमलनयन शर्मा, मन्त्री आ० स० अजमेर[2]]

---

१. ३ सितम्बर १८८३।

२. देशहितैषी के रजिस्टर से। इस पत्र की पहुंच कमलनयन शर्मा ने भाद्र सुदी ५ सं० १९४०, ६ सितम्बर १८८३ के पत्र में दी है। कमलनयन ३० शर्मा का पत्र तीसरे भाग में देखें।

ईसाई स्त्री[1] के विषय में पूरी तरह लिखो।

[2]सितम्बर १८८३ जोधपुर		दयानन्द सरस्वती

—:o:—

**[पूर्ण संख्या ९०६]		पत्राशय**

[पं० मुन्नालाल जी, अजमेर]

... . आपने मन्त्री का पद क्यों त्याग दिया। क्या फिर इसे ग्रहण नहीं कर सकते ?[3]

[4]सितम्बर १८८३ जोधपुर

दयानन्द सरस्वती

—:o:—

**[पूर्ण संख्या ९०७]		पत्राशय**

[.........झालावाड़]

झालावाड़ के.....................अतालीक (लैफ्टेण्ट लौंग) का हाल लिखो।[5]

ह० (दयानन्द सरस्वती)

—:o:—

---

१. इस का नाम सीताबाई था। यह ईसाई हो गई थी। इस को आर्य-समाज अजमेर ने शुद्ध किया था। इस विषय में कमलनयन शर्मा के ३१-८-१८८३; ६-९-१८८३ तथा १६-८-१८८३ के पत्र देखें। ये सभी पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. सम्भवत: ३ सितम्बर को यह पत्र लिखा होगा। कमलनयन शर्मा ने इस का उत्तर ६ सितम्बर को दिया है।

३. यह पत्राशय पं० मुन्नालाल के ७-९-१८८३ के लम्बे पत्र के आधार पर बनाया है। इसी पत्र में ऋ० द० के पत्र की प्राप्ति का निर्देश भी किया है। मुन्नालाल का पत्र तीसरे भाग में देखें।

४. सम्भवत: ३ सितम्बर को यह पत्र लिखा होगा। द्र०—मुन्नालाल का ७-९-८३ का पत्र।

५. यह पत्राशय आगे विना मिति के पूर्ण संख्या ९३२ के पत्र के अनुसार बनाया है। पूर्ण संख्या ९३२ का पत्र विना मिति का होने से वह और यह दोनों पत्र अनुमान से जोड़े गये हैं। विशेष पूर्णसंख्या ९३२ के पत्र की टिप्पणी में देखें।

[पूर्ण संख्या ६०८] पत्र

ओ३म्

चौधरी जालिमसिंह जी आनन्दित रहो[1]।

भीमसेन के दो पत्र[2] आजकल हमारे पास यहां आये हैं। विदित
५ होता है कि धक्का खाने पर इसको कुछ बुद्धि आई है। अब आप
लिखिये कि जब से यह वहां आया, तब से उस का वर्त्तमान पोप-
लीला का हुआ वा अच्छा। इस लिखने का प्रयोजन यह है कि
फिर भी वह हमारे पास नौकरी करना चाहता है। और हम को
उसके पूर्व चरित्रों से पूरा विश्वास नहीं होता कि यह जैसा लिखता
१० है कि अब मैं सब बात समझ गया। आप से विरोध कभी नहीं
करूंगा। आप की सब वातों में मेरा दृढ़ विश्वास हो गया, अब मैं
आप की आज्ञानुसार सदा चलूंगा इत्यादि। परन्तु वह छोकरबुद्धि
है। यपि उस को रख लें पुनः अनुचित काम करे, निकालना हो तो
अच्छी बात नहीं। अब आप लिखिये इस में आप की क्या सम्मति
१५ है। क्योंकि मैंने उस के बहुत से उल्टे चरित्र देखे हैं। और इस में
अच्छे भी गुण हैं परन्तु बुरे गुण ऐसे प्रबल हैं कि अच्छे गुणों को
मात कर देते हैं। यदि परमेश्वर की कृपा से उस का स्वभाव सुधर
गया हो तो बहुत अच्छी बात है। परन्तु जबतक इस पत्र का उत्तर
आप भेजेंगे तिस पश्चात् मेरी जैसी सम्मति होगी, वैसी आप को
२० और भीमसेन को लिख दूंगा। देखिये कि कहीं बदरी[3] आप को
और मुझ को कैसा भलामानस दीखता था। और कैसा दुष्ट
निकला। इसलिये उत्तम धार्मिक पुरुषार्थी मनुष्य का सहसा
मिलना असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। बड़े भाग्य और पर-
मेश्वर की कृपा से उत्तम पुरुष को उत्तम पुरुष मिलता है। सब से

---

२५ १. मूल पत्र श्री विष्णुलाल एम० ए० के पास बरेली में था। वहीं से
हमने इस की प्रतिलिपि की।

२. भीमसेन का एक पत्र बिना तिथि का है, इसे तीसरे भाग में तारा-
दत्त शर्मा फर्रुखाबाद के २१ अगस्त १८८३ के पत्र के आगे देखें। दूसरा पत्र
भाद्र कृष्णा १२ सं० १९४० (२९ अगस्त १८८३) का है। इसे भी तीसरे
३० भाग में देखें।

३. इस बदरी का उल्लेख पूर्णसंख्या ७७९ पृष्ठ ८०८ में भी है।

मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा। मुझ को निश्चय है कि आप पक्ष-पात रहित यथार्थ लिखेंगे।

मिति भाद्र शुदी ४ संवत् १९४०[1]।

दयानन्द सरस्वती[2]
जोधपुर राज मारवाड़　　　५

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९०९]　　　पत्र

ओ३म्[3]

श्रीमन्माननीयवर श्रीयुत महाराज राजाधिराज शाहपुरेश आनन्दित रहो।

रजिस्ट्री पत्र आप का गत दिन आया[4], समाचार विदित हुआ। सरदार जवाहरसिंहजी के विषय में आपकी जैसी इच्छा हो वैसा कीजिये। मैंने भी उनको कई बार मासिक के गड़ बड़ न करने के विषय में लिखा था कि ऐसा न करना चाहिये, परन्तु ऐसा ही हुआ। इस में [१][5] एक बात विचारणीय है कि सरदार जवाहरसिंह जी मेरे सम्बन्ध से बुलाये आये हैं। यह प्रथम कार्य हुआ है। यह [आगे] आप लोगों और जिसको [मैं] बुलाना चाहूंगा उन दोनों को अविश्वास का कारण होगा। अस्तु जैसा हुआ वैसा ही हो। और क्षात्रशाला का उद्योग निष्फल हुआ, यह शोक की बात है। यहां

---

१. ५ सितम्बर १८८३।

२. इस पत्र के उत्तर में चौ० जालिमसिंह जी ने भाद्र सुदी १० सं० १९४० (१२ सितम्बर १८८३) को पत्र लिखा था। उसे तीसरे भाग में देखें।

३. मूल पत्र राजकार्यालय शाहपुरा में सुरक्षित है।

४. यह रजिस्ट्री द्वारा भेजा गया श्री शाहपुराधीश का पत्र सम्भवत: भाद्र वदी १४ सं० १९३९ (१९४०) ता० १ सितम्बर १८८३ का प्रतीत होता है। यह शाहपुराधीश और ऋ० द० दोनों के पत्रों की तुलना से स्पष्ट है। शाहपुराधीश का पत्र तीसरे भाग में देखें।

५. शाहपुरा से हमारे पास आई मूल पत्र की प्रतिलिपि में यह अङ्क नहीं है।

[७] सात दिन से वर्षा होती है सब मारवाड़ में। फिर भी होने का संभव है। और अकाल का नाम उड़ गया। यहां सब प्रकार से प्रसन्नता है। यहां का समाचार पश्चात् लिखेंगे।

छीतरदत्त जी आदि और स० जवाहरसिंह जी को भी मेरा
५ आशीर्वाद कहियेगा। वहां वर्षा हुई वा नहीं। सो समाचार लिखियेगा।

दयानन्द सरस्वती

सं० १९४० मि० भादवा शु० ५ गुरु दिन[1]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९१०] पत्रांश

१० [श्रीयुत महाराजाधिराज शाहपुरेश ......][2]

....

सब बातें संसार में मिल जाती हैं, परन्तु ऐसे मनुष्य का मिलना असम्भव नहीं तो अति कठिन तो अवश्य है।......

मिति भाद्रपद सुदी ६ बृहस्पतिवार संवत् १९४०[3]।

—:०:—

१५ **[पूर्ण संख्या ९११] पत्र**

ओम्

॥ प्रसिद्ध समाचार ॥

श्री मद्राजराजेश्वर महाराजाधिराज श्री जोधपुरेश आनन्दित रहो।

---

२० १. यह तिथि पं० चमूपति सम्पादित पत्रव्यवहार पृ० ३९ में नहीं है। वह उस प्रतिलिपिमात्र से छापा गया है, जो ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में थी। ६ सितम्बर १८८३।

२. यह पत्र राजाधिराज श्री शाहपुराधीश को लिखा गया होगा। भाई जवाहरसिंह उन दिनों श्री शाहपुराधीश के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। प्रतीत
२५ होता है, नौकरी छोड़ते समय वह इस पत्र की नकल अपने साथ ले आये। ऊपर मुद्रित अंश भाई जवाहरसिंह ने "रद्दे बुतलान" के पृ० ६८, ६९ पर छापा है।

३. ६ सितम्बर १८८३। शाहपुराधीश ही के नाम का इसी तिथि का

अब मैं यहां बीस पच्चीस दिन रहना चाहता हूं, यदि कोई नैमित्तिक प्रतिबन्ध न होगा। मैंने यह समझा है कि यहां आकर आपका धन व्यय व्यर्थ कराया, क्योंकि मुझ से आप का उपकार कुछ भी नहीं हुआ। और आप की ओर से मेरी सेवा यथोचित होती रही। जब श्रीमान् गुण-ज्ञाता हैं इसलिये जब जब मुझ को अवकाश मिलता है। तब तब पत्र द्वारा कुछ निवेदन कर देता हूं। उस मेरे निवेदन को देख सुन कर आप प्रसन्न होते हैं इसलिये **तीसरी बार लेख करने के लिये मुझ को समय मिला।**[1]

१ -जैसा राजकार्य आजकल आप कर रहे हैं वैसा ही यावत् शरीर रहे तावत् करते रहियेगा। इस को जहां तक हो सके वहां तक अधिक अधिक करते जावें, कभी न छोड़ें। क्योंकि न्याय से राज्य का पालन करना ही आप लोगों का परम धर्म है।

२ -आप अपने पुत्र जो कि महाराजकुमार हैं, उन को खाने-पीने आदि से संकोचित मत रखियेगा। सदा पाव भर गाय के दूध में मासा भर सोंठ को मिला छान थोड़ा सा गरम कर ठंडा करके ब्राह्मी औषधी के साथ पिलवाते रहिये, जिस से महाराजकुमार के बुद्धि बल पराक्रम आयु और विद्या बढ़ती रहे।

३ -जो एक रत्न आप के बन्धु महाराजे प्रतापसिंह जी हैं, उन को कभी राज्यकार्य से पृथक् मत कीजियेगा। क्योंकि ऐसा पुरुष आप और राज का हितैषी दूसरा कोई नहीं दीखता।

४ -इस देश में वर्षा प्रायः न्यून होती है। इस के लिये यदि मेरे कहे अनुसार एक एक वर्ष में १००००) दश हजार रुपयों का घृतादि का नित्यप्रति और वर्षा काल में चार महीने तक अधिक होम करावेंगे वैसे प्रति वर्ष होता रहै तो सम्भव है कि देश में रोग न्यून और वर्षा अधिक हुआ करै।

पत्र पूर्णसंख्या ९०९ पर छपा है, उस में यह अंश नहीं है। कदाचित् यह दूसरा पत्र होगा। अथवा क्या भाई जवाहर सिंह ने इसे स्वयं बना लिया?

१. पहला पत्र पूर्ण संख्या ८७२ (पृष्ठ ८८७) पर छपा है। यह तीसरा पत्र है। दूसरा पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ।

५—आप में औदार्यादि प्रशंसनीय बहुत गुण हैं। इन को यदि राजनीति में प्रवर्त रक्खें तो देश का सौभाग्य और श्रीमन्महाशयों की पृथिवी भर में उत्तम कीर्ति फैल जावे।

॥ गुप्त समाचार ॥

५ १—जो जो श्रीमानों के प्रशंसनीय गुण कर्म स्वभाव हैं उन के कलंक नीचे लिखे हुए काम हैं।

२—एक वेश्या से जो कि नन्नी[1] कहाती है। उस से प्रेम। उस का अधिक संग और अनेक पत्नियों से न्यून प्रेम रखना आप जैसे महाराजों की सर्वथा अयोग्य हैं।

१० ३—जैसे हड़के कुत्ते के दांत वा लाल लगने से उस का दोष छूटना अति कठिन है। वैसे ही वेश्या मद्यपान चौपड़ कनकौवे आदि में व्यर्थ काल खोना और खुशामदी लोगों का सङ्ग राजाओं के लिये महा विघ्नकारक, धन आयु कीर्ति और राज्य के नाश करनेवाले होते हैं। मुझ को बड़ा आश्चर्य है कि आप बड़े बुद्धिमान्
१५ और शौर्यादि गुणयुक्त होकर इनसे पृथक् क्यों नहीं होते।

४—जैसे आप नन्नी रंडी के घर को जाते, उस की माता आदि रोगिणी को देखते हैं और जैसे एक किसी अपने नौकर मुसलमान के लड़के के विवाह में घोड़े की लगाम पकड़ के पैदल चले थे, वैसा निन्दाकारक काम करना आपको शोभा कभी नहीं देता। किन्तु
२० इन के बदले जैसे महता विजयसिंह जी बीमार थे, जाकर देखते और जो अपने मारवाड़ के सरदार और बेटे हैं जो कि राजा और राज्य की उन्नति चाहने वाले हों उन के पुत्रों के विवाह में पैदल चलना आदि करते रहें तो सर्वदा प्रशंसा लाभ और उन्नती होती रहे।

---

२५ १. जोधपुर में 'नन्ही' नाम की दो वेश्याएं थीं। एक 'नन्ही जान' (मुसलमान) और दूसरी 'नन्ही भगतन' (हिन्दू)। प्रायः सभी जीवन-चरित्र लेखकों ने 'नन्ही जान' का उल्लेख किया है। यह ठीक नहीं है। जोधपुराधीश की कृपा-पात्र नन्ही भगतन थी। देखो इस भाग के अन्त में छापा जा रहा 'ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन में स्मृत कतिपय व्यक्तियों का
३० संक्षिप्त परिचय' शीर्षक परिशिष्ट।

५—जब जब मैं किसी के मुख से अथवा समाचार पत्रों में आप लोगों की निन्दा सुनता या देखता हूं तब मुझ को बड़ा शोक होता है। यदि आप लोग ऐसे निन्दा के काम न करें तो क्यों निन्दा होवे। हम लोगों को अंगरेज आदि के सामने शरमिन्दा क्यों होना पड़े। बड़े महाराज जो कि श्रीमानों के पिता जी थे, यदि वे बहु-विवाह पासवान् और वेश्या आदि को न रखते तो आप लोग भी कभी ऐसा काम न करते। ऐसे ही जैसे आप लोगों का व्यवहार महाराजकुमार आदि देखेंगे इनहीं में झुकेंगे। क्योंकि मनुष्य को दूसरे का गुण लेना कठिन और दोष लेना सहज है।

६—**आप महाराजकुमार की शिक्षा के लिये किसी मुसलमान वा ईसाई को मत रखियेगा।** नहीं तो महाराजकुमार भी इन के दोष सीख लेंगे। और आप के सनातन राजनीति को न सीखेंगे। न वेदोक्त धर्म की ओर उनकी निष्ठा होगी। क्योंकि बाल्यावस्था में जैसा उपदेश होता है वही दृढ़ हो जाता है। उस का छूटना दुर्घट है।

७—महाराजकुमार के संस्कार सब वेदोक्त कराइयेगा। २५ वर्ष तक ब्रह्मचारी रख के **प्रथम देवनागरी भाषा और पुनः संस्कृत विद्या जो कि सनातन आर्ष ग्रन्थ है** जिनके पढ़ने में परिश्रम और समय कम होवे और महालाभ प्राप्त हो, इन दोनों को पढ़े। पश्चात् यदि समय हो तो अंग्रेजी भी, जो कि ग्रामर और फिलासफी के ग्रन्थ हैं पढ़ने चाहिये।

८—**जैसे आपने गणेशपुरी**[1] **आदि जो कि केवल बुरी चाल-चलन सिखलाने हारे हैं** उनका दुराचार देख के उनका सदा त्याग रक्खा है, वैसे वेश्या आदि मीठे ठगों से भी पृथक् आप क्यों नहीं रहते। जैसे मुसलमान और ईसाई आदि के टोपी पैजामा मुंडे जूते कोट पतलून टोपी आदि के धारण से आप अपने उत्तम विचार से पृथक् रहे हैं, वैसे ही हजारह गुणों में वेश्यासङ्ग आदि में आप अपने अमूल्य समय को मत खोवें। आप का शरीर ऐसे क्षुद्र काम और विषयासक्ति और आराम के लिये नहीं है, किन्तु बड़े परिश्रम

१. गणेशपुरी शाक्त-मतानुयायी तथा नन्ही भगतन का गुरु था, और विष सम्बन्धी षड्यन्त्र में भी सम्मिलित था।

न्याय पुरुषार्थ से लाखहू मनुष्यों के हितार्थ आप लोगों का शरीर है। देखिये आप मनुस्मृति के सप्तम अष्टम और नवम अध्यायों में कि राजाओं के लिये क्या क्या कर्तव्य और अकर्तव्य लिखा है। मुझ को निश्चय है कि आप इन करड़ी और कल्याणकारक बातों
५ को सुन कर प्रसन्न होंगे। अलमतिविस्तरेण महामान्यवर्येषु[1]।

---:o:---

[पूर्ण संख्या ६१२] पत्र

ओ३म्

श्रीयुत बहारट कृष्ण जी आनन्दित रहो[2]।

जयकर्ण जोधपुर में आये। उन से वहां का सब वर्तमान सुन के
१० अत्यानन्द हुआ। परन्तु थोड़ी सी बातें लिखता हूं। अब निम्न-लिखित बातें श्रीमान् महाशयों[3] के दृष्टिगोचर करा देना। अन्य किसी को नहीं।

१—प्रातःकाल का भ्रमण करना सदैव हुआ करे। उस में विच्छेद कभी न किया जाय।

१५ २—भोजन का जो समय दिनचर्या[4] में १० दश बजे से लेके ११ ग्यारह बजे के पूर्व पूर्व करना लिखा है, वैसा ही सदा रखना चाहिये।

३—सभा में बैठकर जैसे दिनचर्या[4] में लिखा है वैसे बराबर न्याय करना चाहिये। उसमें आलस्य कुछ भी न हो।

---

२० १. अनुमान से ८ सितम्बर १८८३ को यह पत्र भेजा गया होगा। मूल पत्र की प्रतिलिपि ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में थी। उसे ऋषि ने स्व-हस्त से शोधा हुआ है। उसी से म० मामराज जी ने ३० दिसम्बर १९३२ को गुरुकुल काङ्गड़ी में जाकर प्रतिलिपि की। पं० चमूपति जी सम्पादित पत्रव्यवहार के पृ० ९२-९७ तक भी छपा है।

२५ २. मूल पत्र ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में था। इस की लिपि को ऋषि ने स्वहस्त से शोधा है। उस की प्रतिलिपि म० मामराज जी ने ५ जनवरी १९३३ को की। पं० चमूपति सम्पादित पत्रव्यवहार पृ० १२२-१२३ तथा १७३ पर भी छपा है।

३. अर्थात् उदयपुराधीश महाराणा सज्जनसिंह जी।

३० ४. दिनचर्या पूर्ण संख्या ७२९ पृष्ठ ७५५-७६४ पर छपी है।

४ जो उस रोग को नि:शेष होने में श्रीमानों को कुछ भी सन्देह रहा हो तो जो इन्दौर के डाकतर साहब का विचार किया है, वह उत्तम है। वह डाकतर अनुमान से विदित होता है कि अच्छा है। परन्तु ओषधी करते समय जो उन के नीचे डाकतर गणपतराव जी और डाकतर भवानीसिंह जी भी दोनों साथ रहें। ५

५—मुझ को निश्चय है कि यदि सर्वाधीश वाल्टर साहब से इस बात की सम्मति के लिये पूछेंगे तो वे सम्मति अवश्य दे देंगे। पूछने की रीति यह है—(अब ओषध हो गया और रोग भी निवृत्त हो गया, परन्तु इस की परीक्षा के लिये अर्थात् अब यह रोग नि:शेष हो गया वा नहीं, इन्दोर के डाकतर को बुलाकर परीक्षा १० कराना मैं चाहता हूं। इस में आपकी क्या अनुमति है)। पूछते ही वे सम्मति दे देंगे। जब उन की सम्मति हो जाय तब उसी समय उस डाकतर साहिब गणपतराव और कविराज जी को उदयपुर में शीघ्र बुला लेना चाहिये।

६—यदि अब तक किञ्चित् उस रोग के नि:शेष होने में शङ्का १५ है तो उसका पथ्य थोड़ा समय पूर्ण रीति से रखना चाहिये, विशेष कर ब्रह्मचर्य। और आगे के लिये भी सदा ऋतुगामी रहें कि जिस से न कोई रोग आवै। और निरन्तर धर्मार्थ काम मोक्ष राजकार्य की उन्नति होकर आर्यावर्त देश की उन्न[ति] होकर सदा आनन्द बढ़ता रहे। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कृपा से ऐसा ही होवे। २०

भाद्रपद शुक्ला ८ संवत् १९४०[1]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ९१३]　　　पत्रांश

[कमलनयन मन्त्री आर्यसमाज अजमेर[2]]

---

१. १० सितम्बर १८८३। जोधपुर से भेजा गया। बारहट किशनसिंह ने स० १९४० आश्विन कृष्णा १० (२६ सितम्बर १८८३) के पत्र के आरम्भ २५ में ऋ० द० के जिस पत्र का उल्लेख किया है, वह सम्भवत: यही पत्र है। बारहट किशनसिंह जी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. देशहितैषी के रजिस्टर से।

………एक कहार ५५०) का असबाब लेकर भाग गया[1]।

१३ सितम्बर ८३[2]। जोधपुर दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६१४] पत्र-सूचना

[श्री पं० भागराम जी, अजमेर[3]]

५ चोरी के सम्बन्ध में।

१३ सितम्बर[4] १८८३। जोधपुर

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६१५] पत्राभिप्राय

[कमलनयन मन्त्री आ० स० अजमेर[5]]

सीता स्त्री के विषय में लिखते हैं[6]।

---

१० १. यह अभिप्रायमात्र है। चोरी के सम्बन्ध का एक पत्र आगे पूर्ण संख्या ६२३ पर भी निर्दिष्ट है। कमलनयन शर्मा के २५-६-१८८३ के पत्र में जिस 'रजिस्ट्री चिट्ठी' का उल्लेख है वह सम्भवत: पूर्ण संख्या ६२३ का पत्र है। चोरी ता० १२-१३ की मध्य रात्रि में हुई थी। यह इस पत्र (सं० ६१३) से स्पष्ट है। पं० लेखराम जी ने जीवन चरित में चोरी की तारीख १५ नहीं दी है। श्री देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन चरित भाग २ पृष्ठ ७०३ पर २५ वा २६ सितम्बर को चोरी होना लिखा है। यह इस पत्रांश में दी गई तारीख के विपरीत है।

२. भाद्र शुक्ल ११ सं० १९४०।

३. इस पत्र का संकेत कमलनयन शर्मा ने अपने २५-९-१८८३ के पत्र २० में किया है। यह पत्र आध आने के लिफाफे में भेजा गया था। (उस समय पोस्टकार्ड १ पैसे का और लिफाफा २ पैसे का था)। पं० भागराम अजमेर में जज थे। संभव है पं० भागराम जी को भी पत्र १३ ता० को न लिखकर आगे पूर्णसंख्या ६२३ के चोरीविषयक पत्र के साथ लिखा गया हो।

४. यह तिथि आनुमानिक है।

२५ ५. देशहितैषी के रजिस्टर से।

६. इस विषय में पूर्ण संख्या ६०५, पृष्ठ ६२१, टि० १ देखें। इस स्त्री के शुद्ध होने पर अजमेर के ईसाईयों में बहुत विप्लव हुआ था।

१५ सितम्बर १८८३[1] जोधपुर

दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ९१६] पत्र

॥ओ३म्॥

बाबू विश्वेश्वरसिंह जी आनंदित रहो[2] ! ५

तुमने लिखा[3] सो ठीक है। इस में चार समाज जो कि प्रयाग के निकट हैं उन से इस बात का नियम कराना चाहिये। हाँ, मेरठ समाज कुछ उन तीन समाजों से दूर है। तथापि रेल से कुछ दूर नहीं। एक फरक्काबाद, दूसरा मेरठ, तीसरा दानापुर और चौथा लखनऊ। इन चार समाजों के मन्त्रियों को इस हमारे पत्र की १० नकल के साथ लिख भेजो। दो वर्ष में एक बार पारी आवेगी। क्योंकि छ: छ: महीने के पश्चात् किसी चार समाजों में से जिसकी पारी हो, वहां से धार्मिक उत्तम पुरुष आया करें। वह अन्तरङ्ग सभा की सम्मति से आवे। और वह हिसाब में [भी?] अच्छी तरह से समझता हो। तथापि धार्मिक और देशोन्नति में प्रीति रखने १५ वाला हो। चाहे समाज धर्मार्थ वैदिक यन्त्रालय का कितना ही सहाय करे और वास्तव में समाजों ही के प्रताप से वैदिक यन्त्रालय बना है तथापि समाज से जो कोई पुरुष आवे उसके आने जाने और जब तक वहां रहे तबतक खाने पीने का खरच भी वैदिक यन्त्रालय से दिया जाय। और वर्ष वर्ष में वैदिक यन्त्रालय का आय व्यय २० और पुस्तकों का जमा खर्च भी एक छोटे से पुस्तकाकार में छप के स्वीकार पत्र के [साथ] सब सभासदों और सब आर्यसमाजों में भी भेजा जावे। इस से बहुत अच्छी बात रहेगी। और जो कुछ हिसाब में गलती दीखे, वह वैदिक यन्त्रालय की प्रबन्धकर्तृ प्रयाग सभा को तद्द्वारा मुझको और पंडित सुन्दरलाल जी को और उन चार २५

१. भाद्र शु० १३ सं० १९४०।

२. यह पत्र फर्रुखाबाद का इतिहास नामक ग्रन्थ के पृ० २०४ पर भी छपी हुई प्रतिलिपि से छापा गया है। मूल पत्र श्री नारायण स्वामी जी के संग्रह में सुरक्षित है।

३. श्री बाबू विश्वेश्वरसिंह जी का यह पत्र नहीं मिला। ३०

समाजों को विदित किया जाय। उसका उचित प्रबन्ध करने के लिये प्रयाग की सभा को अपनी सम्मतिपूर्वक मैं वा अन्य सब लिख भेजें। और वह सभा यथावत् प्रबन्ध किया करे। इससे निश्चय है कि प्रबन्ध अच्छे प्रकार चलेगा। और मुन्शी समर्थदान के २७
५ सत्ताईस तारीख अगष्ठ[1] का उत्तर यही है कि उन्होंने कापी मांगी है और भीमसेन के पत्र की नकल भेजी थी और कापी आज ही भेजते। आज रविवार है रजिस्टरी नहीं होती। इसलिये कल भेजेंगे।

मिति भाद्र सुदी १५ रविवार सम्वत् १९४०[2]।

१० जोधपुर राज मारवाड़। दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६१७] पत्र-सूचना

[लाला साईंदास, लाहौर][3]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६१८] पत्र

ओ३म्

१५ मुन्शी समर्थदान जी आनन्दित रहो[4]!

आर्यराज वंशावली के पत्र तुमने भेजे सो पहुंचे। उसी समय हम **सत्यार्थप्रकाश १२ समुल्लास को भेजना चाहते थे।** इसलिये हम शोध नहीं सके। और तुम इसका जोड़मात्र शोध लेना। जो राजाओं के आयु के वर्ष, मास, दिन हैं उन को वैसे ही रखना।
२० क्योंकि अन्य पुस्तक से भी हमने इसको मिलाया है जो कि यहां जोधपुर में एक मुन्शी के पास था। और इसके साथ मोहन-चन्द्रिका १९-२० किरण भेजते हैं। परन्तु यह भी अशुद्ध छपा है। इसलिए नीचे और ऊपर के जो जोड़ हैं वही शुद्ध कर लेना, आयु

---

१. मुंशी समर्थदान का यह पत्र तीसरे भाग में देखें।

२५ २. १६ सितम्बर १८८३।

३. इस पत्र का संकेत भाई जवाहरसिंह के १३ अक्टूबर १८८३ के पत्र में मिलता है। भाई जवाहरसिंह का पत्र तीसरे भाग में देखें।

४. मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में होगा। हमने यह पत्र आर्यधर्मेन्द्र जीवन से लेकर छापा है।

के वर्ष, मास, दिन नहीं। दिन वैसे ही रहने देना, जैसे कि हैं। **२७२[1] से लेके ३१९ तक १२ समुल्लास सत्यार्थप्रकाश का छापने के लिये भेजते हैं।** जो जोधपुर के मुन्शी की पुस्तक से मिलाई है वह भी भेजते हैं।

मिति आ० वदी ६ सं० १९४०[2]। ५

जोधपुर राज मारवाड़

[दयानन्द सरस्वती]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९१९] पारसल-सूचना

[मुन्शी समर्थदान, प्रयाग][3]

१ – आर्यराजवंशावली के पत्र। १०

२ – सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ २७२ से लेकर ३१९ तक तथा १२ वां समुल्लास।

३—मोहन चन्द्रिका किरण १९-२०।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९२०] पत्र

ओ३म् १५

चौधरी जालिम सिंह जी आनन्दित रहो[4]।

पत्र आपका आया[5], समाचार विदित हुआ। आप के लिखने अनुसार उस का अपराध क्षमा करके बुलालेंगे वा कहीं अन्यत्र भेज देंगे[6]। परन्तु उस को आप भी समझा देना। और एक कहार की हम को जरूरी है। यदि मिल सके तो लिखिये। और आज भीम- २०

---

१. पूर्णसंख्या ८९९ (पृष्ठ ९१४) के पत्र में २७८ तक पृष्ठ भेजने का उल्लेख है। तदनुसार यहां २७९ चाहिये।

२. १७ सितम्बर १८८३, सोमवार।

३. इस पारसल की सूचना पूर्ण संख्या ९१८ के पत्र में है। पूर्ण संख्या ९१६ के पत्र में भी संकेत है। २५

४. इस पत्र की प्रतिलिपि हमने बरेली से ली।

५. यह भाद्र सुदी १० सं० १९४० (१२ सितम्बर १८८३) का चौ० जालिमसिंह जी का पत्र तीसरे भाग में देखें।

६. भीमसेन को।

सेन के पास भी पत्र भेज दिया है। और अब हम यहां से शीघ्र अन्यत्र जावेंगे। और जब निश्चित जाने का दिन होगा तब आप के पास पत्र भेज देंगे[1]।

सम्वत् १९४० मि० आश्विन कृ० ४ गुरुवार[2]—।

५ [दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६२१] पत्र-सूचना

[पं० भीमसेन..................][3]

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६२२] पत्र

१० ओ३म्

श्रीयुत बाबू दुर्गाप्रसाद जी आनन्दित रहो।[4]

विदित हो कि आप को मैंने बहुत बहुत वार कहार के लिये लिखा था। तुम ने कुछ ध्यान नहीं दिया। उस का फल यह हुआ कि एक जाट जिले भरतपुर से दो कोश पूर्व की ओर ग्राम विरोना १५ साहबराम पोजदार का बेटा और कुन्दन का छोटा भाई कल्लू नाम वाला शाहपुरे में ऐसे ही रख लिया था। वह चोरी कर के भाग गया है।[5] यदि भरतपुर में आपका विशेष संबन्ध हो तो उस के द्वारा उस चोर का निश्चय करवायिये! और फिर भी लिखते हैं कि कोई कहार तलाश करके भेजोगे तो अच्छा होगा।

---

२० १. यह पत्र इस पते पर भेजा गया—'चौधरी जालिमसिंह जी, ग्राम रूपधनी, जिले एटा थाने धूमरी एटा।' इस पत्र का उत्तर चौ० जालिमसिंह जी ने आश्विन सुदी १ संवत् १९४० (२ अक्टूबर १८८३) के पत्र में दिया है। इसे तीसरे भाग में देखें।

२. २० सितम्बर १८८३।

२५ ३. इस पत्र की सूचना पूर्वनिर्दिष्ट पूर्णसंख्या ६२० के पत्र में मिलती है।

४. मूल पत्र लिफाफे सहित हमारे संग्रह में सुरक्षित है। सन् १९२७ में म० मामराजजी फर्रुखाबाद से खोज कर लाये थे।

५. देखो पूर्ण संख्या ६१३, ६१४ का पत्र।

१—आवश्यक बात जिस पर आप को अवश्य ध्यान देना है है सो यह कि जो कुछ नगद रुपये पास वा वैदिक यन्त्रालय में वर्तमान खर्च से अधिक रहे। वह आप लोग निम्नलिखित छः महाशयों की सभा के प्रवन्ध में रहें। और जब जब उसमें से खर्च करने का आवश्यक होवे तब तब मैं वा वैदिक यन्त्रालय के लिए वहीं से खर्च के लिये जाया करे। और इस धन को ।।) सैकड़े ब्याज पर जहां कि आप लोगों की सभा की और मेरी सम्मति हो, वहीं रखा जावे। यदि आप लोग निम्नलिखित सब सभासद उचित समझें तो सेठ निर्भराम जी के दुकान में जमा रहे। और वे ।।) आना सैकड़े ब्याज भी देते हैं। परन्तु इस की सम्भाल [करने वाला] सभा की ओर से एक मन्त्री और एक प्रधान होवे। और सभा उस धन की रक्षा और उन्नती में सदा ध्यान रक्खे। क्योंकि मैं अपने पास शिवाय एक महीना भर के खर्च के अधिक नहीं रखना चाहता। जो अधिक हो वह सभा की सम्मति से लाला निर्भयराम जी के यहां जमा हुवा करे और खरच भी वहां ही से उठा करे। **जब तक मेरा शरीर है तब तक तो कुछ चिन्ता नहीं, परन्तु पश्चात् आप लोगों को अर्थात् सभा को परमार्थ के लिये बड़ा पुरुषार्थ करना होगा।** कि जिस से आर्यावर्त की उन्नति में ये सब पदार्थ लगा करें। और मेरे पश्चात् जो स्वीकारपत्र[1] में प्रधान और सभासद हैं वे सब इस सभा के सभासद गिने जायंगे। और उसी स्वीकार पत्र के नियम के अनुसार व्यय भी किया जायगा।

॥ सभा का नाम॥

आर्यहितैषिणी—

इस के सभासद

१ एक आप
२ दूसरा लाला जगन्नाथप्रसाद
३—लाला निर्भयराम
४—लाला कालीचरण
५—राव बहादुर पं० सुन्दरलाल
६ बाबू आनन्दी लाल मन्त्री आर्यसमाज मेरठ

१. देखो पूर्णसंख्या ७६० (पृष्ठ ७८७)।

७- सातवां मैं।

इस सभा का दूसरा काम यह भी रहे कि छटे छटे महीने कोई प्रतिष्ठित सभासद वा कोई योग्य पुरुष सभा की सम्मति से भेजा जावे। वह वैदिक यन्त्रालय के धन पुस्तक आदि की जांच पड़ताल ५ करे। उस का सब हिसाब छोटे पुस्तकाकार में छपवा के स्वीकार-पत्र के सभापति आदि और मुख्य मुख्य समाज के पास भेज दिया जावे। और मध्य में भी वैदिक यन्त्रालय की सभा से जो कि सात पुरुषों की वहां नियत हुई है पत्र द्वारा भी पूछ सके। इसके विना देखिये अभी च०[1] ४००—५००) रुपयों की हानि हुई है। और १० कुछ इधर उधर से ११५) और ३००) मैंने अपने हाथ से लाला रामशरणदास मेरठ में जमा किये थे, वे गड़बड़ में रहे। इसी प्रकार ऐसे बहुत से व्यवहार हैं कि जिनके लिये यह सभा का प्रबन्ध होना आवश्यक है। और शरीर सब के अनित्य हैं। इससे यह काम शीघ्र होना चाहिये। पत्र पहुंचते ही इस का प्रत्युत्तर लिखें, क्योंकि मैं १५ यहां से अब शीघ्र जानेवाला हूं। परन्तु पांच ५ दिन पहले एक पत्र और भेजूंगा[2]। यदि इतने में उत्तर यहां आ जाय तो अच्छा है। और सब से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

मिति आश्विन कृष्ण ४ सं० १९४०[3]।

[दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़

२०

—:o:—

पूर्ण संख्या ९२३] पत्र-सूचना

[कमलनयन मन्त्री आ० स० अजमेर]

---

१. 'अभी च०' का क्या अभिप्राय है, समझ में नहीं आया। सम्भव है यहां 'अभी तक' पाठ अपेक्षित हो।

२५ २. सम्भव है दूसरा पत्र ऋ० द० भेज नहीं सके। इस का कारण २९ सितम्बर की रात में ऋषि दयानन्द को विष देने से अस्वस्थ हो जाना है। ऋ० द० का अन्तिम पत्र भी २९ सितम्बर १८८३ का मिलता है। इस के अनन्तर ३० सित० तथा १ अक्टू० के पत्रों की सूचना मिलती है।

३. २० सितम्बर १८८३।

कहार की चोरी के विषय में[1]।
२१ सितम्बर १८८३। जोधपुर[2]

ह० दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९२४] पत्र-सूचना

[श्रीमान् महाराजा जोधपुराधीश[3]] ५
आश्विन वदी ७ रविवार, सं० १९४०[4]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९२५] पत्र-सूचना

[श्री महाराज प्रतापसिंह जी[3]]
आश्विन वदी ७ रविवार, सं० १९४०[4]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९२६] पत्र-सूचना १०

[रावराजा तेजसिंह जी[3]]
आश्विन वदी ७ रविवार, सं० १९४०[4]।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९२७] पत्र

ओ३म्

मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो[5]। १५

---

१. देशहि० के रजिस्टर से। इस विषय की एक पत्र-सूचना पूर्ण संख्या ९१३ (पृष्ठ ९२९) पर छपी है, उसी विषय में यह दूसरी पत्र-सूचना है। कमलनयन शर्मा का एक पत्र २५-९-८३ का है। क्या उस में उल्लिखित रजिस्ट्री चिट्ठी यही है। कमलनयन शर्मा का पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. आश्विन कृष्ण ५ शुक्र, सं० १९४०। २०

३. इन पत्रों की सूचना आश्विन वदी १३ शनि सं० १९४० (२२ सि० १८८३) को रावराजा तेजसिंह के नामवाले पूर्णसंख्या ९३६ के पत्र में है।

४. २३ सितम्बर १८८३।

५. मूल पत्र परोपकारिणी सभा में होगा।

आज संस्कारविधि के पृष्ठ १से लेके ४७तक भेजते हैं[1] **। सम्भाल के छपवाना** । और एक तीन पत्र का एक पत्र है । वह जिस प्रकार जोड़ा है उसी प्रकार छपेगा । वह गड़बड़ न हो, इसलिए जोड़ा है । इसीलिये तीनों का एक अंक रक्खा । और हम ने भीतर प्रतीक के
५ अंक पृष्ठांक अर्थात् फलाना मंत्र वा फलाने कर्म फलाने पृष्ठ में करना, अपने लिखे पृष्ठों के अनुसार अंक लिखे हैं । परन्तु लिखे और छपे एक से पृष्ठांक नहीं होंगे । इसलिये छपे पृष्ठों के अनुसार वे पृष्ठांक बना लेने । और विषय सूचीपत्र भी छपे पीछे बनेगा । और एक सामग्री सूचीपत्र अर्थात् फलाने संस्कार में फलानी
१० फलानी सामग्री संग्रह की जायगी, जैसा कि इस संस्कारविधि में लिखा है । और अवकाश मिला तो **सामग्री सूचीपत्र तो हम ही यहां से लिख भेजेंगे**[2] । अब हम यहा से अमावस्या[3] के दिन रवाना हो के आश्विन सुदी ४ चौथ[4] को मसूदे में पहुच जायंगे, यदि वर्षा का प्रतिबन्ध नहीं हुआ । और जो प्रतिबन्ध हुआ तो तुमको चिट्ठी
१५ लिख देंगे । और सत्यार्थप्रकाश जो कि १३ समुल्लास ईसाइयों के विषय में है वह यहां से चले पूर्व अथवा मसूदे पहुंचते समय भेज देंगे । और मुम्बई से टैप आया वा नहीं । और यदि नहीं आया तो प्रत्युत्तर भी आया वा नहीं ।

मिति आश्विन वदी ८ सोमवार सम्वत् १९४०[5] ।

२० दयानन्द सरस्वती
जोधपुर राज मारवाड़ ।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६२८] पारसल-सूचना

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]

---

१. संस्कारविधि के १—४७ तक के पृष्ठ सामान्य प्रकरण के हैं । इस
२५ से आगे का संस्कारविधि का भाग पाण्डुलिपि (रफ कापी) से छपा है । इस पाण्डुलिपि पर ऋ० द० के हाथ के संशोधन हैं ।

२. यदि प्रतिसंस्कार सामग्री की सूची ऋषि दयानन्द लिख देते तो अनेक विवाद उत्पन्न न होते ।

३. १ अक्टूबर १८८३ । ४. ५ अक्टूबर १८८३ ।

३० ५. २४ अक्टूबर १८८३ ।

संस्कारविधि के पृष्ठ १—४७ तक।[1]

आश्विन वदी ८ सोमवार, सं० १९४० [२४ सितम्बर १८८३]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ६२६] पत्र

ओ३म्

ठाकुर नन्दकिशोरसिंह जी आनन्दित रहो[2]। ५

पत्र आपका सभा की ओर से पंडित नंदकिशोर जी[3] के विषय का मिति भा० सु० ९ लिखा आया, समाचार विदित हुआ। पत्र के उत्तर में विलंब इसलिये हुआ कि कुछ समाजों का अभिप्राय विचारणीय विशेष था, इसलिये शीघ्रोत्तर नहीं दिया गया। इतने में आर्य स० अजमेर की जैसी संमति आई है कि उक्त पंडित जी १० को सब समाजों के उपदेशक नियत करना चाहिये, वैसी ही सब समाजों की संमति निश्चय जानों। मेरी भी संमति यही है कि किसी एक समाज पर इनके मासिक का भार नहीं दिया जायगा। और यदि तुमारी सभा में उनके सहाय करने का समय (सामर्थ्य?) न हो तो कुछ चिंता नहीं। तुमारे समाज को इतना ही भार रहेगा १५ कि जिस समय जैपुर से अन्य समाज को पंडित जी जायेंगे तब रेल का खरच दूसरे समा[ज] तक का देना होगा। और जिस जिस समाज में जायेंगे और जितने दिन रहना होगा, व्याख्यान देंगे और सभासदों को उचित समय में पढ़ावेंगे भी, और मासिक इनका २०) रुपये रहेगा। क्योंकि २ महीने तक अपने घर का खरच २० खायेंगे। दश महीने घूमने में उन का खरच खाने पीने में समाज की ओर का लगेगा। इनके मासिक में से कुछ खरच न होगा किन्तु २२०) रुपये उन के घर के खर्च के लिये समझना चाहिये। और

---

१. इस पारसल की सूचना पूर्णसंख्या ६२७ के पत्रानुसार दी है। तिथि का निर्देश भी उसी पत्र के अनुसार दिया है। २५

२. मूल पत्र हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

३. भाद्र सुदी ९ के जिस पत्र की ओर संकेत है, उस में पण्डित का नाम गौरीशङ्कर लिखा है। इस पत्र के अन्त में भी गौरीशङ्कर नाम है। अत: यहां 'पण्डित गौरीशङ्कर जी' पाठ चाहिये। ठा० नन्दकिशोर का पत्र तीसरे भाग में देखें। ३०

एक वर्ष में दो महीने की छुट्टी अर्थात् तुम्हारे समाज में और अपने घर में रह के उपदेश वा पढ़ाया करें। छुट्टी चाहे तो दो महीने की इकट्ठी ले ले अथवा छ: छ: महीने में एक एक महीने की। और इन के मासिक के लिये ऐसा प्रबन्ध किया जायगा कि प्रति मास उनके ५ घर पे २०) रुपये पहुंचा करेंगे। चाहे किसी समाज की ओर से जाय वा हमारे पास से। इस का प्रबन्ध हम कर देंगे, जैसा उचित समझेंगे। फिर इसमें कुछ शङ्का न रहेगी। जिस समाज से जिस समाज तक जाना होगा, वह समाज रेल का व्यय और मार्ग में खाने पीने का भी वही समाज दे दिया करेगा। इतना खरच उठाने १० में समाज कोई भी निर्बल नहीं है, प्रत्युत सैकड़ों रुपयों का खरच यदि ऐसे ऐसे दश पण्डित भी हों तो भी समाज प्रबन्ध कर सकते हैं, परन्तु जब समाज स्वयं समझ लेवेंगे कि पण्डित जी एक वर्ष में सब समाजों में एक फेरा लगा आवेंगे। पश्चात् चाहे छोटे से छोटा समाज क्यों न हो, इन का सत्य उत्साह और वक्तृत्व ऐसा है कि १५ बड़े प्रसन्नता के साथ इनका खरच उठा लेंगे। और यदि ऐसे ऐसे पण्डित और जैसे स्वामी सहजानन्द तथा आत्मानन्द सरस्वती जहां जाते हैं वहां प्राचीन समाज को आनन्द और नूतन समाज नित्य होते जाते हैं। उपदेशक मण्डली के लिये मेरठ समाज तथा लाहौर समाज ने भी कुछ धन सञ्चय किया है और महाराज राजाधिराज २० शाहपुरेश ने भी ३०) माहवारी नियत किये हैं, परन्तु उस में यह नियम किया गया है कि दो उपदेशक हमारी ओर से रक्खे जायं। चाहे १५) १५) के दो चाहे एक २०) का वा १ एक १०) का रक्खा जावे। यह नियम भी पालन करना आवश्यक है। इसलिये इस पत्र को देखते ही इन सब बातों का स्वीकार हो तो प्रत्युत्तर २५ शीघ्र भेजो। अब हम जहां से संवत् १९४० आश्विन वदी ३० अमावश्या[1] के दिन चलके आश्विन सुदी ४ चौथ को अर्थात् ५ अकतूबर सन् १८८३ को मसूदे पहुंच जायेंगे[2]। यदि पण्डित जी को स्वीकार होगा तो मसूदे में उन को बुला लेंगे। और सब समाजों में विदित कर दिया जायगा कि पं० गौरीशङ्कर जी को वैदिक मत

---

३० १. १ अक्टूबर १८८३।

२. इस यात्रा का निर्देश पूर्ण संख्या ६२७ के पत्र में भी है।

का उपदेशक नियत किया है। उस के सब नियम पूर्वक हो जायगा और दो महीने जैपुर के समाज में रहेंगे। उन दो महीनों के दश १०) रुपये जैपुर का समाज दिया करे अर्थात् उन का २५) पच्चीस रुपये महावारी बना रहेगा। सब से हमारा आशीर्वाद कह दीजियेगा। ५

संवत् १९४० मिति आ० वदी ८[1]।

[दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़

—:o:—

[पूर्ण संख्या ९३०] पत्र-सूचना

[श्री बहादुरसिंह जी रावसाहब मसूदा] १०
मसूदा पहुंचने की सूचना तथा प्रबन्ध विषय में[2]।
आश्विन वदी ८ सोमवार सं० १९४०[3]।

—:o:—

[पूर्ण संख्या ९३१] पत्र

ओ३म्[4]

श्रीयुत शास्त्री छगनलाल जी तथा वृ[द्धिचन्द जी] आनन्दित रहो। १५

आज एक रजिस्ट्री पत्र श्री [रावसाहब के] पास भी भेजा है। निश्चय है कि समय पर दोनों पहुंच जायेगा। आप को विदित किया जाता है कि हम यहां से संवत् १९४० आश्विन वदी ३० अम्मावस्या सोमवार के दिन अर्थात् अक्टूबर तारीख १ को इहां २० जोधपुर से चलकर बुद्ध अर्थात् आश्विन सुदी २ तदनुसार अक्टूबर

१. २४ सितम्बर १८८३।

२. इस पत्र की सूचना अगले पूर्ण संख्या ९३१ के पत्र में है। उसी पत्र के अनुसार यह पत्र रजिस्ट्री से भेजा गया था।

३. २४ सितम्बर १८८३। यह पत्र रजिस्ट्री से भेजा गया था। २५

४. मूल पत्र अथवा उसकी प्रतिलिपि परोपकारिणी सभा अजमेर में सुरक्षित है।

तारीख ३ को मुम्बई से नयेनगर[1] को रात्री में मेल आती है उसी में आयेंगे। नयेनगर के स्टेशन पर उतरेंगे। इसलिये आप लोग नयेनगर को प्रतिपदा के दिन एक रथ, एक्का और एक असबाब की गाड़ी और जो हाथी अच्छा चलता हो तो हाथी भी भेज देना।
५ और यदि हाथी भेजो तो एक्का मत भेजना। और घाटी के नीचे कि जहां तक बग्गी आती है वहां बग्गी भेज देना। [पहले] का सा प्रबन्ध न हो[2]। किन्तु रेल आने के स[मय से] घंटा दो घंटा पहले से सवारी आके रतु ······ और साथ दो सवार और दो चार आदमी पहरे वाले भेज देना। हम नयेनगर से सीधे मसूदे चले
१० जावेंगे। और जिस मकान में हमारा ठहरना हो वह भी शुद्ध कर और सब सामग्री कर रखना। और दो चतुर पुरुष सवारी के साथ नयेनगर में भेजना। उन में से एक सवारी के पास रहे कि जो उक्त मिति को मुम्बई से आने वाली रेल के समय स्टेशन पर सवारी ले के खड़ा रहे। और एक · मुंगु को तत की[3] रेल में
१५ नयेनगर से रात्री की रेल में बठा और प्रात:काल खार्ची[4] स्टेशन पर आके स्टेशन मास्टर जो जोधपुर के सरदारमल मास्टर का भाई है उनसे कहदे कि आज स्वामी जी आवेंगे। और उन को लेने के लिये [हम आये हैं।] इतना कहते ही उनको प्रीति में रख लेगा।
········ वाके दिन उपस्थित रखो।
२० मिति आश्विन वदी ६ सोमवार संवत् १६४०[5]।

[दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़[6]

---

१. नयेनगर अर्थात् ब्यावर। मुम्बई से नयेनगर (ब्यावर) को एक्सप्रेस आती थी। उसे ही मेल लिखा है।

२५ २. शाहपुरा से लौटते समय मसूदा जाने का निश्चय था। परन्तु प्रबन्ध की अव्यवस्था के कारण बरल (षीरल) स्टेशन पर कोई सवारी नहीं पहुंची (देखो पूर्ण संख्या ८२१, ८२२) उसी की ओर यह संकेत है।

३. सम्भवत: 'मुम्बई की तरफ की'।

४. खार्ची अर्थात् मारवाड़ जंक्शन।

३० ५. २४ सितम्बर १८८३। वदी ८ चाहिये, वदी ६ को मङ्गलवार और २५ सि० है।

६. कोष्ठों और बिन्दुओं वाला स्थान फट चुका है। इस पत्र का उत्तर

[पूर्ण संख्या ६३२] पत्र

अजमेर

मास्तर झालावाड़ के राजराणा जी[1]

झालावाड़ के अतालीक जो भाग गये उसका हाल संक्षेप से झालावाड़ से समाचार मंगवाया था सो हाल यह है कि लफटंट लौंग साहेब ३।। साड़े तीन वर्ष तक अतालीक रहे। जीती खर्च वा अजमेर खर्च श्री राजराणा साहेब बहादुर अताली[क] के सुपुर्द रहता था किन्तु नित्यप्रति के व्यय के लिये नगद रुपैये १७०००) राज की उसके पास था और रुपये १२०००) सेठ मूलचन्द्रजी वा गणे[श]दास आदि साहुकारों का पहिले से लेना था। और रुपये २०००) हजार का जेवर श्री राजराणा साहेब का जो उसी रात धावाई हरलाल की मार्फत वास्ते देखने के मंगाया,[2] वह सब लेकर अकेला रात की रेल में अजमेर से चला गया। साहब लोगों का कहना है कि उसका पता नहीं है कि कहां गया और अब वह कहां है।

उपदेश[3]

१—सदा पक्षपात छोड़ के अभ ····· ···के सामने उपदान लेने की चेष्टा कभी न करनी चाहिये।

पं० छगनलाल ने आश्विन कृष्णा ११ संवत् १९४० को दिया। पं० छगनलाल का पत्र तीसरे भाग में देखें।

१. मूल लेख ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में था, उसमें तिथि आदि नहीं लिखी है। (पं० चमूपतिजी सम्पादित पत्रव्यवहार पृ० १४४ पर छपा है)। यहां हमने अनुमान से जोड़ा है।

२. लौंग साहब का कुछ वृत्तान्त पं० कमलनयन शर्मा मन्त्री आर्यसमाज अजमेर ने अपने पत्र ता० १७ जून १८८३ में श्री स्वामी जी को लिखा है। इसे तीसरे भाग में देखें।

३. यह उपदेश श्री स्वामी जी ने पेन्सिल से लिखा है। प्रतीत होता है कि यह पहले पत्र (झालावाड़ वाले) के साथ सम्बद्ध है। मूल लेख ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में था। म० मामराज जी ने ता० ३ जनवरी सन् १९३३ में इसकी प्रतिलिपि की, हमने उसी से शुद्ध छापा है। पं० चमूपतिजी सम्पादित पत्रव्यवहार पृ० १४५-१४७ पर कुछ अशुद्ध छपा है।

२—सेना में सुरक्षित अधिष्ठाता आर्य जनों को रखना।

३—क्षात्रशाला।

४ हास्य और वेश्यानृत्य पासबान् आदि से समागम कभी न करना।

५ ५—आबू एजंट और सीमा के व्यवहार में को गोल पासवान् स्वार्थी राजद्रोही मूर्ख को न रखना, किन्तु बड़े विद्वान् धार्मिकों को रक्खे!

६—सर्वदा उद्युक्त आलस्य रहित[रहो]दीर्घसूत्री कभी न हो।

७—कभी अर्थी प्रत्यर्थी से लोभादि में फंस कर अन्याय न करे

१० न करावे। यदि जिसका सत्य न्याय हो वह बिना प्रसङ्ग भेंट करे तो भी उन से कहे कि न्याय करना हमारा निज काम है, इतने [पर] भी प्रसन्नता से देवें तो लेवे।

८—वेदविरोधी की जाल से प्रजा को बचावे।

९—सदा ऋतुगामी स्वदाररत हो, इस से भिन्नों को मां बहिन

१५ और कन्या के सदृश माने।

१०—शरीर राज्य ऐश्वर्य विद्या धर्म को सर्वदा बढ़ा[या करे]।

११—वेश्यागामी दुर्व्यसनी, दुष्ट-व्यसनों का संग कभी न करे। सदा भ्रमण के लिये एक पुरुष और दूत

१२—धर्मार्थोपरि

२० १३—गोविषय

१४—छापाखानादि

१५—किसी को अपना भेद, कोई अपना छिद्र न जाने।

१६—जो धर्मदाय वा पारितोषिक दिया हो, जिसलिये उसका उसी के अर्थ नियुक्त रखना

२५ १७—किसी की अर्जी सुन कर निष्फल न करनी, किन्तु उसका यथावत् विचार करके जीत हार तय करना ही चाहिये।

१८—सरदार और पण्डित व्रजनाथ वा अन्य कोई योग्य पुरुषों को सीमा प्रबन्ध[क] करना चाहिये।

१९—जितनी पृथ्वी स्वराज्य की दूसरे राज्य में दबी है, उसके

३० लिये अपील शीघ्र अवश्य होनी चाहिये।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९३३]　　　　पत्र

ओ३म्

श्रीयुत बाहरट किसन जी आनिन्दत रहो[1]।

अब हम यहां जोधपुर से सम्वत् १९४० मिति आश्विन वदी ३० अमावस्या सोमवार को अर्थात् सन् १८८३ तारीख १ अक्तूबर को रवाना होके जिले अजमेर राज मसूदा—में तारीख ४ अक्तूबर आश्विन शुदि ३ तृतीया बृहस्पतिवार को पहुंचेंगे। और यही **समाचार कविराज श्यामलदास जी** को भी लिख भेजा है[2]। और यहां का समाचार बहुत सा आप को पहुंच भी गया होगा। और पश्चात् मसूदे से लिखेंगे। और इस पत्र का उत्तर ठिकाना मसूदा जिले अजमेर राजपूताने भेजियेगा।

मि[ति] आश्विन वदी १० बुध सम्वत् १९४०[3]।

[दयानन्द सरस्वती]
जोधपुर राज मारवाड़

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९३४]　　　　पत्र

॥ ओ३म् ॥

श्रीयुत कविराज स्यामलदास जी आनन्दित रहो[4]—

अब हम यहां जोधपुर सें संवत् १९४० मिति आश्विन वदी वदी ३० अमावस्या सोमवार को अर्थात् सन् १८८३ तारीख १ अक्तूबर को रवाना होके जिले अजमेर राज मसूदा में तारीख ४ अक्तूबर आश्विन सुदि ३ तृतीया बृहस्पतिवार को पहुंचेंगे। और यही समाचार श्रीमानों के पास भी बाहरट किसनजी के द्वारा भेज

---

१. मूल पत्र ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में था। पं० चमूपति सम्पादित पत्रव्यवहार पृ० १७८ से लिखा गया।

२. देखो पूर्ण संख्या ९३४ का पत्र।

३. ता० २६ सितम्बर १८८३।

४. मूल पत्र ठाकुर किशोरसिंह जी के संग्रह में था। पं० चमूपति सम्पादित पत्रव्यवहार पृ० ४९ पर छपा है।

दिया है[1]। और यहां का समाचार आप को भी बहुत सा पहुंच गया होगा। और पश्चात् मसूदे से लिखेंगे। और (जयपत्तनस्य कार्यस्मरणं वर्तते न वास्मिन्कार्यसिद्धिकरणे विलंबो नैव कर्तव्य इति।) और नेत्र अरुग्ण हो गये वा नहीं? क्या श्रीमान् भी चित्तौड़गढ़ में ५ पधारेंगे वा नहीं। और इस पत्र का उत्तर ठिकाना मसूदा जिले अजमेर राजपूताने में भेजियेंगा—

मिति आश्विन वदी १० सम्वत् १९४०[2]।

[——————]
जोधपुर राज मारवाड़

—:०:—

१० [पूर्ण संख्या ९३५] पत्रांश

[कमलनयन मन्त्री आर्यसमाज अजमेर[3]]

पहली अकटूबर की जोधपुर से मसूदे जावेंगे।

२७ सितम्बर १८८३[4]। जोधपुर दयानन्द सरस्वती

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९३६] पत्र

१५ ओ३म्[5]

श्रीयुत रावराजा तेजसिंह जी आनन्दित रहो।

(१) यहां ओषधी का एक पत्र जिस में चोंतीस ओषधियाँ हैं[6], जिस में से कई परीक्षित हैं, सो भेजते हैं। आप सम्भाल लीजिये और जो किसी में शंका रहे तो पूछ लीजिये।

---

२० १. देखो पूर्ण संख्या ९३३ का पत्र।

२. २६ सितम्बर सन् १८८३।

३. देशहि० के रजिस्टर से।

४. आश्विन वदी ११ बृहस्पतिवार सं० १९४०।

५. मूल पत्र रावराजा जी के पास था। वहीं से इसकी प्रतिलिपि २५ प्राप्त हुई।

६. यह ओषधिपत्र हम अगली पूर्ण संख्या ९३७ पर छाप रहे हैं। इस विषय में पृष्ठ ९४८ की टि० २, ३ भी देखें।

(२) आज सन्ध्या को उसी पूर्वोक्त काम के लिये मुन्शी जी को भेज दीजिए ।

(३) एक चमड़े की बेग जो कि उस चोर ने दो ठिकाने से काट दी है, यदि किसी कारीगर से एक दिन में सुधरवा दें तो आप के पास भेज देवें। परन्तु विलम्ब एक दिन के सिवाय न हो ५ तो, अर्थात् शनिवार को अवश्य मिल जाय। यदि ऐसा न हो सके तो आगे बनवा लेंगे।

(४) यहां से पाली तक सवारी का प्रबन्ध जैसा आप ने किया हो वैसा किसी पुरुष द्वारा वा पत्र लेख से मुझ को आज विदित कर दें। सवारी का प्रबन्ध ऐसा होना चाहिये कि जैसे पहिले और १० तो सब सवारी ठीक थी, परन्तु असबाब की गाड़ी के बैल बिगार के थे, बहुत पीछे रह जाती थी। अब के ऐसा न होना चाहिये, किन्तु सवारी और असबाब की गाड़ी बराबर चलें और बैल अच्छे जुतवाने चाहियें कि सवारी के बराबर चले जायें।

(५) अमरदान जी के मुख से सुना कि महाराजे प्रतापसिंह जी १५ ने अमरदान जी से कहा था कि हम बारह घण्टों में पाली को पहुंचा देंगे सो आप पूछ के उत्तर लिखिये कि वह क्या सवारी होगी।

(६) जो मेरे साथ के मनुष्य और पुस्तकादि असबाब जावेंगे, उस के साथ आप सुपरीक्षित दो सवार और एक वा दो मेरे साथ। २० तथा असबाब के साथ पहरा अच्छा भेजना चाहिये। जैसा कि आप के पूना जाने के पश्चात् मुरदावली और एक दो अच्छे सिपाही का पहरा यहां बिना आठ दिन की बदली के रक्खा था, उस का प्रतिफल चोरी हुआ, इसलिए पहरा और सवार [ऐसा] भेजना चाहिये, जो कि होशियारी से पाली तक अच्छे प्रकार पहुंचाए। २५ यह मैंने आपको स्मरण दिलाने के लिये लिखा है। निश्चय है कि आप स्वयं अच्छा प्रबन्ध करेंगे। इन सब बातों का प्रत्युत्तर आज ही मेरे पास भेज दीजिये ॥

(६) और **जो सन्ध्या का अनुवाद अंग्रेजी का गुटका** आप ले गये थे, वह भिजवा ही दीजिए। अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु। ३०

मिति आश्विन वदी ११ बृहस्पतिवार सम्वत् १९४०[1]।

दयानन्द सरस्वती
जोधपुर राज मारवाड़

यह ओषधियों का खरड़ा[2] श्रीमान् योधपुराधीश और महाराजे
५ प्रतापसिंह जी को भी दिखला देना।

—:०:—

[पूर्ण संख्या ६३७] [ओषधि-पत्र[3]]

१ **सर्प्पोषधी** —जमालगोटे की गिरि को नींबू के रस में एक दिन रात भिगोय, पुनः एक दिन रात सुखावे। इस रीति **२१** इक्कीस पुट अर्थात् बयालीस दिन रात में करके रख ले, जब किसी को
१० सांप काटै तब पत्थर पर घिस के जिस जगह् काटा हो लगादे, यदि मूर्छित हो गया हो तो सलाई से थोड़ा सा आंख के ऊपर लगादे और त्रिफला के जल को उपस्थित रक्खे, मूर्छा उतर जाने पर त्रिफला के जल से आंखें धोवे वैसे कई दिन धोवें, त्रिफला को रात्रि के समय मट्टी के पात्र में भिगोवे और कण्ठ

---

१५ १. २७ सितम्बर १८८३।

२. इस पत्र की प्रतिलिपि ठाकुर किशोरसिंह के संग्रह में थी। उसी से पं० चमूपति जी ने पृ० १०३-४ तक यह पत्र छापा है। उस में तेतीस ओषधियों का ही उल्लेख है। हस्ताक्षर से नीचे का लेख तथा तिथि उस में नहीं है। परन्तु रावराजा तेजसिंह जी से हमें प्राप्त हुई प्रतिलिपि में ३४
२० ओषधियों का निर्देश है। ये ३४ ओषधियां हम अगली पूर्ण संख्या ६३७ पर छाप रहे हैं।

३. इन ३४ ओषधियों के पत्र का उल्लेख पिछले पूर्ण संख्या ६३६ के पत्र के आदि और अन्त में है। एक ओषधि पत्र का निर्देश पूर्ण संख्या ८८१ (पृ० ८६७) में भी है। उस के विषय में पृष्ठ ८६८ की टिप्पणी संख्या १
२५ भी देखें। पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्डया उपमन्त्री परोपकारिणी सभा द्वारा सम्वत् १९४२ (सन् १८८५) में मुद्रापित 'आवेदन-पत्र' में श्री स्वामी जी महाराज की संगृहीत पुस्तक सूची की संख्या ८१ पर भी "औषधियों का याद-पत्र स्वामी जी के लिखे हुये" निर्दिष्ट है। सम्भव है वह इसी की **प्रतिलिपि हो।**

तक ठण्डा जल पिला कै दो चार बार कय करावै, तो सर्प के विष से बच जाय ॥१॥

२ **द्वितीय ओषधी** - जिस किसी को सांप काटे, उस को तुरन्त ही एक रीठा कुछ पानी में घिस कर पिलाना चाहिये, तुरन्त ही विष जाता रहैगा ॥२॥ ५

३ **तथा तृतीय**—नीवगिलोय को वांट के पीवै, यदि मूर्छा आ गई हो तो जहां तक हो सकै वहां तक पिचकारी से नीबगिलोय को पेट में पहुंचावै, तो वह बच जाय ॥३॥

४ **ओषध गोहरे के विष की**—दोनामरवा पैसे भर पानी में पीस कर मिला दे, यदि मूर्छित होय गया हो तो पिचकारी से पेट में पहुंचावे, तो अच्छा हो जाय ॥४॥ १०

५ **बाला की औषधी**—छः मासे आक का दूध और वारह मासे गुड़: दोनों को मिलाकर टिकड़ी कर के एक दो अथवा तीन वार वाले पर लगा दे तो वाला जाय ॥५॥

६ **हड़के कुत्ते की ओषधी**—सफेद तिल का तेल और आकरा दूध बराबर मिला के कुत्ता के काटे हुए घाव में लगादे, इस से अच्छा हो जायगा ॥६॥ १५

७ **तथा द्वितीय ओषधी**—पुराना घृत धतूरे के बीज और आक का दूध अथवा घृत आक का दूध और गुड़ इनको जल में पीसकर घाव में लगा देने से अच्छा हो जाता है ॥७॥ २०

८ **वीर्य पुष्ट होने का साधन**—सूखे आंवलों को कूट छान उसके बराबर मिश्रि मिला कर गौ के दूध के साथ प्रातः सायं १) तोले भर की फंकी लेवे तो प्रमेह आदि के रोग जांय ॥८॥

९ **पेटपीड़ा की औषधी**—सौंठ, सुहागा, हींग इनको बराबर लेकर सहजने की छाल अर्क में घोट कर गोली बांध लेवै, एक गोली गर्म जल के साथ खिला देवै तो पेट पीड़ा जाय ॥९॥ २५

१० **रुधिर शोधक की औषधी**—फिटकड़ी के फूले कर पीस के उस को १ मासे वा जितनी पचे अथवा जो रुचि होवे तो पाव भर छास। अथवा जितनी छास की रुचि हो उतनी में मिलाय कर पीवे, तो सब प्रकार का रुधिर विकार व्याधी छूट जावै तथा खांसी बवासीर आदि में भी गुण करे ॥१०॥ ३०

११ **मूत्रकृच्छ्र और पथरी की औषधी-अपरिक्षित:**— एक लाल मिरच

मीठा छास में आठ पहर भिजो कर निकाल लेवे फिर उस छास को फेंक और दूसरी छास में पीस कर जितनी छास पीवै की इच्छा हो उतनी में छान कर पीवै, इसी प्रकार दूसरे दिन दो मिरची और तीसरे दिन तीन, ऐसे ही सात दिन तक
५ चढ़ता उतरता जाय। इस समय खट्टा, गुण, तेल और नोंन को न खाय तो मूत्रकृछ् और पथरी रोग छुट जाय ॥११॥

१२ **गर्भस्राव की सम्भावित औषधी**—जड़ सहित दूब एक पैसे भर ११ काली मिरचों को पीस छान के ७ सात दिन गर्भाधान के पूर्व और सात दिन गर्भाधान के पश्चात् तथा चौथे महीने में
१० भी ७ दिन पीवै तो गर्भस्रवित न हो ॥१२॥

१३ **काली फुनसी का औषध**—काली फुनसी पर सोने की शलाका का चारों ओर दाह देवै तो वह अच्छा होय ॥१३॥

१४ **गर्भस्थिरौषधी**—शंखावली को दूध में पका के जब दूध ठंडा हो जावै, तब स्त्री पीवे और गर्भस्थापन समय स्त्री को शंखावली
१५ पीस के सुंगावै तो गर्भस्थित होवै और बड़ वा पीपल की जटा को पांच दिन तक पीस के पिलावै तो भी गर्भस्थिति हो जाय ॥१४॥

१५ **जो सुजाक से सुजाक हो जाता है उसकी परिक्षितव्यौषधी**—सुदर्शन के पत्तों का अर्क निकाल उस की पिचकारी भर लगावै
२० और पत्तों को पीस कर घाव पर लगा देवे तो सात रोज में व्रण सूख जावे और उसी के पत्ते को ६ छः मासे मिश्री के साथ षा[खा]वै तो इक्कीस दिन के परंत, सुजाक वै फिर कभी नहीं होवै ॥१५॥

१६ **तथा द्वितीय**—नीबु को लेकर दो फांक बना उनमें चावल [भर] फिटकड़ी पीस कै भर रात को ओस में रख दे और सात दिन
२५ तक चूसने में सुजाक जाता रहै ॥१६॥

१७ **प्रमेह का औषध**—बंबूल की फली पत्ती गोंद छाल और गूदा सब चीज बराबर ले पीस कर पूर्व रख ले फिर बराबर की मिश्री के साथ मिला कर तोले १) तोले भर खा ऊपर से ऽ॥ आध सेर दूध में ऽ॥ आध सेर जल और सक्कर मिला पीवै तो
३० अठारह प्रकार का प्रमेह जाय ॥१७॥

१८ **पुनस्तथा**—गुलखैर के फूल को पीस सहत मिलाय पानी में

छान ठंडाई बना ४१ दिनतक पीवै तो वीर्य पुष्ट हो जाय।१८।

१६ **रक्तविकार की औषधी**—दो पैसे भर महंदी और मधु मिला पीस के खावै और यत्न से भोजन ऐसी चीजों [का] न करे कि जिनसे रुधिर न वधे, तथा चने की रोटी अरहर की दाल चावल आदि खावै और · ··· ···सेवन करे तो रक्त विकार ५ जाय ॥१६॥

२० **उन्माद की औषधी**—दो पैसे भर मुलहटी को सहत में मिला के ७ दिन खाय और दाल चावल कढ़ी आदि खावै तो उन्माद जाता रहै ॥२०॥

२१ **उपदंश की औषधी**—आंवले दूध वा सहत के साथ १) तोले १० भर खावै तो उपदंश जाय ॥२१॥

२२ **जीर्ण ज्वर की औषधी**—खूबकला १) तोला भर रात को पानी में भिगो दे प्रातःकाल मिश्री के साथ सर्वत बना कर पीवै और घी न खाय और घी की जगह वादाम का रोगन खावै तो २१ दिन में जीर्ण ज्वर जाय, परन्तु वासा पानी में न्हाता रहै १५ ॥२२॥

२३ **पुष्टिकार औषध**—ऽ१ सेर भर पियाज के छिलके उतार छोटे-छोटे टुकड़े कर कोरे बर्तन में सहत के साथ भिगोदे फिर १५ दिन तक भूमि में गाड़ दे, निकाल कर पश्चात् तोले १) भर नित्य खावै तो पुष्टि प्राप्त हो जाय ॥२३॥ २०

२४ **जमींकन्द के बनाने की रीति**—सेर भर जमींकन्द को शुद्ध करकै ऽ=आध पाव अदरख के साथ उबाल मसाले डाल शाक बना ले ॥२४॥

२५ **पेट की शूल की औषधी**—एक एक तोले १) भर पीयाज का रस अधरख का रस और सहत इन तीनों को मिला कर दिन में २५ तीन समय पीवै तो शूल रोग जाय ॥२५॥

२६ **पसली के दरद की औषध**—पुराना महुवा ऽ। पाव भर ले कूट कपड़े में बांध दो घड़ी के पश्चात् पुनः उसी की रोटी बना के ४ प्रहर बंधा रहने दे तो पसली की पीड़ा जाय ॥२६॥

२७ **[तथा]**—सांभर का सींग घिस कर पसली पर लगा के कंडे से ३० सेक करै तो पसली का दर्द जाता रहै ॥२७॥

२८ **आंखों का सुरमा**—सुरमे की डली को नीव के वृक्ष में २१ दिन

तक रख दे, पुनः निकाल भंगरे के रस में छोटी इलाईची डाल खूब पीस के रख ले, उस को नेत्रों में लगाने से वर्षों तक की दूखती आंखें शुद्ध हो जाय ॥२८॥

२६ **दांतों का मंजन**—मौलसिरी की छाल पीसकर प्रातःकाल दंतधावन करै और रोज अपामार्ग का भी दन्तधावन करे तो दांत न हिलै ॥२६॥

३० **तथा**—मांजूफल मुलेहटी सफेद कत्था[1] रूमीमंस्तगी नीलाथोथा पांचों चीजां बराबर ले और नीलेथोथे को अंगारों पर खील कर लोहे की कड़ाही में थोड़ा सा जल डाल के बुझा लेवें, पुनः पांचों को पीस और इनके बराबर आक की जड़ की छाल ले कर छवों चीज लोहे की कड़ाई में लोहे के मूसल से पीसे, जब अंजन के बराबर [महीन] हो जाय तब सीसी में ले रखे। जब दातन करै तब अंगुली से मसोढ़ु पर लगा कर थोड़ी देर ठहरैकर पश्चात् कुरला करै, दांत पीड़ा हिलने आदि छूट कर दांत दृढ हो जायें ॥३०॥

३१ **श्याम केशकारक तेल**—पलाश के वृक्ष के नीचे जो बीच की जड़ हो उस को मूसला कहते हैं उसके नीचे खांडा खुदवाकर आधीजड़ काट नीचे खाली जगह में एक वर्तन कली कराया हुआ रख दे ऊपर से ढकना लगा इस प्रमाण छेद बीच में रहने दे कि जिस से मूसल की जड़ ठीक बैठ जाय, पुनः उस के चारों ओर मट्टी चुन कर और ऊपर से मट्टी डाल फिर वृक्षों के चारों ओर कंडों की आंच लगादे। जितना अर्क उस पात्र में निकल आवे, उतना ही सरसों का कड़वा तेल मिला के कढ़ाई में औटावै जब तेल आधा रह जाय तब कढ़ाई को उतार कर उस में माजूफल एक १ मासे भर, १) तोले भर लोहे का रेतन और १ मासे भर नीलाथोथा, ये सब चीजें पीसकर तेल में मिलाय सीसे में भर के रख दे फिर उस को रात के समय बालों के लगा ऊपर से पान लपैट कै सो जावैं तो प्रातःकाल तक श्याम केश हो जांय ॥३१॥

---

१. इस दन्तमञ्जन का निर्देश पूर्ण संख्या ५६८ के पत्र में पृष्ठ ६०६ पर भी है। वहां 'पपरिया' कत्था लिखा है।

३२ **तृतीय[क] ज्वर की औषधी**—६ मासे भर फटकड़ी गर्म जल में जब दो (दूसरी ?) पारी का समय आवै तब पीसकर पी जाय और पारीतक भोजन न करै तो तृतीय[क] ज्वर जाय ॥३२॥

३३ **दाद की औषधी**—गंधक राई राल कच्चा तेलीया सुहागा ये चारों चीज बराबर लेकर पृथक् पृथक् पीसकर चारों को मिला खरल में प्रहर १२ खरल कर्के जब एकजी हो जांय तब बेर के समान गोली करकै सुखा ले। फिर गोली को चिकने पत्थर पर पानी में घिस के दाद को खुजला कर लगादे तो दाद बिलकुल जाता रहै ॥३३॥

३४ **बीछू की ओषधी**—जब किसी को बीछू काटे तब लून को पीस १ पात्र में रख दें और दूसरे पात्र में जल रखे। अंगुली के अग्र भाग से जल स्पर्श करके उस से पीसा हुआ लून लगा के जहां बीछू काटा हो उस पर फोरे फोरे हाथ से मले। पुनः इसी प्रकार बार बार करने से थोड़ी ही देर में बीछू झट उतर जाता है। जब डंक पर कुछ जलता रहता है उस पर दो पैसे भर लून को थोड़े से जल में घोल के उस में रूई भिजो के डंक पर बांध देवे तो नींद आ जायेगी[1]। और डंक पर से भी पीड़ा मिट जायेगी ॥३४॥

—:०:—

[पूर्ण संख्या ९३८] **पत्र**

ओ३म्

मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो[2]।

एक भूमिका का पृष्ठ[3] और **३२० से लेके ३४४ तक[4] तौरेत**

---

१. यहां से आगे का लेख श्री स्वामी जी ने स्वहस्त से लिखा है और ३४वीं ओषधी के पाठ को स्वहस्त से शोधा है। यह ओषधी-पत्र म० मामराजजी से प्राप्त हुआ। मूल पत्र उन के संग्रह में सुरक्षित है।

२. आर्यधर्मेन्द्रजीवन से लिया। मूल पत्र परोपकारिणी सभा अजमेर में होगा।

३. अर्थात् तेरहवें समुल्लास की अनुभूमिका का पृष्ठ।

४. यहां तक तेरहवां समुल्लास पूरा हो जाता है।

और जबूर का विषय सत्यार्थप्रकाश का भेजते हैं। सम्भाल लेना। **आश्विन बदी ८ सोमवार सम्वत् १९४० को संस्कारविधि के पृष्ठ १ से लेके ४७ तक भेजे हैं**[१] पहुंचे होंगे और पहुंचने पर रसीद भेज देना। बाकी तुम्हारे पत्रों के उत्तर वा समाचार पश्चात् लिखेंगे।

५ मिति आश्विन (वदी) १३ शनि सम्वत् १९४०[२]।

दयानन्द सरस्वती
जोधपुर राज मारवाड़

—:o:—

[पूर्ण संख्या ९३९] **पारसल-सूचना**

[मुंशी समर्थदान, प्रयाग]

१० सत्यार्थप्रकाश १ पृष्ठ भूमिका, पृष्ठ ३२० से लेके ३४४। तक आश्विन वदी १३ शनि सं० १९४० [२९ सितम्बर १८८३][३]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ९४०] **पत्र**

ओ३म्

श्रीयुत रावराजा तेजसिंह जी आनन्दित रहो।[४]

१५ अब तक सवारी का आपने क्या प्रबन्ध किया? इसका हाल मैंने अब तक कुछ नहीं पाया। यदि आपसे डाक का बन्दोबस्त न हो सके तो चार सवारी और बढ़ा देनी होंगी। दो साढ़िये[५], एक

---

१. देखो पूर्ण संख्या, ९२७ का पत्र।

२. २९ सितम्बर १८८३।

२० ३. इसका निर्देश पूर्ण संख्या ९३८, पृष्ठ ९५३ में है।

४. मूल पत्र रावराजा तेजसिंह के पास जोधपुर में था।

५. अर्थात् सांडनियां। सांडनियां एक दिन में विना रुके ६० कोश तक यात्रा करती थीं। शीघ्रगामी तथा सवारी में सुखदायक होने से सवारी के लिये इन्हीं का प्रयोग होता था। अब अन्य शीघ्रगामी यात्रा साधनों के २५ उपलब्ध हो जाने के कारण संप्रति इन का प्रायः अभाव हो गया है।

सांडनियों के लोप होने के साथ ही उनको बनाने की प्रक्रिया भी लुप्त हो रही है। हम (यु० मी०) ने सांडिनी बनाने की प्रक्रिया सन् १९३५ के आरम्भ में भूतपूर्व इन्दौर राज्य (सम्प्रति मध्यप्रदेश) के नन्दवई ग्राम

बड़ा रथ कि जिसमें मैं अच्छी तरह बैठ के जा सकूं और एक रथ, अथवा हाथी, अथवा जितनी सवारी आती समय थीं, उतनी ही होंगी, तब निर्वाह होगा; क्योंकि आज हरद्वार के पास के दो आदमी और आगए हैं। सब की गिनती यह है।

अर्थात् सब सवारी इस प्रकार से करेंगे तो अच्छा होगा। तीन रथ, एक सेजगाड़ी १, दो ऊंट २, और एक हाथी १, अथवा ४ चौथा रथ, एक पहरा जिसमें छः जवान और सतवां हवलदार और दो सवार। इसी प्रकार का पत्र मैंने आप के पास भेजा था[1]। **और तीन पत्र गत रविवार के दिन जिन को आज सात दिन हुए कमरदान के हाथ भेजे थे वे भी पहुंचे होंगे, जिन में से एक** श्रीमान् जोधपुराधीश, दूसरा महाराजे प्रतापसिंह जी और तीसरा आप के पास। यह इसलिये आप को चिताया था कि आप सहज में प्रबन्ध करलें। और जब मुन्शी दामोदरदास आवे तब इन का प्रबन्ध सब करा दीजिये। और कल ४ बजे सन्ध्या के मेरे पास उपरिलिखित सवारी आदि आ जायें कि जिन को मैं देख लूं, पश्चात् विदित किया जाय। क्योंकि परसों यहां से यात्रा अवश्य होगी। और यह पत्र महाराजे प्रतापसिंहजी को भी सुना दीजिये। अलमतिविस्तरेण माननीयवरेषु॥

मिती आश्विन वदी १३ शनी सं० १९४०।[2]

| दयानन्द सरस्वती
| जोधपुर राज मारवाड़

—:o:—

(चित्तौड़ से ३० मील दूर) में स्वय देखी थी। वह इस प्रकार थी—शीतकाल में नव जवान ऊंटनी को सवा मन घी या तेल पिलाकर हाथ पैर बांधकर मैदान में लिटा देते हैं। ४० दिन तक इसी अवस्था में रखते हैं। खाने पीने को कुछ भी नहीं देते। इस अवस्था में कुछ ऊंटनियां मर जाती हैं, परन्तु जो जीवित रहती हैं उन के रग रग में घी वा तेल पचकर पहुँच जाता है। उससे उनमें अद्भुत शक्ति वा तेजी आ जाती है। यह प्रक्रिया ऊंटनियों पर ही की जाती है। ऊंट पागल हो जाते हैं। अतः उन्हें सांड नहीं बनाया जाता।

१. देखो पूर्ण संख्या ९३६ का पत्र।

२. २९ सितम्बर १८८३।

[पूर्ण संख्या ९४१] पत्रांश

पं० छगनलाल द्विवेदी, मसूदा................
....

आश्विन वदी १३ को वर्षा बहुत [हुई]। इस कारण अभी ८-७
५ दिन नहीं आना होगा। और आने के पहले सूचना की जायगी।[1]
[संभवतः ३० सितम्बर = आश्विन वदी १४]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ९४२] पत्र-सूचना

[कमलनयन, मन्त्री आर्यस० अजमेर][2]
रजिस्ट्री चिट्ठी के विषय में ।
१० १ अक्तूबर १८८३ जोधपुर[3]

दयानन्द सरस्वती

—:o:—

[पूर्ण संख्या ९४३] पत्र-सूचना

[मथुरादास, मियांमीर][4]

—:o:—

[पूर्ण संख्या ९४४] मनिआर्डर फार्मांश[5]

---

१५ १. यह अंश पं० छगनलाल के आश्विन सुदी ४ संवत् १९४० अर्थात् ५ अक्तूबर सन् १८८३ के पत्र में निर्दिष्ट है। पं० छगनलाल का यह पत्र तीसरे भाग में देखें ।

२. देशहितैषी के रजिस्टर से।

३. आश्विन वदी ३० सोम सं० १९४०।

२० ४. इस पत्र की सूचना मथुरादास के विना तिथि के पत्र में है। तिथि का कथंचित् भी ज्ञान न हो सकने के कारण इसे यहां अन्त में जोड़ा है। मथुरादास का पत्र तीसरे भाग के अन्त में देखें।

५. मनिआर्डर फार्म का यह टुकड़ा महाशय मामराजजी ने रायबहादुर पं० सुन्दरलाल जी (पोस्ट मास्टर जनरल) प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय के
२५ पुत्र पं० देवीप्रसाद जी दीक्षित आगरे वालों से ता० २५ अप्रैल सन् १९२७ को बड़े यत्न से प्राप्त किया था। इस टुकड़े का ब्लाक-चित्र पं० घासीराम

[ऋषि दयानन्द सरस्वती के अन्तिम हस्ताक्षर¹]

Acknowledgment.

No 307   Date   9/10/   1883

For Rs. 13   As. 6

SIGNATURE OF THE PAYEE   दयानन्द सरस्वती   ५

Date of delivery   ता० ११ अक्तूबर   188[3]

THIS ACKNOWLEDGMENT WILL BESIGNED EIGTHER BY THE PAYEE OR F THE OFFICE OF DELIVERY,' AND WILL BE RETURNED TO THE RECEIPT   १०
FOR MONEY I AID BUT AN   OWLEDGMET
ONEY ORDER OBTAINED THE

—:o:—

[पूर्ण संख्या ९४५]   पत्र-सारांश

[महाराजा जसवन्तसिंह]

²हम आबू जायेंगे।   १५

[जोधपुर, १५ अक्टूबर से पूर्व]

—:o:—

एम. ए. सम्पादित ऋषि के जीवनचरित में लगवा दिया गया था। इस संग्रह में भी अन्य पत्रों की प्रतिकृतियों के साथ दे रहे हैं।

१. ऋषि के उपर्युक्त हस्ताक्षर जिस मनिआर्डर फार्म के टुकड़े पर हैं वह मनिआर्डर उनके शिष्य स्वामी ईश्वरानन्द सरस्वती ने नगर पानीपत   २०
से पुस्तकों के लिए जोधपुर भेजा था। इस निर्देश स्वामी ईश्वरानन्द के आश्विन वदी १४ [१९४०] रविवार के पत्र में है। स्वा० ईश्वरानन्द का पत्र तीसरे भाग में देखें।

२. द्र० —पं० लेखरामजी कृत जीवन चरित, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ९१७।   २५

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-वैदिकधर्मपुनःसंस्थापक-वेदो-
द्धारक-आर्ष-ग्रन्थप्रचारक-नवभारतनिर्मातॄणां परमराजनीतिज्ञ-
सहिष्णुप्रवर-श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनां प्रशिष्येण
श्रीयोगि-लक्ष्मणानन्दस्वामिनां शिष्येण
५ अमृतसरवास्तव्यश्रीचन्दनलालात्मजेन
इतिहासविदा भगवद्दत्तेन
खतौलीनिवासिस्वीयशिष्य**मामराज**सहायेन संगृह्य
सम्पादितः
[युधिष्ठिरमीमांसकेन परिबृंहितश्च]
१० **ऋषिदयानन्दसरस्वतीपत्रविज्ञापनादिसंग्रहः**
समाप्तः

—:०:—

प्रथम परिशिष्ट

"आर्य-सन्मार्ग-सन्दर्शिनी सभा" कलकत्ता और श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती

[उक्त शीर्षक से पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ६७१—६९९ तक जो अंश छपा है, उसका ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के साथ सीधा कुछ भी सम्बन्ध न होने पर भी हम इसे यहां छाप रहे हैं। इसका कारण यह है कि कलकत्ता के पण्डितों ने उक्त सभा करके ऋ० दयानन्द के कतिपय सिद्धान्तों पर जो निर्णय लिया था उसका उत्तर **आर्यसमाज कलकत्ता** ने दिया था। इसके सम्बन्ध में जी० च० पृष्ठ ६७२ पर लिखा है—**समस्त उत्तर और प्रश्न उनके उन प्रत्युत्तरों सहित जो आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द जी की ओर से दिये गये थे। पाठकों की भेंट करते हैं।** इससे विदित होता है कि ये उत्तर ऋ० दयानन्द के लिखे हुये हैं। इतना ही नहीं, उक्त प्रश्नों के जो उत्तर दिये गये हैं वे अत्यन्त प्रौढ़ हैं। जहां तक हम जानते हैं उस समय कलकत्ता में कोई ऐसा स्वामी जी का अनुयायी विद्वान् नहीं था, जो ऐसे प्रौढ़ उत्तर दे सके। इस से अनेक शास्त्रीय विषयों पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। इसीलिये हम इन्हें यहां सबसे अन्त में छाप रहे हैं।

जनवरी १८८१ में ऋ० द० आगरा में थे। वहां वे १० मार्च १८८१ तक रहे। इस अवसर में ऋ० द० ने कलकत्ते की सभा में किये गये आक्षेपों का उत्तर नहीं दिया था। ३१ मार्च १८८१ को जयपुर से ऋ० द० कृपाराम स्वामी को लिखते हैं—'**कलकत्ते की सभा आदि के साथ हमको लिखने छपवाने का अवकाश नहीं। वेदभाष्य का काम बहुत है तुम को अवकाश हो तो लिखो छपवाओ**' (द्र०—पूर्ण संख्या ५६८, भाग २ पृष्ठ ६०५)। अतः सम्भव है ऋ० द० ने ३१ मार्च के पश्चात् कलकत्ता की सभा में किये गये आक्षेपों के उत्तर लिखकर आर्यसमाज कलकत्ता को भेजे होंगे।

आगे हम पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ६७१—६९९ तक का पूरा पाठ उद्धृत करते हैं। यहां हमने पण्डितों की सभा से संबद्ध अंश **काले मोनो** टाईप में छापा है। सम्पा०]

२२ जनवरी सन् १८८१ रविवार को शाम के समय सीनेट हाल, राज-

धानी —कलकत्ता में वहां के बड़े-बड़े रईसों और प्रसिद्ध पण्डितों ने एकत्रित होकर यह सभा[1] स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की कार्यवाहियों के विरुद्ध निर्णय देने के अभिप्राय से आयोजित की थी।

समाचारपत्र "सार सुधानिधि" में लिखा है कि इस सभा के ५ प्रबन्धक कालिज के प्रिंसिपल पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न थे। इसी सभा में पंडित तारानाथ तर्कवाचस्पति, जीवानन्द विद्यासागर बी० ए० और नवद्वीप के पंडित भुवनचन्द्र तर्करत्न और जैसोर के रामधन, कानपुर के पंडित बांके बिहारी वाजपेयी, पंडित जमना नारायन तिवाड़ी, वृन्दावन के सुदर्शनाचार्य और तञ्जौर प्रदेश के कोड़म ताल्लुक के त्रिदोष-नललोरो ग्राम, मद्रास १० प्रेजीडेन्सी के पंडित रामसुब्रह्मण्य शास्त्री (जिनको राम सोबा शास्त्री भी कहते हैं) आदि तीन-सौ ऐसे ही पंडित सुशोभित थे। इनके अतिरिक्त रईसों में वहां के प्रसिद्ध जमींदार आनरेबल महाराजा जितेन्द्रमोहन ठाकुर सी० ऐस० आई, महाराजा कमलकृष्ण बहादुर, राजा सुरेन्द्र मोहन ठाकुर, डाक्टर सी० ऐस० आई, राजा राजेन्द्र लाल मलिक, बाबू जयकिशन १५ मुख्योपाध्याय, कुमार देवेन्द्र मलिक, बाबू चारुचन्द्र मलिक, आनरेबल बाबू कृष्णदास पाल, लाला नारायणदास मथुरा निवासी, राय बद्रीदास-बहादरनिवासी, सेठ जुगल किशोर जी सेठ नाहर मल, सेठ हंसराज आदि कलकत्ता निवासी, रईस उपस्थित थे। यद्यपि पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और बाबू राजेन्द्रलाल साहब मित्र एल० एल० डी०—यह दोनों सज्जन २० इस बड़ी सभा में न पधारे तथापि इन सज्जनों ने सभा की कार्यवाही को हृदय से स्वीकार किया।

"हिन्दू पैट्रियट" (Hindu Patriot) में लिखा है कि गत शनिवार को यहां के सीनेट-हाउस में बंगाल के पण्डितों की एक सभा हुई थी। लगभग पांच सौ मनुष्य एकत्रित थे जिनमें अनुमानतः तीन सौ पण्डित २५ होंगे। इस सभा में सब मनुष्य कुर्सियों पर बैठे थे मथुरा के सेठ नारायनदास के प्रयत्न से यह सभा वेद के कई विषयों में सन्देह-निवारण के लिये की गयी थी। मद्रास के एक राम सोबा शास्त्री ने कहा कि पण्डित दयानन्द सरस्वती ने वेदों के विषयों में जो मत दिया है उससे दक्षिण और दूसरे देश के लोगों को बहुत सन्देह होता है और उस विषय में बंगाल के प्रधान

---

३० १. इस सभा का उल्लेख पूर्ण संख्या ५६८ (पृष्ठ ६०५) के पत्र में है।

पण्डितों की सम्मति लेने के लिये वह कलकत्ता आये हैं।''

जिस समय उपर्युक्त समस्त सज्जन सीनेट हाल में एकत्रित हो गये तब पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न ने इस सभा के स्थापित करने का विशेष उद्देश्य वर्णन करके निम्नलिखित प्रश्न उपस्थित किये थे। वे प्रश्न तथा उक्त सभा में उनके निर्णीत समाधान इस प्रकार हैं— ५

१. ब्राह्मणभाग भी वेद के मन्त्रभाग और संहिता भाग के समान मानने के योग्य है या नहीं और मनुस्मृति के समान दूसरी स्मृतियां भी मानने योग्य हैं अथवा नहीं। इसके उत्तर में निश्चय हुआ कि दोनों माननीय हैं।

२. विष्णु, शिव, दुर्गा का पूजन, श्राद्धविधि और तीर्थयात्रा शास्त्रोक्त हैं अथवा नहीं ? निश्चय हुआ कि—हां, यह सब शास्त्रोक्त हैं। १०

३. ऋग्वेद सहिता में ''अग्निमीडे पुरोहितं'' आदि-आदि मन्त्र हैं। इसमें आये 'अग्नि' शब्द से अग्नि अथवा ईश्वर किसको समझना चाहिये ? निश्चय हुआ कि 'अग्नि' (आग)।

४. यज्ञ वायु और जल की शुद्धि के लिये किया जाता है अथवा मुक्ति के लिये ? निश्चय हुआ कि मुक्ति के लिये। १५

संस्कृत और बंगला दोनों भाषाओं में तर्क-वितर्क होता रहा। प्रश्नों के उत्तर सब लिख लिये गये थे और उन पर सब पण्डितों की सही(हस्ताक्षर) हुई थी। पण्डित लोगों को बधाई भी मिली थी। (''हिन्दू पेट्रियट'' से) ''भारतमित्र'' २७ जनवरी सन् १८८१।

अब हम समस्त उत्तर और प्रश्न उनके उन प्रत्युत्तरों सहित, जो २० आर्य्यसमाज और स्वामी दयानन्द जी की ओर से दिये गये—पाठकों की भेंट करते हैं। इसी में राजा शिवप्रसाद के आक्षेपों का खण्डन भी विद्यमान है।

प्रथम प्रश्न—पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न जी ने प्रथम प्रश्न यह किया कि वेद का संहिता भाग जैसा (प्रामाणिक) माना जाता है, ब्राह्मणभाग भी वैसा ही (प्रामाणिक) मानने के योग्य है या नहीं ? और मनुस्मृति धर्मशास्त्र २५ के समान और स्मृतियां भी स्वीकार करने के योग्य हैं या नहीं ?

उत्तर—इसका उत्तर पण्डित राम सुब्रह्मण्य शास्त्री ने यह दिया कि यजुर्वेद संहिता में लिखा है- ''यत्किंचिन्मनुरब्रवीत्तद् भेषजं भेषजतायाः[1]'' अर्थात् जो कुछ मनु ने कहा सब स्वीकार करने के योग्य है। इस

१. द्र०—ताण्डच ब्रा० २३।१६।७॥ तै० सं० २।२।१०॥ मै० सं० ३०

वेद के वचन से समस्त मनुस्मृति स्वीकार करने के योग्य है और यदि मनुस्मृति का (केवल) कोई एक (ही) भाग (प्रामाणिक) माना जाये तो उस मन्त्र में, जो 'यत् किंचित्' शब्द आया है जिसका अर्थ 'जो कुछ भी' है, वह व्यर्थ हो जाता है; इसलिये समस्त मनुस्मृति को (प्रामाणिक) मानना योग्य है। यदि मनुस्मृति को स्वीकार न किया जावे तो वह वेद भी, कि जिसमें मनुस्मृति का मानना एक आवश्यक बात लिखी है—मानने के योग्य नहीं रहता। इसलिये वेदसंहिता को (प्रामाणिक) माननेवाले के मत में मनुस्मृति को (प्रामाणिक) न मानना संहिता के मत से विपरीत ठहरना है। दयानन्द सरस्वती ने भी मनु को (प्रामाणिक) मानकर ही अपनी पुस्तक 'सत्यार्थ-प्रकाश' के पृष्ठ ३ में ये शब्द लिखे हैं—"प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि" इत्यादि। इसीलिये स्वामीजी का मनुस्मृति को मानना स्पष्टतया प्रकट है।

अब देखिये मनुस्मृति के अध्याय ६ में लिखा है कि:—

"एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन्।
विविधाश्चौपनिषदोरात्मसंसिद्धये श्रुतीः॥"

इस श्लोक के अनुसार, ब्राह्मण भाग के अतिरिक्त उपनिषद् भाग का भी, वेद के समान (प्रामाणिक) होना और स्वीकार किया जाना सिद्ध है। यजुर्वेद आरण्यक के प्रथम अध्याय के दूसरे भाग में लिखा है, कि:—स्मृतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम्। एतैरादित्यमंडलं सर्वैरेव विधास्यते" इस वचन के अनुसार श्रुति के समान सब स्मृतियां भी (प्रामाणिक) मानने योग्य सिद्ध होती हैं क्योंकि "विधास्यते" शब्द के अर्थ "प्रमीयते" के हैं अर्थात् जिससे ठीक-ठीक ज्ञान उत्पन्न हो और यही अर्थ भाष्यकार ने भी लिखे हैं और पंडित तारानाथ वाचस्पति ने भी ऐसा ही लिखा है:—"वेदोखिलो धर्ममूलम् स्मृतिशीले च तद्विदाम्" अर्थात् वेद धर्म की जड़ हैं और स्मृति भी वैसी ही हैं। मनु के इस वचन के अनुसार भी सब स्मृतियां मानने योग्य सिद्ध होती हैं। इसी प्रकार बहुत-सी युक्तियों से यह बात सिद्ध होती है कि संहिता के समान ब्राह्मण भाग और मनुस्मृति के समान

२।१।६॥ काठक सं० ११।५॥ इस वचन में स्मृत मनु प्रकरणानुसार वैवस्वत मनु है, न कि स्मृतिकार स्वायंभुव मनु। शङ्कराचार्य से लेकर स्वामी दयानन्द पर्यन्त सभी आचार्य उपर्युक्त वचन को स्वायम्भुव मनु विषयक मानकर मनुस्मृति के प्रामाण्य के लिये इसे उद्धृत करते हैं।

विष्णु, याज्ञवल्क्य आदि समस्त स्मृतियां मानने के योग्य हैं और यही सब पंडितों की इकट्ठी सम्मति है।

आर्यसमाज की ओर से प्रत्युत्तर—प्रथम हमारी अन्वेषिणी सभा में यह प्रमाण उपस्थित हुआ: **"यत्किंचिन्मनुरब्रवीत्तद् भेषजं भेषजतायाः"** अर्थात् जो कुछ मनु ने कहा सब स्वीकार करने के ५ योग्य है। यद्यपि जो बात इस वचन से सिद्ध होती है उस पर हमें कोई आक्षेप नहीं है परन्तु जो इसको **यजुर्वेद संहिता का वचन बताया गया है यह बात सर्वथा अशुद्ध है।** यह वचन यजुर्वेद संहिता के चालीसों अध्यायों में कहीं नहीं है। कदाचित् यही कारण है कि इसका पता ठिकाना नहीं दिया गया। मनुस्मृति में १० जो वेदों का बार-बार वर्णन आया है और उनके पढ़ने-पढ़ाने की प्रेरणा की गयी है उससे स्पष्ट प्रकट है कि **वेद मनु जी के काल से पहले विद्यमान थे। फिर समझ में नहीं आता कि किस विचार और किस अभिप्राय से उक्त वचन यजुर्वेद संहिता का वर्णन किया गया है। वेदों में मनुस्मृति की चर्चा आने की क्या आवश्यकता** १५ **थी?** क्या वेद अपने आप में अधूरे थे कि उनकी पूर्ति मनु जी पर छोड़ी गयी थी। आश्चर्य तो यह है कि हमारी 'अन्वेषिणी' सभा में से किसी ने चूं तक नहीं की और पंडित राम सुब्रह्मण्य शास्त्री जी मद्रासी का कहना बिना विवाद स्वीकार कर लिया गया। हमारी भोली सभा कदाचित् इस बात से अपरिचित है कि ऐसे २० मिथ्या कथन से स्वामी दयानन्द सरस्वती के उपदेशों का खंडन नहीं होता प्रत्युत उनको और बल प्राप्त होता है। **वास्तव में उक्त वचन सामब्राह्मण का** है जिसमें यह जताया है कि कर्मकांड के विषय में जो कुछ मनु जी ने कहा है वह औषधि की भी औषधि है। भला यदि वह ब्राह्मण ही का वचन कहा जाता तो इसमें २५ क्या बुराई थी। तर्क का तर्क था और सत्य का सत्य। वास्तव में **मनु जी ने जो कुछ कहा है उसको तो हम स्वीकार करते हैं परन्तु जो बातें मनुस्मृति में मनु जी के पश्चात् स्वार्थी लोगों की ओर से मिला दी गयीं हैं उनको प्रामाणिक मानने में, तो निस्सन्देह** हमको आपत्ति है। जो व्यक्ति मनुस्मृति को ध्यान से पढ़ेगा उसे विश्वास ३० हो जायेगा कि उसमें ऐसी बातें बहुत पायी जाती हैं। कुछ स्थानों पर तो परस्पर विरोध की सी अवस्था उत्पन्न हो गयी है। उनका

कुछ वर्णन आगे चलकर किया जायेगा।

वेद का संहिता भाग जैसा (प्रामाणिक) माना जाता है, ब्राह्मण-भाग भी वैसा ही मानने के योग्य है या नहीं ? यह प्रश्न अशुद्धरूप में रखा गया है—इसमें एक दार्शनिक भूल है, जिससे शास्त्रार्थ का
५ वास्तविक विषय सर्वथा नष्ट हो जाता है अथवा कोई शास्त्रार्थ का विषय निश्चित ही नहीं होता। यदि ब्राह्मण वेद का भाग है तो कोई कारण नहीं कि वह संहिता के समान प्रामाणिक न माना जाय। दोनों पक्षों में विवाद का विषय तो वास्तव में यह है कि जैसे संहिता वेद मानी जाती है वैसे ही ब्राह्मण भी (वेद) मानने
१० के योग्य है या नहीं ? इसलिये अच्छा होता यदि यह प्रश्न इस रूप में रखा जाता कि ब्राह्मणग्रन्थ भी 'संहिता भाग' के समान ही वेद हैं या नहीं; या जैसी संहिता (स्वत:प्रमाण) मानी जाती हैं वैसे ही ब्राह्मण (ग्रन्थ भी स्वत:प्रमाण) स्वीकार करने योग्य हैं या नहीं ? यह प्रश्न बड़ा आवश्यक है और इसके विषय में आजकल
१५ बहुत कुछ चर्चा हो रही है। इधर तो स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ब्राह्मणों को वेद का भाग नहीं मानते; उधर राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने स्वामी जी के खण्डन में एक पुस्तिका लिख मारी है। हमारे देश के पण्डित कुछ और ही गीत गा रहे हैं। कुछ लोग (ऐसे भी हैं जो) न संहिता को मानते हैं और न 'ब्राह्मण-ग्रन्थों'
२० को मानते हैं, यों ही विवादग्रस्त विषय में हस्तक्षेप कर रहे हैं। कुछ ने स्वामी जी की निन्दा करना ही अपना ध्येय बना रखा है कि कदाचित् इसी से परलोक सुधरे। हमारी सम्मति में इस प्रश्न के निर्णय से वेदमत के माननेवालों के बहुत से विवाद दूर हो सकते हैं। उचित यह है कि राजा शिवप्रसाद साहब को भी 'आर्य्य
२५ सन्मार्ग सन्दर्शिनी' सभा के पंडितों या उस सभा की रईसों की शाखा में सम्मिलित समझा जाये और फिर सबका उत्तर सामूहिक रूप में दिया जाये। राजा शिवप्रसाद जी ने इस बात को सिद्ध करने के लिये कि ब्राह्मण वेद का भाग हैं—पूर्वमीमांसा के दो सूत्र उपस्थित किये हैं और उनका समर्थन पंडित विशुद्धानन्द
३० जी बनारसी और डाक्टर टीबू साहब ने किया है। इसलिये आवश्यक है कि इस बात पर विस्तारपूर्वक विचार किया जाये। प्रथम हम इस विचार को उन्हीं सूत्रों से आरम्भ करते हैं। वह सूत्र यह हैं

तच्चोदकेषु मंत्राख्या। शेषे ब्राह्मणशब्दः। **इनका अर्थ** यह वर्णन किया गया है कि वेद का मन्त्रों से शेष जो भाग है वह ब्राह्मण है। परन्तु खेद है कि राजा साहब ने पहले और पीछे के सूत्र सर्वथा छोड़ दिये हैं; बीच में से दो सूत्र ले लिये हैं। प्रतीत होता है कि उनका प्रकट प्रयोजन एक व्यक्ति का खंडन था, कुछ सत्य की खोज अभीष्ट न थी। यदि पूर्वापर के प्रसंग को देखकर शास्त्रार्थ के रूप में विचार करते तो निस्सन्देह यह एक महत्त्वपूर्ण बात होती और उससे साधारणरूप से पढ़ने वाले पर भी कुछ वास्तविकता प्रकट हो सकती थी। वास्तव में इन दो सूत्रों से राजा साहब का अभिप्राय सिद्ध नहीं होता क्योंकि इनमें वेद शब्द या उसका समानार्थक कोई और शब्द नहीं आया है; यही नहीं, यदि वह अगले पिछले सूत्रों को ध्यान से देखते तो इन दो सूत्रों का प्रमाण देने का कदापि साहस न करते। हम जैमिनीजी की पूर्वमीमांसा के दूसरे अध्याय के प्रथमपाद के ३० से लेकर ३७ सूत्रों तक (और इन्हीं में वह दो सूत्र हैं) नीचे देकर उनकी व्याख्या करते हैं जिससे स्पष्ट सिद्ध हो जायेगा कि आपका ब्राह्मण ग्रन्थ वेद का भाग नहीं है। वे सूत्र ये हैं:

"विधिमंत्रयोरैकार्थ्यमैकशब्द्यात्" ॥३०॥ **"अपि वा प्रयोगसामर्थ्यान्मन्त्रोऽभिधानवाची स्यात्"** ॥३१॥ **"तच्चोदकेषु मंत्राख्या"** ॥३२॥ **"शेषे ब्राह्मणशब्दः"** ॥३३॥ **"अनाम्नातेष्वमन्त्रत्वमाम्नातेषु हि विभागः"** ॥३४॥ **"तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था"** ॥३५॥ **"गीतिषु सामाख्या"** ॥३६॥ **"शेषे यजुः शब्दः"** ॥३७॥

प्रथम सूत्र (३०) का यह अर्थ है कि विधि (अर्थात् ब्राह्मण) और मन्त्र (अर्थात् संहिता) इन दोनों का क्या एक ही अर्थ है क्योंकि दोनों में एक ही प्रकार के शब्द आते हैं मानो इन दोनों में कुछ भेद नहीं। यह (प्रश्नात्मक) कथन आक्षेपकर्ता का है? **दूसरे सूत्र** (३१) में जैमिनी जी इसका उत्तर देते हैं कि **ऐसा नहीं** (अर्थात् मन्त्र और विधि एक नहीं) है; अपितु मन्त्र प्रयोग शक्ति से निरपेक्ष के कर्म का वर्णन करता है और उससे **अगले सूत्र** (३२) में मन्त्र की परिभाषा व्याख्या के रूप में लिखी है अर्थात् मन्त्र वह है जो मनुष्य के मन में किसी वस्तु या कार्य का निरपेक्ष ज्ञान उत्पन्न करता है। फिर आगे चौथे सूत्र (३३) "शेषे ब्राह्मणशब्दः"

में 'ब्राह्मण' [ग्रन्थ] की परिभाषा लिखी है और यह पहले सूत्र [३०] के आगे है; इसमें विधि शब्द आया है। इन सूत्रों में यद्यपि अबतक वेद का शब्द नहीं आया है परन्तु विषय तथा शब्दों से यह सिद्ध होता है कि चूंकि मन्त्रों अर्थात् संहिता में निरपेक्ष और सृष्टि की
५ दशा का शुद्ध वर्णन है इसलिये संहिता ही वेद है और वेद का अर्थ भी निरपेक्ष ज्ञान है।

विधि का अर्थ ब्राह्मण - शेष रहा विधि शब्द, सो यह ब्राह्मणों पर लागू होता है और उनमें मन्त्रों के अर्थ; तथा विधि निषेध सम्बन्धी आज्ञाएं और ऐतिहासिक घटनायें आदि टीका के रूप में
१० लिखी हैं। यह बात उनकी रचना, क्रम और विषयों से प्रकट है। प्रत्युत जब 'ब्राह्मण' शब्द की वास्तविकता पर विचार किया जाता है तो भी वही परिणाम उत्पन्न होता है अर्थात् ब्राह्मण शब्द ब्रह्म का बताने वाला है और **ब्रह्म का अर्थ वेद** (या परमात्मा आदि) के हैं और जो ब्रह्म अर्थात् वेद को जानता है या जिससे वेद
१५ जाना जाता है या **जिसमें वेद के सिद्धान्तों की व्याख्या है उसको ब्राह्मण कहते हैं।** वेद के आदिभाष्यकार "ब्रह्मवादी" कहलाते थे और उन्हीं के नाम पर उनके भाष्यों का नाम ब्राह्मण रखा गया और यह नाम वास्तव में उचित है। इनके अतिरिक्त 'ब्राह्मण' का अर्थ ब्राह्मणों के समूह के भी हैं। **पहले यह प्रथा थी कि जब कोई**
२० **धार्मिक या वैधानिक पुस्तक लिखी जाती थी या कोई विशेष टीका की जाती थी अथवा उसमें कोई सुधार या परिवर्तन किया जाता था तो वह विद्वानों की किसी सभा में उपस्थित करके वादविवाद के पश्चात् स्वीकृत होता** था और यह प्रथा अब भी प्रचलित है जैसा कि श्री महाराजा साहब जम्मू व कश्मीर ने जो
२५ धर्मशास्त्र बनाया है वह बहुत से पंडितों की सम्मति लेने के पश्चात् प्रकाशित किया गया है। इसी प्रकार आश्चर्य नहीं कि ब्राह्मण ग्रन्थ भी प्रामाणिक ब्राह्मणों के समूह या सभा में स्वीकृत होकर प्रकाशित किये गये हों और ब्राह्मणों के नाम से प्रसिद्ध हुए हों और प्रकट रूप में यह भी एक कारण है कि वह अब तक
३० प्रामाणिक चले आते हैं और उनका आदर-सम्मान वेदों के समान होता है; यहां तक कि सर्वसाधारण जनता में वह वेद का भाग समझे जाते हैं अन्यथा यह बात अनुमान में नहीं आती कि ब्रह्म

[वेद] का एक भाग संहिता और दूसरा भाग ब्राह्मण हो। ऐसा विभाजन शाब्दिक और आर्थिक दृष्टि से अनुचित प्रतीत होता है। इसलिये ऐसी अवस्था में ब्राह्मण शब्द के कोष में दिये हुए युक्तियुक्त अर्थों को छोड़कर जो उसको वेद के भाग पर लागू किया जाता है इसके लिए कोई अत्यन्त दृढ़ कारण होना चाहिये और ५ वह नहीं है।

'आम्नाय' तथा विभाग' शब्द की व्याख्या—अब आगे चलिये **"अनाम्नातेष्वमन्त्रत्वमाम्नातेषु हि विभागः"** [सूत्र ३४] अर्थात् जो कुछ वैदिक नहीं वह मन्त्र नहीं; क्योंकि जो कुछ वैदिक है उस में विभाग हैं। इस सूत्र में दो शब्द व्याख्या करने के योग्य हैं १० **"आम्नातेषु"** जो दूसरे शब्द **'आम्नाय'** से बताया गया है, आम्नाय का अर्थ है वेद। और दूसरा **'विभागः'** जिसका अर्थ विभाजन है। अब यदि सूत्र के प्रथम भाग में जो निषेधार्थक शब्द दो स्थानों पर आया है—उसे निकाल दिया जाय तो शेष यह रह जाता है कि **जो कुछ वैदिक है** वह मन्त्र है **अर्थात् मन्त्र ही वेद है।** और यदि इस १५ वाक्य में जो शब्द "आम्नातेषु" आया है उससे अभिप्राय उन शब्दों से लिया जाये जो यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण यज्ञ के समय अवसर के अनुसार बढ़ाते, परिवर्तन करते या निकाल देते हैं तो भी हमारा प्रयोजन नष्ट नहीं होता। **दूसरा वाक्य** जो युक्ति के रूप में प्रयुक्त हुआ है—स्पष्ट रूप से हमारे अर्थ का समर्थक है। पहले २० वाक्य में कहा है कि जो कुछ वैदिक नहीं वह मन्त्र नहीं। **दूसरे में इसका कारण वर्णन किया है कि जो कुछ वैदिक है उसमें विभाग है अर्थात् वैदिक ग्रन्थों का क्रम और विभाग नियत और स्वीकरणीय है,** उसमें अन्य शब्दों के लिये स्थान नहीं और इस विभाग का विस्तार अगले सूत्रों में लिखा है। यदि आक्षेपकर्ता यह कहे कि इस २५ विभाग से अभिप्राय वेदों के दो भागों अर्थात् मन्त्रभाग और ब्राह्मण-भाग से है तो हम पूछते हैं कि सूत्र में ब्राह्मण शब्द या उसका समानार्थक कोई और शब्द कहां है? अपितु ब्राह्मण आदि के जो शब्द यज्ञ के समय अवसर के अनुसार पढ़े जाते हैं—उनको अवैदिक घोषित किया है। इसके अतिरिक्त यदि इस युक्ति को स्वीकार ३० कर लिया जाये तो इस सूत्र का विषय यहीं समाप्त हो जाता है और इसका अगले सूत्रों के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं रहता प्रत्युत

अगले सूत्र व्यर्थ और निरर्थक हो जाते हैं। वास्तविकता यह है कि अगले सत्र भी इसी "विभागः" अर्थात् विभाजन की व्याख्या करते हैं और **"तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था"** इसका अर्थ यह है: — इनमें एक ऋग् है जो अर्थों की व्यवस्था के साथ छन्दों की व्यव-
५ स्था रखता है (और मन्त्र भी है)। इस सूत्र में जो बहुवचन में सर्वनाम "तेषां" (उनमें) आया है वह "आम्नातेषु" शब्द की ओर संकेत है जो पहले सूत्र में लुप्त बहुवचन के रूप में प्रयुक्त है। इसके अतिरिक्त कोई और शब्द ऐसा नहीं है जिससे सर्वनाम 'तेषां' का सम्बन्ध जोड़ा जा सके। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि पहले सूत्र के
१० दूसरे भाग में जो वेदों के विभाग का वर्णन आया है उससे अभि-प्राय यही विभाग है जो विवादास्पद सूत्र और अगले सूत्रों में किया गया है और ब्राह्मण शब्द का उससे कुछ सम्बन्ध नहीं। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद की जो परिभाषा की गयी है, वह किसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों पर लागू नहीं होती क्योंकि वह न तो सामूहिक रूप
१५ में छन्दोबद्ध हैं और न मन्त्र हैं। अगले सूत्र में सामवेद की परि-भाषा यह दी गयी है कि **"गीतिषु सामाख्या"** अर्थात् जो उपर्युक्त लक्षण के अतिरिक्त गाया भी जाता है। **"शेषे यजुः शब्दः"** अर्थात् ऋग् और साम के अतिरिक्त यजुर्वेद है। इससे आगे कई सूत्रों तक **निगदों** पर विचार चला गया है जिन को आक्षेपकर्ता चौथा वेद
२० कहता है। वह विचार हमारे वास्तविक प्रयोजन से सम्बन्ध नहीं रखता इसलिये उसकी उपेक्षा की जाती है। केवल इतना कह देना पर्याप्त है कि उससे भी यही सिद्ध होता है कि इन समस्त सूत्रों में वेदों के स्वरूप पर विचार किया गया है। इसलिये उपर्युक्त वर्णन और वचनों की शैली तथा स्वयं ब्राह्मणग्रन्थों के विषयों से स्पष्ट निश्चित होता है, कि ब्राह्मण वेद नहीं प्रत्युत संहिता ही वेद है।
२५ यद्यपि इस विषय में असंख्य प्रमाण विद्यमान हैं परन्तु ढेर में से एक मुट्ठी नमूना अर्थात् जैमिनी जी के प्रमाणों ही पर सन्तोष किया जाता है। आवश्यकतानुसार और प्रमाण फिर उपस्थित किये जायंगे। इन सूत्रों का प्रमाण विशेषतया इसलिये दिया गया
३० है कि राजा शिवप्रसाद साहब सितारये हिन्द ने जो इस वादविवाद के मानो अगुआ हुए हैं—इन्हीं में से दो सूत्रों पर अपने तर्क को आश्रित रखा था और उनके लेख पर बहुत से अपरिचित लोग अब

तक गर्व कर रहे हैं। अभी कुछ दिन पहले एक पौराणिक पंडित चतुर्भुज नामक ने मैडम ब्लेवेटेस्की की **"थियासोफिस्ट"** पत्रिका में एक विज्ञापन छपवाया है जिसमें आपने राजा शिवप्रसाद जी के लेख का प्रमाण देते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के वेदभाष्य को मोल लेने का निषेध किया है। वाह! इस महात्मा को क्या अच्छी सूझी! धन्य है! धन्य है! आप ने तो वेदों को छुपाते-छुपाते वह अवस्था उत्पन्न कर दी कि ईश्वर की शरण! और जब दूसरे व्यक्ति ने प्रकाशन पर कमर बांधी तो यह विरोध! इस प्रकार का विज्ञापन भी आजतक किसी पत्रिका या समाचार-पत्र में छपा नहीं देखा।

अन्य प्रमाण—अन्त में **पूर्वमीमांसा के प्रथम अध्याय** के दूसरे पाद के ३१ से लेकर ५३ तक सूत्र भी अवलोकनीय हैं। इनमें आक्षेपकर्ता ने वेदों अर्थात् संहिता के विषय में बहुत से आक्षेप किये हैं और जैमिनीजी ने उन के उत्तर दिये हैं। इन आक्षेपों में एक यह भी है कि चूंकि मन्त्रों के अर्थ समझ में नहीं आ सकते हैं इसलिये मन्त्र निरर्थक और व्यर्थ हैं। इसका एक उत्तर जैमिनी जी यह देते हैं कि **चूंकि ब्राह्मण ग्रन्थ विद्यमान हैं इसलिये इनके अर्थ भलीभांति समझे जा सकते हैं**। देखो सूत्र ५३ **"विधिशब्दाश्च"**। सारांश यह कि समस्त आक्षेपों और उत्तरों के क्रम से निश्चित होता है कि संहिता ही ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक है और ब्राह्मण-ग्रन्थ उसका व्याख्यान हैं। हां, यह बात अवश्य है कि ब्राह्मणग्रन्थ भी प्रामाणिक और आदर के योग्य हैं; परन्तु वहीं तक जहांतक उनका मन्त्रों से विरोध न हो। इसका निर्णय भी जैमिनी जी ने ही कर दिया है—

"मन्त्रस्तु विरोधे स्यात् प्रयोगरूपसामर्थ्यात् तस्मादुत्पत्तिदेशः सः।" (पूर्व मीमांसा अध्याय ५, पाद १, सूत्र १६)। इसका अर्थ यह है कि विरोध की अवस्था में मंत्र प्रधान है; क्योंकि मन्त्र अपने आप में प्रमाणित है और इसी से कर्म की पूर्णता होती है; इसलिये वह अर्थात् 'ब्राह्मण' कर्म का प्रकाशित करनेवाला है। इससे स्पष्ट प्रकट है कि मन्त्र को ब्राह्मण पर प्रधानता है अर्थात् मंत्र मुख्य है और ब्राह्मण गौण और मन्त्र विना कर्म प्रयोगरूप सिद्धि नहीं होती। इसी से हमारे आचार्य्यों ने मन्त्र को अन्तरंग और ब्राह्मण

को बहिरंग कहा है। मानो कि एक प्राण है और दूसरा शरीर। एक स्वत:प्रमाण है और दूसरा परत:प्रमाण।

और जो हमारी योग्य सभा ने मनुस्मृति के निम्नलिखित श्लोक का प्रमाण देकर उससे यह सिद्ध करना चाहा है कि ब्राह्मणग्रन्थों ५ का उपनिषद् भाग वेद के समान है—इसमें वह सफल नहीं हुई। "**एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन्। विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतिः।**" इस श्लोक का अर्थ यह है कि वन में रहकर इस दीक्षा तथा अन्य दीक्षा का सेवन करे और आत्मा की शुद्धि तथा मन की पवित्रता के लिये उपनिषदों में जो श्रुति अर्थात् १० वेद के मन्त्र हैं या जो मन्त्र ब्रह्मविद्या से सम्बन्धित हैं—उनका सेवन करे अर्थात् उनको पढ़े और विचारे। यह श्लोक वानप्रस्थाश्रम के विषय में है, इसमें उपनिषद् शब्द विशेषण है और श्रुति शब्द विशेष्य है; अर्थात् इसका अर्थ हुआ—"जो श्रुतियां (वेदमन्त्र) उपनिषदों में आती हैं।" चूंकि वानप्रस्थाश्रम आत्मा १५ की शुद्धि और मोक्ष के लिये धारण किया जाता है और **उपनिषदों में प्रायः इसी उद्देश्य के चुने हुए मन्त्र लिखे हैं**; इसलिये मनुजी ने इन मन्त्रों की ओर विशेष ध्यान दिलाया है।

'**मनुस्मृति के समान अन्य स्मृतियां भी माननीय हैं या नहीं?**—प्रतिष्ठित सभा में इस विषयक दो वचन प्रमाणरूप से स्वीकार २० किये गये और उनमें से एक यह है - **स्मृतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयं एतैरादित्यमण्डलं सर्वैरेव विधास्यते।**"

हे मेरी प्रिय सभा! इसमें कहां लिखा है कि सब स्मृतियां या अमुक-अमुक स्मृति मानने के योग्य हैं। इस वचन में जो स्मृति शब्द आया है उसके अर्थ तो स्मरणशक्ति के हैं और उसको स्मृति-२५ पुस्तकों पर कदापि लागू नहीं किया जा सकता। इस वचन के अर्थ स्पष्ट है अर्थात् स्मृति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य (इतिहास), अनुमान—इन चारों से आदित्यमण्डल के भेद जाने जाते हैं। यदि यहां 'स्मृति' शब्द का अर्थ समस्त स्मृतियां किया जाये तो यह वचन समस्त स्मृति-पुस्तकों से पीछे का बना हुआ ठहरता है परन्तु वास्तव में ३० ऐसा नहीं है, क्यों?

दूसरा वचन मनुस्मृति का है और वह यह है: "वेदोखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।"

हे मेरी अन्वेषिणी सभा ! मनुस्मृति तो आदिस्मृति गिनी जाती है, भला इसमें पीछे की बनी हुई स्मृतियों का वर्णन क्योंकर आ सकता था ? मनुजी ने तो सार्वजनिक शिक्षा के रूप में एक पूर्ण सिद्धांत का वर्णन किया है कि वेद सम्पूर्ण धर्म का मूल है और जो वेद को जानते हैं उनका वचन और कर्म जो वेद की शिक्षा पर ५ आधारित हैं सत्यधर्म का मूल है। अभिप्राय यह है कि समस्त धर्म का आरम्भ वेद से होता है और **जो वेद को जानकर उसकी आज्ञाओं के पालन से अपने मन और मस्तिष्क को उज्ज्वल कर लेते हैं और विद्या तथा आचार का एक जीवित तथा प्रभावशाली उदाहरण हैं— उनकी शिक्षा, वचन और स्वभाव भी धर्म के बोधक** १० **हैं**। जो लोग स्वयं वेद नहीं जान सकते—वह ऐसे लोगों की शिक्षा और संगति से लाभ उठावें।

अब हम दो-एक प्रमाण नमूने के रूप में अपनी ओर से उपस्थित करते हैं ताकि वास्तविक स्थिति और भी अधिक प्रकट हो जाये। प्रथम देखो पूर्वमीमांसा अध्याय पहला, पाद ३, सूत्र ३ १५ —"**विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्**"। इसका अर्थ यह है कि श्रुति के विरुद्ध जो स्मृति हो वह त्याग करने योग्य है और जो अनुकूल हो वह मानी जा सकती है। वास्तव में समस्त स्मृतियों को पूरा-पूरा मानने का कोई मनुष्य दावा नहीं कर सकता क्योंकि इनमें इतने विरोध पाये जाते हैं कि उनका समाधान कठिन है। २० ऐसी अवस्था में यही हो सकता है कि या तो वह पूर्णतया अस्वीकृत किये जायें या जैमिनी जी के इस व्यापक सिद्धान्त पर आचरण किया जाये कि **जो कुछ वेद और बुद्धि के अनुकूल पाया जाये वह माननीय और शेष अमाननीय ठहराया जावे**।

फिर देखो मनु जी क्या कहते हैं— २५

"या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ।।
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ।।"

(अ० १२, श्लोक ९५,९६) ३०

इनका अर्थ यह है कि जो स्मृतियां वेद के विरुद्ध हैं और जो-

जो नवीन और नास्तिक मत है - वह सब निकम्मे और तमोगुण से भरे हैं क्योंकि वेद से बाहर जो वचन है वह मनुष्य का बनाया हुआ और नाशवान् है और इसलिये प्रमाणित और मानने योग्य नहीं हो सकता। इससे प्रकट है कि सभी स्मृतियां पूर्णतया मान-
५ नीय नहीं हो सकतीं। हां, इनका जो वचन वेद पर आधारित हो और जो बुद्धि तथा विवेक के अनुकूल हो, उसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। जैसे "**श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते। तत्र श्रौतं प्रमाणन्तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा।**" अर्थ:—जहां वेद और स्मृति और पुराण इन तीनों में विरोध हो वहां वेद ही प्रमाण
१० माना जाता है और स्मृति और पुराण के विरोध की अवस्था में स्मृति की विशेषता है।

दूसरा प्रश्न:—**पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न ने दूसरा प्रश्न यह किया कि शिव, विष्णु, दुर्गा आदि देवताओं की मूर्तियों की पूजा और मरने के पश्चात् पितरों का श्राद्ध आदि और गंगा और कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों में तथा**
१५ **क्षेत्रों में स्नान और वास शास्त्र के अनुसार उचित है या नहीं ?**

उत्तर—**इसका पण्डित राम सुब्रह्मण्य शास्त्री ने यह उत्तर दिया कि यह सब शास्त्रानुसार वैध हैं। इसकी सिद्धि में ऋग्वेद में यह लिखा है—** "तव श्रियै मरुतो मार्जयंति रुद्र यत्ते जनि चित्रम्।" **इसके अनुसार शिवलिंग की मूर्त्ति की पूजा स्थापना आदि से पूजन का फल होता है। इस**
२० **का अर्थ यह है—"हे रुद्र ! यत् यस्मात् तव जनि जन्म चारु मनोज्ञं चित्रं च कर्माधीनत्वेन जीवजनिविलक्षणं तस्मात् तव त्वत: श्रियै ऐश्वर्य्यप्राप्तये लिंगरूपं त्वां मरुतो देवाः मार्ज्जयन्ति गंगादितीर्थेऽभिषेचयंतीत्यर्थः। अभिषेचनमस्य लिंगादिरूपप्रतिमायामेव सम्भवात्, लिंगस्य प्रतिसिद्धिः।"**

अर्थात् हे रुद्र ! जब आपका जन्म आपकी इच्छा पर निर्भर है तब
२५ **आपका जन्म और जीव के जन्म से विलक्षण प्रकार का है अर्थात् आप कर्मों के वश नहीं; इसलिये देवता अपने कल्याण के लिये आपके लिंग की स्थापना करके उसका पूजन करते हैं। स्थापना करना बिना लिंगादि रूपों के असम्भव है। इसलिये लिंगादि की मूर्त्ति का पूजना स्वयंसिद्ध हुआ।**

और रामतापनी उपनिषद् में भी साफ-साफ लिखा है कि—"अविभक्ते
३० तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये अहं सन्निहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिव क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद् भक्त्या मन्त्रेणानेन[1] मां शिवं ब्रह्महत्यादि पापे-

---

१. इस सारे प्रकरण में उद्धृत उद्धरणों का पाठ बहुत अशुद्ध है।

भ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।" अर्थात् रामचन्द्र जी शिवजी से कहते हैं कि हम तुम्हारे क्षेत्र अर्थात् काशी में सबकी मुक्ति के लिये पत्थर की मूर्ति में विद्यमान हैं। जो हमारी पूजा पत्थर की मूर्तियों में करते हैं उनको ब्रह्म-हत्या आदि पापों से मुक्त कर देते हैं इसमें कुछ सन्देह न समझो। बृह-ज्जाबाल उपनिषद् के इस वाक्य से भी कि "शिवलिंगसिसन्ध्यमभ्य-चर्येति"। शिवलिंग की पूजा स्पष्ट सिद्ध होती है। ५

और मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में भी "नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्या-द्देवर्षि-पितृ-तर्पणम्। देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च॥" और "देवलस्मृति" में भी लिखा है:—"अस्नात्वा नैव भुञ्जीत ह्यजप्ता-ग्निमपूज्य च। शालिग्रामं हरे चिह्नं प्रत्यहं पूजयेद् द्विजः॥ भास्करं १० गणपञ्चास्मि शंखञ्चैव सरस्वतीम्। महालक्ष्मीं महादुर्गां नित्यं विप्राणामर्चयेत्॥ शालिग्रामशिलातीर्थं पिबेद्यो मनुजोत्तमः। तस्य पापानि नश्यन्ति ब्रह्महत्यादिकानि च॥"

और ऋग्वेद के गृह्य परिशिष्ट में भी लिखा है कि—"गौरी वा गौरीपतिर्वा श्रियः पतिर्वास्कन्दो वा विनायको वा न्यस्ता वा १५ ईज्यंते।"

और वौधायन सूत्र में भी लिखा है—"महादेवं महापुरुषं वार्च-येत्" इत्यादि।

इसीप्रकार और बहुतसी विभिन्न पुस्तकों से सिद्ध होता है कि शिव, विष्णु, दुर्गा आदि की पूजा उचित है और पूजा न करने से पाप होते हैं जैसाकि नीचे २० धर्मशास्त्र का प्रमाण है—यदि विप्रः सनत्सम्ये हे वतार्चनाजाद रात् स याति नरकं घोरं यावदाचन्द्र लाभा। स काशदिविप्रथे प्रायश्चित्तमु-दाहृतम्। ब्रह्म कृच्छ्रं चरेदेव दिनेकसिन् द्विजोत्तमः। पर्ण कृच्छ्रं वर्ष त्यागे उदुम्बरम्। शालिग्रामशिला नास्ति यत्रचैमामृतोद्भवा श्म-शानसदृशं गेहं स विप्रः पंक्तिदूषक॥ यह गौतमस्मृति के श्लोक हैं। इनसे स्पष्ट प्रकट होता है कि जो मूर्तिपूजन न करेगा उसको जबतक कि २५ सूर्य्य, चन्द्र और तारागण स्थित हैं—तब तक नरक में रहना पड़ेगा। उस का प्रायश्चित्त यह है कि यदि एक दिन पूजन न करे तो "ब्रह्मकृच्छ्र" प्रायश्चित्त और यदि एक मास न करे तो "पर्णकृच्छ्र" प्रायश्चित्त करे और यदि वर्ष भर न करे तो "उदुम्बरकृच्छ्र" प्रायश्चित्त। जिसके घर में ३० शालिग्राम की मूर्ति और शंख नहीं हैं वह घर श्मशान के समान हैं। इसके अतिरिक्त शास्त्री जी ने और भी बहुत से प्रमाण उपस्थित किये जो स्थान

पर्याप्त न होने के कारण छोड़ दिये जाते हैं।

फिर यह कहा कि यदि स्वामीजी रामतापनी और बृहज्जाबाल उपनिषद् को कि—जिनमें पूजन लिखा है—दश उपनिषदों में गणना न किये जाने के कारण स्वीकार न करें तो देखो स्वामीजी ने अपना प्रयोजन सिद्ध करने के ५ लिये अपनी पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में कैवल्योपनिषद् का प्रमाण दिया है, वह भी दश उपनिषद् से बाहर है। उदाहरणार्थ सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ३ में लिखा है—"स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्स शिवस्सोऽक्षरस्स परमः स्वराट्। स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः इत्यादि।" यह कैवल्योपनिषद् का वचन है। इसलिए जबकि उन्होंने कैवल्योपनिषद् को—जो दश उपनिषद् से १० बाहर है—स्वीकार कर लिया तो फिर उनको शेष और उपनिषद् भी मानने पड़ेंगे। तो बस रामतापनी और बृहज्जाबाल आदि उपनिषद् सब समान हैं।

और यदि कहो कि श्रुति और स्मृति में तो मूर्तिपूजन का वर्णन है ही नहीं फिर मूर्तिपूजन क्योंकर हो सकता है ? तो यह बात ठीक नहीं है १५ क्योंकि सामवेद के ब्राह्मण के पांचवें अनुवाक के दसवें खंड में साफ-साफ यह लिखा है—"स परन्दिवमन्वावर्तते अथ यदास्यायुक्तानि यानानि प्रवर्तन्ते देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसंति रुदंति गायन्तीत्यादि" इनसे देवताओं का मन्दिर और उनमें देवताओं की मूर्ति सिद्ध हुई। परन्तु दयानन्द सरस्वती जी इस वचन के विषय में कहते हैं कि यहां २० देवताओं के मन्दिर और देवताओं की मूर्ति से अभिप्राय ब्रह्मलोक से है। स्वामीजी के इस कथन से स्पष्ट विदित होता है कि उन्होंने इस श्रुति के अर्थ लगाने में विचार नहीं किया। इस श्रुति में जो शब्द (परन्दिव) है यदि उसके अर्थ ब्रह्मलोक के लगावें तो "अन्वेति" शब्द कि जिसके अर्थ 'देखकर' हैं किस प्रकार से उपयुक्त हो सकता है ? क्योंकि जब दोनों २५ शब्दों के अर्थ मिलकर 'ब्रह्मलोक' देखकर हवन आदि शान्ति करता हुआ तब यह किस प्रकार हो सकता है क्योंकि हम इस लोक के रहने वाले ब्रह्मलोक को किसी प्रकार नहीं देख सकते। तब हम नहीं जानते कि स्वामीजी इस श्रुति के अर्थ ब्रह्मलोक की प्रतिमा क्योंकर लगाते हैं। "परन्दिव" शब्द के अर्थ ब्रह्मलोक के कदापि नहीं हैं। इससे भूलोक के रहने वाले ३० वैष्णव आदि से ही अभिप्राय है और यही अर्थ यहां उचित हैं। देखो सायणाचार्य ने भी अपने भाष्य में यही अर्थ लगाये हैं:—"वक्ष्यमाणाद्भुतवामधिकारी परन्दिव उत्कृष्टां वैष्णवीं दिशं प्रकीर्ण होमार्थं वर्तते

प्रवर्ततद्गति ॥"

इसी खण्ड में "खननात् दहनात् इत्यादि भूमिशुद्ध्यतेत्यन्त" इस लेख से पृथिवी का खोदना आदि पाया जाता है। दयानन्द स्वामीजी यह कहते हैं कि इसी अनुवाक के सातवें खंड में "स पृथिवीं अन्वावर्तते" यह लिखा है। इसमें पृथिवी शब्द दिखलायी देता है और इससे पहले पृथिवी शब्द कहीं नहीं पाया जाता; पृथिवी शब्द का प्रयोग यहीं समाप्त हो गया। यह उनका कहना ठीक नहीं क्योंकि दसवें खंड में भी "भूमि" शब्द आया है और मनुस्मृति में भी लिखा है: —"सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च॥ (८।१८) संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः। प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च॥" (९।२८५) इन श्लोकों के अनुसार दो ग्रामों के बीच में एक देवता का मन्दिर बनाना उचित है और जो कोई पत्थर आदि की मूर्ति उसमें न रखे उस पर पाँच सौ रुपया जुर्माना होना आवश्यक है। इस बारे में स्वामी दयानन्द जी कहते हैं कि "प्रतिमीयते अनेनेति व्युत्पत्त्या" प्रतिमा शब्द के अर्थ भार-तोलने के हैं अर्थात् भार तोलने के बाटों का नाम "प्रतिमा" है। स्वामीजी के इस कहने से स्पष्ट प्रकट है कि उन्होंने मीमांसाशास्त्र नहीं देखा है। देखो पूर्वमीमांसा में रथ के बनाने वाले के बारे में लिखा है: —"वचनाद्रथकारस्य इत्यादि वर्षासु रथकारोऽग्निमादधीतेति।" वेद के इस वचन में जो "रथकार" शब्द है उसकी व्युत्पत्ति इसप्रकार है—"रथं करोतीति रथकारः।" इस प्रकार व्युत्पत्ति करके इसके अर्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हैं ऐसा नहीं समझना चाहियें क्योंकि ऐसा समझने से उसके केवल यौगिक अर्थ हो जायंगे। इस शब्द के कोष में दिये हुये अर्थों से एक नीच जाति का व्यक्ति अभिप्रेत है। यदि इसको छोड़कर इसके यौगिक अर्थ अर्थात् 'रथ का बनाने वाला' लिये जावें। तो चारों वर्ण के लोगों से अभिप्राय हो जाता है। इसलिये पूर्वमीमांसा के रचयिता जैमिनी ने भी यही निश्चित किया है कि जहां कोष के अर्थ होते हों वहां यौगिक अर्थ न लिये जावें। इसलिये "प्रतिमा" शब्द के कोष में दिये हुये अर्थ—पत्थर की मूर्ति के अतिरिक्त और कोई यौगिक अर्थ लेना उचित नहीं होगा। कोष के अर्थों को छोड़कर यदि केवल यौगिक अर्थ लें तो "'अग्निर्नष्टः अग्निरुत्पन्नः इत्यादि" वाक्यों में यह व्युत्पत्ति करके अग्नि शब्द का विशेष अर्थ — 'जलाने वाला' छोड़ कर इन्द्र आदि देवता के भी समझा जायेगा। क्योंकि

(यौगिक तो) यही अर्थ हो सकते हैं। इसलिए देवताओं की मूर्ति और उन की पूजा करना सब श्रुतियों और स्मृतियों के अनुसार उचित है।

यजुर्वेद संहिता में श्राद्ध के विषय में यह लिखा है कि:—"निवीतं मनुष्याणां प्राचीनावीतं पितृणाम्[1]" इससे प्राचीनावीत अर्थात् यज्ञोपवीत को दाहिने कन्धे पर (लटका) करके[2] पितृकर्म करना प्रकट होता है। इसमें जो "पितृणां" शब्द बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है इससे मरे हुए माता-पिता का श्राद्ध पाया जाता है। जब एक मनुष्य जीवित है तो उस समय उसका केवल एक पिता होता है परन्तु मरने के पश्चात् पिता के समान पितामह, प्रपितामह को भी शास्त्र के अनुसार "पितृणां" (शब्द से वाच्य) कह सकते हैं। इसलिये इस वेद वचन में जो "पितृणां" शब्द आया है उस से मृतकश्राद्ध आदि ही अभिप्रेत है, देखो:—'मृताहं समतिक्रम्य चाण्डाल: कोटिजन्मसु' स्मृतियों में भी इसका यह अर्थ है कि जो मरे हुए लोगों का मरने के दिन श्राद्ध आदि नहीं करता है वह सहस्रों पीढ़ियों चाण्डाल की योनि में उत्पन्न होता है। ऊपर वचन देवलस्मृति का है। 'मनु' भी लिखते हैं:—'पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान्। पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥' (मनु ३-१२२) अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को अमावस्या के दिन अपने पिता आदि के श्राद्ध का करना अत्यन्त आवश्यक है। और 'न निवर्त्तयति य: श्राद्धं प्रमीतपितृको द्विज:। इन्दुक्षये मासि मासि प्रायश्चित्ती भवेत्तु स: ॥ जो नहीं करता वह ऐतरेय स्मृति के इस वचन के अनुसार पापी होता है। इसलिये यह बात स्पष्ट रूप से निश्चित हो गयी कि मरे हुओं का श्राद्ध-तर्पण श्रुति और स्मृति दोनों के अनुसार विहित है। ऋग्वेद संहिता १०-७५-५में तीर्थ के विषय में लिखा है:—'सितासिते सरितौ यत्र संगते तत्र प्लुतासो दिवमुत्पतंति। ये वै तन्वा विसृजन्ति धीरा: ते जनासोऽमृतत्वं भजन्ते' 'यत्र गंगा च यमुना च यत्र प्राची सरस्वती, इमम्मे गंगे यमुने इत्यादि।' इसमें 'गंगा यमुने' आदि शब्दों से प्रकट होता है कि गंगा आदि तीर्थस्नान करने से स्वर्ग होना और पाप से छूटना अभिप्रेत है। मनुस्मृति में लिखा है कि:—'यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थित:। तेन चेदविवादस्ते मा गंगां मा कुरून्गम:।' इसका यह अर्थ है कि झूठ

१. 'जैमिनीयन्यायमालाविस्तर' में दिया हुआ है।—सम्पा०

२. देखो मनुस्मृति अ० २२ श्लो० ६३।—सम्पा०

बोलने के पाप से छूटने के लिये गंगास्नान और कुरुक्षेत्र-वास करना चाहिये। तीर्थ-क्षेत्रों के बारे में और भी बहुत से प्रमाण हैं। इसलिये गंगा आदि का स्नान और कुरुक्षेत्र-आदि का वास श्रुति और स्मृति दोनों से सिद्ध है।

इसके पश्चात् श्री तारानाथ वाचस्पति ने मूर्ति-पूजन को उपनिषदों के अनुसार सिद्ध करना आरम्भ किया। उनका वर्णन बहुत बढ़ने लगा और इधर सायं समय होता जा रहा था; इस कारण से महेशचन्द्र न्यायरत्न ने तारानाथ जी को एक पर्चा लिखकर दिया कि यद्यपि आप इस बारे में कई दिन तक बोल सकते हैं परन्तु आज समय बहुत कम और काम बहुत अधिक है। यद्यपि तारानाथ जी को बहुत कुछ कहना था परन्तु महेशचन्द्र जी के कहने से अपना भाषण समाप्त करके कहने लगे कि अभी मुझको इस बारे व बहुत कुछ कहना शेष है।

"आर्यसमाज की ओर से प्रत्युत्तर"—ब्राह्मणों और स्मृतियों पर विचार के पश्चात् अब हम दूसरे प्रश्न की ओर आकृष्ट होते हैं कि क्या शिव, विष्णु, दुर्गा आदि देवताओं की मूर्ति और शिवलिंग की पूजा और मरने के पश्चात् पितरों का श्राद्ध आदि उचित है या नहीं? और गङ्गा और कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों के स्नान और वास से पाप की निवृत्ति और मुक्ति होती है या नहीं?

उत्तर—यद्यपि इस बारे में पहले भी पर्याप्त तर्कवितर्क हो चुके हैं और कोई भी व्यक्ति उपर्युक्त युक्तियों या शास्त्र के प्रमाणों से किसी ऐसे दावे को सिद्ध नहीं कर सका परन्तु चूंकि अब इन बातों का विचार एक ऐसी विद्वानों की सभा में हुआ है जिसका उदाहरण भारत के इतिहास में पाया नहीं जाता। इसलिये उचित नहीं कि इस सभा के निर्णय की समीक्षा किये बिना यों ही छोड़ दिया जाये। विचार आरम्भ करने से पहले इस बात का वर्णन करना आवश्यक है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती—जिनके वचनों के खण्डन के लिये इस सभा का आयोजन हुआ था—इस सम्बन्ध में क्या कहते हैं। विदित रहे कि वह अपने तर्क-वितर्क का आधार वेद आदि सत्यशास्त्रों पर रखते हैं और उन सत्यशास्त्रों को हमारी विद्वानों की सभा भी स्वीकार करने योग्य समझती है और

स्वामी जी के लेखों में स्थान-स्थान पर उनका प्रमाण पाया जाता है। स्वामीजी कहते हैं कि सत्यशास्त्रों में मूर्तिपूजन आदि नहीं लिखा। ऐसी अवस्था में उचित तो यह था कि उन्हीं शास्त्रों के प्रमाणों से स्वामी जी के वचनों का खंडन किया जाता परन्तु इसके ५ स्थान पर इधर-उधर के प्रमाण दिये गये हैं और यदि कहीं किसी सत्यशास्त्र का प्रमाण भी दिया है तो उससे कुछ सिद्ध नहीं होता। अब हम उत्तर आरम्भ करते हैं।

शिवलिंग और मूर्तिपूजन—"**तव श्रियै मरुतो मार्ज्जयन्ति रुद्र यत्तेजनिमचारुचित्रम्**"—इस वचन से हमारी श्रेष्ठ-मस्तिष्क सभा १० शिवलिंग की पूजा सिद्ध करती है! और इसका अर्थ भी प्रमाण के रूप में उपस्थित किया गया है परन्तु हमारी समझ में नहीं आता कि (इस वचन से) शिवलिंग की पूजा कहां से निकलती है और उसके सिद्ध करने के लिये सीधे साधे अर्थ को छोड़कर क्यों इतना कष्ट उठाया गया है। शब्दों के अर्थ तो स्पष्ट रूप से यह हैं कि १५ '**हे रुद्र! तेरी सृष्टि अथवा प्रकाश विचित्र चित्ताकर्षक और आश्चर्यजनक है; इसलिये देवता लोग तेरी महिमा के लिये उसको शुद्ध कर रहे हैं** (अर्थात् तेरी महत्ता को प्रकट कर रहे हैं या तेरी स्तुति और प्रशंसा उच्च स्वर से कर रहे हैं)'। भला! अब बताइये कि आप के भाष्यकार ने "**मार्जयन्ति**" शब्द २० पर जो टिप्पणियां की हैं उनको कौन मान सकता है? क्या देवताओं का कल्याण इसी पर निर्भर है कि परमात्मा की सच्ची पूजा छोड़कर लिंग आदि स्थापन करके उसका पूजन गङ्गा आदि तीर्थों के पानी से करें? वास्तव में उक्त 'मार्जयन्ति' शब्द "**मृज**" धातु से बना है जिसके अर्थ हैं **पवित्र करना, शब्द करना, सजाना**। २५ देवता और लिंग की पूजा भला (इन दोनों का सम्बन्ध) यहां कब सम्भव है? यदि हमारे अर्थ आपकी दृष्टि में ठीक न हों तो आप को कोई और अच्छे अर्थ खोजने पड़ेंगे या इस प्रमाण का ही त्याग करना पड़ेगा क्योंकि **आजकल के देवता आपके शिवलिंग की पूजा से घृणा करने लगे हैं** और प्राचीन ऋषि-मुनियों के ढंग पर केवल ३० सर्वशक्तिमान् परमात्मा ही की पूजा को अपनी मुक्ति का कारण समझते हैं। हां, यदि शिवलिंग से कल्याण या कल्याणस्वरूप परमात्मा का अनुमान करने वाला गायत्री आदि मंत्र, या कोई और

साधन—जो वेद और बुद्धि के अनुकूल हो—लिया जाये तो उसका सेवन तीन काल क्या यदि दिन भर भी करो तो कुछ हानि नहीं। परन्तु यह नहीं कि जिस वस्तु का नाम लेने से शिष्ट जनों को घृणा होती हो, उसका चिह्न बनाकर व्यापार (लेन-देन) के लिये उसकी पूजा की जाये। ५

मूर्तिपूजा के बारे में अप्रामाणिक उपनिषदों और स्मृतियों आदि के जो प्रमाण दिये गये हैं उनके विषय में तर्क करना व्यर्थ है क्योंकि जब हम इन मूल पुस्तकों को ही प्रामाणिक नहीं मानते तो उनके प्रमाणों को कब मान सकते हैं! इसलिये ऐसे प्रमाणों का उपस्थित करना ही व्यर्थ था। इसके अतिरिक्त उन पुस्तकों में १० मूर्तिपूजा आदि के खंडन के भी बहुत प्रमाण पाये जाते हैं जिनका वर्णन आगे किया जायेगा और फिर हम जैमिनी जी और मनुजी के वचनों से ऊपर सिद्ध कर आये हैं कि स्मृतियों आदि के **जो वचन वेद के अनुकूल नहीं वह स्वीकार करने योग्य नहीं।** जिस देश में और जिस घर में विद्या का प्रकाश नहीं है वह निस्सन्देह, दीपक- १५ रहित घर के समान है। जब शरीर से आत्मा निकल जाती है तो वह जलाने या गाड़ने के योग्य हो जाता है। जिस आत्मा में परमात्मा का प्रेम और सत्य का प्रकाश प्रकाशित नहीं, वह अविद्या, अन्धकार और दुःख में फंसी रहती है। परन्तु इस बात को कभी श्रेष्ठ बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती कि जिस घर में शालिग्राम २० या शिवलिंग नहीं वह श्मशान के समान है। हमारी विदुषी सभा यह भी कहती है कि स्वामीजी ने अपनी पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये **'कैवल्योपनिषद्'** का प्रमाण दिया है और यह दश उपनिषदों से बाहर है; इसलिये जब उन्होंने कैवल्योपनिषद् को स्वीकार कर लिया तो फिर उन को शेष २५ और उपनिषदें भी माननी पड़ेंगी। यह एक विचित्र प्रकार का तर्क है! भला, यदि हम पुराणों से मूर्तिपूजन के खंडन में कोई प्रमाण दें, जैसा कि देंगे ही—तो क्या इससे यह आवश्यक होता है कि हम ने सब पुराणों को मान लिया? किसी विशेष बात के समर्थन या उसकी सिद्धि के लिये **किसी पुस्तक से वचन-विशेष का प्रमाण देने** ३० **से यह परिणाम कदापि नहीं निकलता कि प्रमाण देने वाले ने,** उस पुस्तक को और अन्य बीसियों पुस्तकों को भी सामूहिक रूप से

प्रामाणिक मान लिया है।

"गौरी वा गौरीपतिर्वा श्रियः पतिर्वा स्कन्दो वा विनायको वा व्यस्ताः समस्ता वा ईज्यन्ते।" यह वचन भी (यदि इसके वही अर्थ लिये जांय जो हमारी इस अत्यन्त समझदार सभा के मस्तिष्क ५ में हैं) वैसा ही वेद की शिक्षा के विरुद्ध है जैसे कि अन्य अप्रामाणिक प्रमाण हैं—जिनपर निर्भर किया गया है। हमारी समझ में नहीं आता कि **इतने बड़े ऋग्वेद को छोड़ परिशिष्टों और टिप्पणियों की ओर क्यों ध्यान दिया गया है।** यदि ऋग्वेद जिसका पाठ (जिसकी मंत्र संख्या) दस हजार के लगभग है और जो सृष्टि १० की वास्तविकता और उसके प्रबन्ध और उसकी क्रमिकता के सिद्धान्त की एक प्रतिलिपि है—आपके दावे का समर्थन नहीं करता जो इधर-उधर भाग दौड़ करने से क्या कुछ मिल सकता है। जो बौधायनसूत्र का प्रमाण दिया गया है—उसके शब्दों से तो महादेव महापुरुष अर्थात् **परमात्मा की पूजा प्रकट होती है;** इसमें १५ शिवलिंग आदि की कोई चर्चा नहीं।

"स परन्दिवमन्वावर्तते अथ यदास्यायुक्तानि यानानि प्रवर्तन्ते देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति रुदन्ति गायन्तीत्यादि"। इस वचन से मूर्तिपूजन कदापि सिद्ध नहीं होता और न इसमें पूजा की कुछ चर्चा है। हमको ज्ञात नहीं कि स्वामी दयानन्द २० सरस्वतीजी इसका क्या अर्थ करते हैं[1] परन्तु यदि आक्षेपकर्ता के कथनानुसार वह इस वचन का सम्बन्ध ब्रह्मलोक से जोड़ते हैं (यद्यपि उनकी रचनाओं और लेखों में ऐसा नहीं देखा गया) तो कुछ पाप नहीं करते। वचन की भाषा को आगे पढ़ने से प्रकट होता है कि वह सत्य पर हैं। यदि आपको यह अर्थ पसन्द नहीं तो २५ भला कहिये कि आप और आपके भाष्यकार ने "परन्दिव" शब्द के जो अर्थ इस भूलोक के रहने वाले वैष्णव आदि लिखे हैं वह क्योंकर स्वीकरणीय हो सकते हैं? जब कोष में या व्युत्पत्ति द्वारा भी इस शब्द के यह अर्थ ही नहीं हैं; तो समझ में नहीं आता कि वैष्णव आदि मत से इसका सम्बन्ध क्यों जोड़ा गया है? यदि ३० हमारी प्यारी सभा इच्छा से या अनिच्छा से इन्हीं अर्थों पर डटी

१. ऋ०द० ने काशी-शास्त्रार्थ में इस प्रकरण का विवेचन किया था।

रहना चाहती है तो और मत वालों को - अर्थात् शिव, शक्ति, गणपति, भैरव आदि के उपासकों को और उस सत्यवक्ता कबीर और ईश्वरभक्त नानक के अनुयायियों को भी यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वे उक्त शब्द का सम्बन्ध अपने-अपने मत से जोड़े क्योंकि सब अपने-अपने मत को उत्तम और सर्वोपरि जानते हैं। ५ **वास्तव** में "परंदिव" शब्द **के** यहां वे अर्थ उपयुक्त नहीं हैं जो हमारी विदुषी सभा स्थापित करना चाहती है। अब रही यह बात कि इस वचन में देवताओं के आयतन और देवताओं की मूर्ति का वर्णन है--सो विदित रहे कि इन शब्दों से देवता की मूर्ति का पूजन सिद्ध नहीं होता। यदि लेखक को मूर्तिपूजन को वैध सिद्ध १० करना अभीष्ट था तो उसको इस वचन में दो-एक शब्द और बढ़ा कर अपने उद्देश्य को प्रकट कर देने में क्या बाधा थी ? इस प्रकार के शब्द तो उन लोगों की पुस्तकों में भी पाये जाते हैं जो मूर्तिपूजन को महापाप और परमात्मा का अपमान समझते हैं जैसे जबरईल फरिश्ता और उसका मकान बेरी[1] का वृक्ष आदि-आदि। १५ इसके विषय में कुछ आगे भी लिखा जायेगा।

"खननाद् दहनात् इत्यादि भूमिः शुध्यते इत्यन्तम्" इस वचन की भी वही दशा है जो ऊपर अन्य वचनों की वर्णन की है; इसकी व्याख्या की कुछ भी आवश्यकता नहीं। पृथिवी आदि खोदना कुछ मूर्तिपूजन का प्रमाण नहीं हो सकता। २०

अब रहा मनुस्मृति का प्रमाण—**"सीमासन्धिषु कार्याणि देवतायतनानि च ॥ संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः। प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ॥** इन तीनों पंक्तियों में से पहली पंक्ति तो मनुस्मृति के आठवें अध्याय के श्लोक संख्या २४८ की दूसरी पंक्ति है; जिसका अर्थ यह है कि (ग्राम की) सीमा के २५ मिलने के स्थान पर देवस्थान बनाना चाहिये। यहां कई श्लोकों में सीमाओं पर चिह्न लगाना और सीमाओं के झगड़े का निर्णय तथा सीमाओं को पहचानने के चिह्नों का वर्णन है। इसलिये उक्त श्लोक

---

१. मुसलमानों का ऐसा विश्वास है कि सातवें आसमान पर एक बेरी का वृक्ष है, उससे आगे जबरईल फरिश्ता नहीं जा सकता।—अनुवादक ३०

की पहली पंक्ति में[1] तालाव, कूप, बावली और झरने के समानार्थक (संस्कृत) शब्द विद्यमान हैं जो उसी अभिप्राय से प्रयुक्त हुये हैं— जिससे देवस्थान हुआ है। वास्तव में **यहां देवस्थान से अभिप्राय किसी पवित्रगृह** – जैसे, पाठशाला या यज्ञस्थान या धर्मशाला आदि
५ से है; सीमासन्धियों पर ऐसे स्थान होंगे तो लोग सीमाभंग करने से डरते रहेंगे। फिर इस शब्द को मूर्तिपूजन का प्रमाण मानना केवलमात्र महर्षि मनु का अपमान करना है! ईश्वर की शरण, कहां सीमा का बांधना और कहां मूर्तिपूजन? **अन्तिम दो पंक्तियां** —मनुस्मृति के नवें अध्याय के श्लोक संख्या २८५ की हैं। अर्थ यह
१० है कि जो व्यक्ति **पुल, ध्वजा और पानी के ऊपर आने-जाने के साधनों बांटों या नापने के साधनों की हानि करे वह पांच सौ रुपया जुर्माना दे** और उस हानि को पूरा करे। इसमें विचारणीय शब्द केवल 'प्रतिमा' शब्द है। औचित्य तो यह चाहता है कि इस के अर्थ बाट आदि के हों (साथ[2] ही के अगले दो श्लोकों में इसी
१५ प्रकार से शुद्ध वस्तुओं में मिलावट करने और उनके बिगाड़ने के लिये और समान मूल्य देने वालों में से एक को अच्छी और दूसरे को बुरी वस्तु देने तथा मूल्य में छल करने आदि के लिये दंड निर्धारित किया गया है) परन्तु हमारी प्यारी सभा यह कहती है कि इस शब्द के प्रसिद्ध अर्थ मूर्ति के हैं, और प्रसिद्ध अर्थ छोड़कर
२० यौगिक अर्थ लेने अनुचित हैं। और इस कथन के समर्थन में जैमिनी मुनि का एक वचन भी उपस्थित किया गया है। यह युक्ति प्रकट-तया कुछ मूल्य रखती है **परन्तु जो लोग किसी भाषा के साहित्य से परिचित हैं वह इसको पूर्ण (अटल) नियम के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते। बहुत स्थान ऐसे होते हैं जहां प्रसिद्ध अर्थ को छोड़**
२५ **कर यौगिक अर्थ ही लिये जाते हैं।** हां जहां प्रसिद्ध अर्थों से काम निकलता हो वहां इच्छा अथवा अनिच्छा से यौगिक अर्थों का लेना व्यर्थ है। यही अभिप्राय जैमिनी जी का है; अन्यथा वह वचन

---

१. तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च। (मनु. ८।२४८)—सम्पा०

३० २. इससे अगला श्लोक इस प्रकार है—'अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा' - इत्यादि।—सम्पा०

समस्त व्यावहारिक और यौगिक अर्थों का मिटाने वाला ठहरता है। हमारी भोली सभा ने जो 'रथकार' आदि शब्द का उदाहरण देकर अपना मीमांसाज्ञान प्रकट किया है उससे कोई दृढ़ निष्कर्ष नहीं निकलता। यद्यपि 'रथकार' आदि शब्दों के भी यौगिक अर्थ लिये जा सकते हैं परन्तु 'प्रतिमा' शब्द के यौगिक अर्थ लेने से यह आवश्यक नहीं हो जाता कि इन शब्दों या सारी भाषा के शब्दों के अवश्य यौगिक अर्थ लिये जायें। प्रत्येक स्थान पर अवसर और प्रकरण को देखा जाता है। विचारणीय वचन में **औचित्य और आगामी प्रसंग पर विचार करने से स्पष्ट सिद्ध होता है कि यहां 'प्रतिमा' शब्द का अर्थ मूर्ति नहीं है।** यदि इसका अर्थ 'मूर्ति' ही लिया जाय तो भी मूर्तिपूजन का औचित्य क्योंकर सिद्ध होता है ? 'मूर्ति' शब्द आ जाने से ही यह सिद्ध नहीं होता कि यहां मूर्तिपूजन का विधान किया गया है। इसके विपरीत इस शब्द से तो उस समय की एक अद्भुत अवस्था का ज्ञान होता है और उससे प्राचीन आर्य्यों की महत्ता उनके विचारों की व्यापकता और समानता की भावना सिद्ध होती है। वह यह कि धर्मात्मा और न्यायप्रिय राजा और शासक इस बात को उचित नहीं समझते थे कि प्रजा या राजा के किसी सम्प्रदाय में अपने धार्मिक विश्वासों को डंडे के बल पर फैलायें; प्रत्युत उनका सदा यह दृष्टिकोण रहता था कि प्रत्येक जाति और प्रत्येक सम्प्रदाय धार्मिक बातों में अपने-अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार आचरण करे और धार्मिककृत्यों को स्वतन्त्रता और शान्ति के साथ पूरा कर सके और कोई किसी को बलात् रोकने वाला न हो और इसी अभिप्राय से कानून बनाया जाता था। इस बात का उदाहरण अंग्रेजी सरकार के शुभ शासनकाल में, जो भारतवर्ष के लिए एक महान् वरदान और अप्रत्याशित लाभ का देने वाला सिद्ध हुआ है—पाया जाता है। चारों ओर स्वतन्त्रता का सुप्रभाव फैल रहा है, धार्मिक विचार और शास्त्रार्थ होते हैं। शासनविधान एकेश्वरवादियों और मूर्तिपूजकों का समान रूप से समर्थन करता है। यह तो प्रत्येक को अधिकार है कि मूर्ति-पूजा को अधर्म समझे और घोषित करे परन्तु यह किसी का साहस नहीं कि मूर्ति को तोड़े और यदि तोड़े तो उसको दण्ड दिया जाता है। यदि विधान में मूर्ति तोड़नेवाले के लिये कोई दण्ड निर्धारित किया

गया तो उससे यह सिद्ध नहीं होता कि मूर्तिपूजा का निर्देश दिया गया है। यह विधान के बनाने वाले या शासक या उनकी जाति या प्रजा मूर्तिपूजक है। यही बात महर्षि मनु के काल पर भी लागू हो सकती है। **यदि उस समय कुछ स्वार्थी नेताओं ने अपने विद्याहीन विश्वासियों को अपने फंदे में फंसाये रखने के अभिप्राय से मूर्ति-पूजा का कुछ प्रचार किया हो और मनु जी ने देश की परिस्थिति को देखते हुये कानून विधाननिर्माता के रूप में मूर्ति तोड़ने के लिये दण्ड निर्धारित कर दिया हो तो इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मनुस्मृति में मूर्तिपूजा का करना विहित ठहराया गया है।** यदि मूर्तिपूजा वैध होती तो वेद और सत्यशास्त्रों और प्राचीन ऋषि-मुनियों के ग्रन्थों में उसका वर्णन अवश्य ही स्पष्ट रूप से पाया जाता— परन्तु ऐसा नहीं है। भला जब तीन सौ विद्वान् पण्डितों की सभा मूर्तिपूजन के समर्थन में सत्यशास्त्रों से कोई प्रमाण नहीं दे सकी तो औरों से क्या आशा की जाती है! वास्तव में इसका प्रचार बौद्धों के काल से हुआ है।

मूर्तिपूजा के निषेध में प्रमाण—उपर्युक्त युक्तियों से यह तो भली भांति निश्चित हो गया कि मूर्तिपूजन उचित नहीं और अब उसके खण्डन में वेदों के कुछ प्रमाण देकर इस विषय को समाप्त करते हैं—

'न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।' (यजुर्वेदसंहिता, अध्याय ३२, मं० ३) **अर्थ**—उस परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं, उसका नाम अत्यन्त तेजस्वी है।

'स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धमित्यादि'। (यजु० अध्याय ४०, मन्त्र ८)। **अर्थ**—वह (परमात्मा) सर्वव्यापक तथा सर्वद्रष्टा, सर्वशक्तिमान्, शरीररहित, पूर्ण, नाड़ी आदि के बन्धन से रहित, शुद्ध, पापों से पृथक् है।

'अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः॥' **अर्थ**—जो लोग प्रकृति आदि जड़ पदार्थों की उपासना करते हैं वह अन्धकारमय नरक में जाते हैं और जो उत्पन्न हुई वस्तुओं की उपासना करते हैं वह उससे भी अन्धकार-युक्त नरक में जाते हैं।

'तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।'

अर्थ—जो बुद्धिमान् उसे आत्मा में स्थित देखते हैं उन्हीं को शाश्वत सुख प्राप्त होता है, औरों को नहीं।

'ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम्। य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापि यन्ति।' अर्थ—जो संसार और संसार के उपादान कारण से उत्कृष्ट है, निराकार और निर्दोष है—जो उस को जानते हैं उनको अमर जीवन प्राप्त होता है और दूसरे लोग केवल दुःख में फंसे रहते हैं।

'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'
अर्थ—उसी के ज्ञान से मृत्यु के पंजे से छुटकारा होता है, कोई और मार्ग इच्छित स्थान पर पहुंचने का नहीं है।

किसी देवता को उपासना करना भी उचित नहीं—शतपथ-ब्राह्मण में जहां तेंतीस देवताओं की व्याख्या की है। (और उन्हीं तेंतीस के तैंतीस करोड़ बन गये हैं और उस सूचि का पूर्णता के पश्चात् जो उसमें और जैसे गूंगापीर आदि समय समय पर सम्मिलित होते रहे हैं वह उसके अतिरिक्त रहे) वहां भी परमात्मा के अतिरिक्त और किसी की उपासना विहित नहीं रखी; प्रत्युत उसका खण्डन किया है। जैसे—**'आत्मेत्येवोपासीत। स योन्यमात्मतः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात्प्रियं रोत्स्यतीतीश्वरो ह तथैव स्यात्। योऽन्यां देवतामुपास्ते न स वेद। अथा पशुरेव स देवानाम्।'** (शतपथ ब्रा०, कांड १४, अध्याय ४) परमेश्वर जो सबका आत्मा है उसी की उपासना करनी चाहिये। जो परमेश्वर के अतिरिक्त किसी और को प्रिय अर्थात् उपास्य समझता है उसे जो कहे कि तू प्यारे के विरह से दुःख में पड़ेगा वह सत्य की ओर है। जो और देवता की उपासना करता है वह वास्तविकता को नहीं जानता, वह निश्चित रूप से बुद्धिमानों में केवल पशु के तुल्य है।

हाय, खेद! हमारी प्यारी सभा इन प्रामाणिक वचनों और सैकड़ों और ऐसे ही प्रमाणों की उपेक्षा करके मूर्तिपूजा को वैध सिद्ध करना चाहती है और बड़ी धूमधाम के साथ प्रकट करती है कि जो व्यक्ति शिवलिङ्ग और शालिग्राम की पूजा नहीं करता वह सीधा नरक को जाता है। हे मेरी प्रतिष्ठित सभा! तेरी महत्ता और विद्वत्ता में तो किसी को सन्देह नहीं हो सकता परन्तु मैं चकित हूं कि तेरी कार्यवाही ऐसी क्यों निकली कि उसके खण्डन

के लिये एक साधारण मनुष्य को भी लेखनी उठा कर उद्यत होना पड़ा है !

अब देखो आपका प्यारा श्रीमद्भागवत क्या कहता है:— **'मृच्छिलाधातु-दार्वादिमूर्तावीश्वर-बुद्धयः। क्लिश्यन्ति तपसा मूढाः**
५ **परां शान्ति न यान्ति ते।' अर्थ** – मिट्टी, पत्थर, धातु, लकड़ी आदि की मूर्ति में जो ईश्वर का ध्यान करते हैं ऐसे मूढ तप से केवल कष्ट उठाते हैं और वास्तविक शान्ति को प्राप्त नहीं करते।

और भी कहा है 'यस्यात्मबुद्धिः' इत्यादि। अर्थात् जो व्यक्ति तीन धातुओं से निर्मित शरीर को आत्मा समझता है और स्त्री
१० और पुत्र आदि को अपना समझता है और मिट्टी की मूर्ति को उपासना के योग्य समझता है और जो बुद्धिमान् मनुष्यों को तो नहीं, जल को तीर्थ समझता है – वह निश्चित रूप से गधा है।

मूर्तिपूजा के खण्डन में कुछ युक्तियां—हमारे विचार में मूर्ति-पूजन के खण्डन में शास्त्रों के जो प्रमाण ऊपर लिखे गये हैं वह
१५ पर्याप्त हैं; इससे अधिक लिखना तो व्यर्थ बोलना ही कहलायेगा। अब एक-दो तर्कसम्मत युक्तियां उपस्थित की जाती हैं।

देखिये, जैसा उपास्य (होता है) वैसा ही उपासक या यों कहिये कि जैसा उपासक (होता है) वैसा ही उपास्य (होता है)। यह एक सूक्ष्म बात है—जिसकी व्याख्या से विचारणीय समस्या भली-
२० भांति सुलझ सकती है। प्रत्यक्ष है कि जो गुण उपास्य में माने जाते हैं उनका प्रभाव न्यूनाधिक उपासक के व्यक्तित्व पर अवश्य होता है या शिक्षा-दीक्षा की दृष्टि से जैसा उपासक होता है वैसा ही वह अपना उपास्य कल्पित कर लेता है। इन बातों में ध्यान का बड़ा हाथ है। यदि हमारा उपास्य क्रोधी अत्याचारी है तो उसका क्रोध
२५ और यदि लज्जालु है तो उसकी लज्जा और यदि दयालु है उसकी दया की छाया हमारी आत्मा पर पड़ती है और इसका प्रभाव हमारी समस्त शारीरिक और मानसिक शक्तियों पर पड़ता है। इस सिद्धान्त पर जब हम यह मानते हैं कि हमारा उपास्य सत्, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, परमपवित्र, सत्यस्वरूप, तेजःस्वरूप,
३० परमस्नेही, प्राज्ञ, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, सर्वगत, सर्व-द्रष्टा, सर्वव्यापक, सर्वोत्कृष्ट, अनादि और अनन्त है –जैसा कि

वेदों में लिखा है-तो हमारी आत्मा की भीतरी शक्तियों का विकास और प्रकाश होकर उसमें एक प्रकार की महत्ता, तेज विस्तार और पवित्रता उत्पन्न होती है जिसमें हमारा सारा आत्मिक और सामाजिक ढांचा प्रकाशमय हो जाता है और जिसका परिणाम शाश्वत सुख है। यदि हम ऐसे उपास्य को पत्थर और धातु आदि की मूर्ति या किसी और परिमित वस्तु में ध्यान करके उसको नमस्कार करना स्वीकार करते हैं तो विपरीत परिणाम होता है। यह भी एक प्रत्यक्ष बात है कि समस्त धार्मिक और सांसारिक विषयों में बुद्धि हमारी सबसे बड़ी पथप्रदर्शक है। यही कारण है कि हमारी गायत्री जो बीजमन्त्र गिनी जाती है उस द्वारा बुद्धि के प्रकाश के लिये ही प्रार्थना की गयी है। जिन साधनों से बुद्धि की उन्नति और सुधार हो उनका व्यवहार में लाना अत्यन्त उचित है और जिस बात से बुद्धि में निर्बलता और अन्धकार उत्पन्न हो उसको धारण करना आत्महत्या में सम्मिलित है। सच्ची ईश्वरोपासना, सच्ची शिक्षा और बुद्धिमानों के संग से बुद्धि उज्ज्वल और शुद्ध होती है और इस के विपरीत जड़ वस्तुओं की उपासना बुरी शिक्षा और अविद्वानों के संग से वह निर्बल और अन्धकारयुक्त होती है। इसलिये जड़ वस्तुओं में सर्वशक्तिमान् परमात्मा का ध्यान करके उनको नमस्कार के योग्य बताना मानो बुद्धि को बिगाड़ना है और बुद्धि का बिगाड़ना आत्मघात है और आत्मघात करना पाप है। **इसलिए सिद्ध हुआ कि मूर्तिपूजन पाप है।** मद्यपान और व्यभिचार इसी कारण से पाप है कि उनसे बुद्धि नष्ट और आत्मा अपवित्र होती है तथा दूसरे के अधिकार का हरण होता और ईश्वराज्ञा भंग होती है। इसलिये जब मूर्तिपूजन से बुद्धि नष्ट और आत्मा का पतन तथा ईश्वर का अपमान होता है तो बताइये कि मूर्तिपूजन पाप नहीं तो और क्या है? **जैसी जो वस्तु हो उसका वैसा समझना वास्तविक ज्ञान है और जड़ पदार्थों में ईश्वरभावना करनी या किसी काल्पनिक देवता का ध्यान करना या कराना पथभ्रष्टता और भ्रान्ति है।**

"मृत्यु के पश्चात् पितरों का श्राद्ध आदि"—हमारी प्रिय सभा ने श्राद्ध के विषय में एक यह वचन प्रमाण के रूप में उपस्थित किया है:—**"निवीतम्मनुष्याणां प्राचीनावीतं पितॄणाम्"** इस वचन

में न तो मरे हुए माता-पिता की कुछ चर्चा है और न श्राद्ध का शब्द आया है; फिर पता नहीं कि इससे मरे हुओं का श्राद्ध क्योंकर सिद्ध होता है ? केवल यज्ञोपवीत का इधर-उधर करना श्राद्ध का प्रमाण नहीं समझा जा सकता। **श्राद्ध और तर्पण का जो वास्तविक अभिप्राय है-- उसको हम अस्वीकार नहीं करते।** हमारा आक्षेप तो यह है कि मृतकों के लिये श्राद्ध और तर्पण करना और उनके नाम से किसी विशेष वर्ग के लोगों को बिना अधिकार की परीक्षा किये अच्छे-अच्छे प्रकार का भोजन कराना और चांदी-सोना कर के रूप में देना बुद्धि और शास्त्र के अनुसार अवैध और अनुचित है। हां, मृतकों की स्मृति में यदि कोई परोपकार का कार्य्य इस अभिप्राय से किया जाये कि **हमको मृत्यु का स्मरण रहे और हम बुराइयों से बचे रहें तो कुछ हानि नहीं।** हमारी सूक्ष्म बातों पर विचार करने वाली सभा ने जो यह वर्णन किया है कि "पितृणाम्" शब्द बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है; इसलिये उससे मृतकों का श्राद्ध सिद्ध होता है, यह युक्ति ठीक नहीं प्रतीत होती। यह शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है। प्रतीत होता है कि किसी काल में वह सम्मान और उपाधि देने तथा उनके महत्त्व और योग्यता के **वर्ग-विभाग** करने के अर्थों में भी प्रयुक्त किया जाता था और फिर परिस्थिति के परिवर्तन से वह प्रयोग स्थगित होकर उसके स्थान पर और-और शब्द प्रयुक्त होने लगे। अंग्रेजी भाषा का शब्द 'फादर' (Father) इस शब्द से एक विचित्र समानता रखता है—जिसका वर्णन रोचकता से रहित न होगा। 'फादर' शब्द पितृ शब्द से निकला है और वह लगभग उन्हीं अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है जिनमें कि 'पितृ' शब्द प्रयुक्त होता है या होता था। पहली शताब्दी में हुए ईसाईमत की पुस्तकों के लेखक और रोम की सीनेट के सदस्य 'फादर' कहलाते थे और इस समय के ईसाई मत के नेताओं अर्थात् पादरी लोगों और पहले तथा पिछले पूर्वपुरुषों के लिये भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह इस बात का एक समर्थक प्रमाण है कि 'पितृणाम्' शब्द से अभिप्राय उच्च कोटि के गुणवान् विद्वानों और बुद्धिमानों आदि से है। शतपथ ब्राह्मण में उनके आठ भेद लिखे हैं जो इस प्रकार हैं:—१—चित्त की एकाग्रता और ज्ञान की वास्तविकता के इच्छुक '**सोमसद**' कहलाते हैं।

२ - अग्नि जो समस्त पदार्थों में सबसे अधिक क्रियाशील है उसकी अवस्थाओं और गुणों का ज्ञान प्राप्त करके जो उससे अच्छी प्रकार काम ले सकते हैं उनको '**अग्निष्वात्त**' कहते हैं। ३—जो विद्या और आचार से अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके गुणों की वृद्धि में विशेता प्राप्त करते हैं वे '**बर्हिषद**' कहलाते हैं। ४—जो ओषधियों के लाभ और गुणों के ज्ञान में योग्यता प्राप्त करते हैं वे '**सोमपा**' कहलाते हैं। ५—जो अग्निहोत्र आदि यज्ञों में पूर्ण योग्यता रखते हैं वे '**हविर्भुज्**' कहलाते हैं। ६—जो उचित साधनों से शरीर और आत्मा की रक्षा करते हैं उनको '**आज्यपा**' कहते हैं। ७—जो अपना बहुमूल्य समय सदा ज्ञान और तप की शिक्षा और प्रेरणा में व्यतीत करते हैं उनको '**सुकालिन्**' कहते हैं। ८—जो सूझ-बूझ और न्यायकारिता आदि में अद्वितीय हैं वे '**यम**' कहलाते हैं।

इससे प्रकट है कि उक्त शब्द बहुवचन में ही प्रयुक्त होना उचित था। यदि इन शब्दों से अभिप्राय सृष्टि के पूर्वपुरुषों से हो तो भी '**पितृणाम्**' शब्द का सम्बन्ध मृत माता-पिता से स्थापित नहीं किया जा सकता, प्रत्युत पाया जाता है कि विचारणीय वचन में मनुष्यों और पितरों के कर्मों में एक प्रकार का भेद किया गया है। इस प्रकार का भेद 'शतपथब्राह्मण' में मनुष्यों और देवताओं में किया गया है जैसा कि '**इयं वा इदं न तृतीयमस्ति।**' '**सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः**' अर्थात् स्वभाव और गुणों की दृष्टि से मनुष्य के दो भेद हैं—देव और मनुष्य। जो सत्यवादी और सत्यमार्ग पर हैं वह देव कहलाते हैं और जो झूठे और कपटी हैं **उनको मनुष्य कहते हैं।**

पितृयज्ञ की व्याख्या—इस स्थान पर यदि पितृयज्ञ की कुछ व्याख्या की जाये तो उससे विचारणीय विषय भलीभांति स्पष्ट हो जायेगा।

विदित रहे कि पितृयज्ञ के दो भेद हैं- श्राद्ध और तर्पण। श्राद्ध वह कार्य्य है जो सच्ची श्रद्धा से किया जाए अर्थात् देव, ऋषि और पितरों की सेवा। और **तर्पण** से अभिप्राय है उनको प्रसन्न करना और प्रसन्न रखना तथा उनको सुख पहुंचाना। जो लोग विद्या, सुशीलता और सज्जनता में पूर्णता प्राप्त करके अपने पुण्य-

कर्मों से संसार में एक उदाहरण स्थापित करते हैं—वह **देव** कहलाते **हैं। ऋषि** वह हैं जो बड़प्पन और गुणों में पूर्ण योग्यता प्राप्त करके पठन पाठन का कार्य्य चालू रखते हैं। **पितृ** वह हैं जो 'इल्मुल्यकीन' (देखे बिना ही किसी वस्तु की वास्तविकता पर
५ पूर्ण विश्वास कर लेना) और 'ऐनुल्यकीन' (किसी वस्तु को देखने के पश्चात् उसकी वास्तविकता को पूर्ण विश्वास के साथ भलीभांति जानना) की अवस्थाओं में से गुजर कर 'हक्कुल यकीन' (किसी वस्तु में प्रविष्ट हो जाना या स्वयं वह वस्तु बन जाना या उसमें खो जाना) का पद प्राप्त करते हैं। इसी विषय के सम्बन्ध
१० में मनुस्मृति का एक श्लोक (मनु० २।१७६) जिसको हम बिना व्याख्या यों ही छोड़ आये हैं नीचे लिखा जाता है: —**नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम्। देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च।।**' यह श्लोक ब्रह्मचारी के सम्बन्ध में है और इस में उन कार्यों का वर्णन है जो ब्रह्मचारी को गुरु की सेवा में रहकर अपनी
१५ उन्नति के लिए करने चाहियें और उनका अगले श्लोकों में विस्तारपूर्वक वर्णन है। प्रथम प्रमाण और आदर सत्कार और सच्ची शिक्षा की वास्तविकता साधारण रूप में बतायी गयी है अर्थात् प्रतिदिन स्नान करके और पवित्र होकर देव, ऋषि और पितृ अर्थात् गुणवान् व्यक्तियों की सेवा करे और उनके गुणों का चिन्तन
२० करे जिससे उनके मन में वैसे ही गुणों को प्राप्त करने की उमंग उत्पन्न हो। शास्त्रों का सेवन अर्थात् अध्ययन करे और इन्द्रियों को वश में रखे। मूर्तिपूजन के खण्डन में हम बहुत कुछ लिख आये हैं, यहां केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि इस श्लोक से भी हमारी प्यारी सभा का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

२५ हमारी प्यारी सभा ने श्राद्ध के बारे में एक प्रमाण मनुस्मृति का दिया वह यह है: - **पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान्। पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम्।।**' **अर्थात्** पितृयज्ञ से निवृत्त होकर अग्निहोत्री ब्राह्मण प्रत्येक मास की अमावस्या में पितरों का श्राद्ध करे। यह श्लोक स्पष्टतया मनु जी का कहा हुआ
३० नहीं है; परन्तु (दुर्जनतोषन्याय) से मनु-प्रोक्त मान लिया जाय फिर भी इससे कुछ सिद्ध नहीं होता। यदि प्रत्येक मास में इस प्रकार का श्राद्ध जिसका ऊपर वर्णन हुआ है—होम की भांति

विशेषता के साथ किया जाया करे तो कुछ हानि भी नहीं । **हम किसी ऐसे कार्य्य के विरुद्ध नहीं जो एक श्रेष्ठ आदर्श स्थापित करने के अभिप्राय से ऐसे पूर्वजों की स्मृति में किया जाये जिनके महान् व्यक्तित्व से लोगों को धार्मिक और सांसारिक विषयों में लाभ पहुंचा हो या पहुंचाता हो अन्यथा देश की धन सम्पत्ति को यों ही नष्ट करना और किसी विशेष वर्ण या सम्प्रदाय को उससे किसी प्रकार का धार्मिक या सांसारिक काम किये बिना, काल्पनिक दान के रूप में मुफ्त खिलाना पिलाना और धन का व्यय करके निकम्मा और आलसी बनाना राजनीतिक सिद्धान्तों की दृष्टि से महान् अपराध है ।**

मनुस्मृति का जो एक आध अन्य प्रमाण दिया गया है उसके खंडन में कुछ लिखना व्यर्थ है क्योंकि हम उसको प्रामाणिक नहीं समझते । जो वर्ष में पन्द्रह दिन श्राद्ध किये जाते हैं—उनका कुछ वर्णन हमारी प्यारी सभा ने नहीं किया, इसलिये उनके विषय में विचार करना भी व्यर्थ है । अब हम अपने कथन के समर्थन में मनुस्मृति के चौथे अध्याय के तीन श्लोक (२३६ से २४१ तक) नीचे देकर इस विषय को समाप्त करते हैं और अपनी प्यारी जाति से अत्यन्त नम्रतापूर्वक न्याय चाहते हैं:—

'नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारा न जातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥'

अर्थ—परलोक में माता, पिता, पुत्र, स्त्री और भाई-बन्धु इन में से कोई भी सहायता नहीं कर सकता; केवल धर्म ही सहायक होता है (क्योंकि) मनुष्य अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही मरता है और अकेला ही अपने किये हुए भले-बुरे कर्मों का फल पाता है । लकड़ी और मिट्टी के ढेले के समान मृतशरीर को पृथिवी पर छोड़कर भाई-बन्धु अलग हो जाते हैं; केवल धर्म ही उसके साथ जाता है । इससे प्रकट है कि **मरने के पश्चात् मनुष्य के पुण्यकर्म ही उसके सहायक होते हैं । किसी अन्य के किए हुए श्राद्ध आदि से**

उसको कुछ लाभ नहीं पहुंचता। सृष्टिनियमों में कोई ऐसा नियम ही नहीं पाया जाता कि एक के खाने से दूसरे की तृप्ति हो। जो यहां कुछ नहीं करता उसको आगे भी कुछ नहीं मिलता। अपना किया हुआ ही काम आता है।

५ **'गंगा आदि तीर्थों में स्नान और वास करने से पाप की निवृत्ति होती है या नहीं ?'**--हमारी प्यारी सभा ने तीर्थ के विषय में एक यह प्रमाण दिया है:—'**सितासिते सरितौ यत्र संगते तत्र प्लुतासो दिवमुत्पतन्ति। ये वै तन्वा विसृजन्ति धीराः ते जनासो मृतत्वं भजन्ते॥ यत्र गंगा च यमुना च यत्र प्राची सरस्वती,**
१० **इमम्मे गंगे यमुने इत्यादि।**' इस वाक्य में जो गंगा आदि शब्द आये हैं उनको हमारी प्यारी सभा प्रसिद्ध नदियों के नाम से तीर्थ बताती है परन्तु ठीक नहीं क्योंकि शब्द सित और असित (श्वेत और काला) जो आरम्भ में विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं--वही हमारी इस प्रतिष्ठित सभा के काल्पनिक तीर्थों की असारता
१५ सिद्ध करते हैं। **वास्तव में गङ्गा आदि से अभिप्राय श्वास यन्त्रों से है; जिनको इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा भी कहते हैं। यह योगसाधन की नाड़ियां हैं जिनसे योग के इच्छुक प्राणायाम और ध्यान आदि द्वारा बीच की सीढ़ियों को पार करके मन की स्वच्छता प्राप्त करते हैं और समाधि में स्थित होकर परमात्मा का साक्षात् करते**
२० **हैं।** विचाराधीन वचन का अभिप्राय यह है कि जहां दो श्वेत और काली नदियों (इड़ा और पिंगला) का मेल होता है अर्थात् अन्धकार (विषयवासना का राज्य) की सीमा समाप्त होकर ज्ञान का प्रकाश आरम्भ होता है वहां अद्वैत की लहरों में डुबकी लगाकर योगी लोग ब्रह्मलोक में भ्रमण करते हैं और पवित्र योगमार्ग में
२५ चलने वाले जो लोग सांसारिक विषयों का परित्याग करते हैं वे शाश्वत सुख प्राप्त करते हैं। वास्तव में यही वे बड़े तीर्थ हैं जो मनुष्य की आत्मा को पापों से रहित, अत एव पवित्र कर के अनन्त आनन्द प्रदान करते हैं। **तीर्थ के अर्थ हैं तैराने का उपकरण।** नदियों को तैराने का उपकरण नहीं माना जा सकता;
३० इसके विपरीत (उन्हें) डुबोने का (साधन) कहना ही उचित है। सत्यशास्त्रों में तीर्थ से अभिप्राय परमेश्वर, गुरु, विचार, सत्यशास्त्र, भक्ति, उपासना, योग आदि से है और वास्तव में यही

मुक्ति के साधन हैं। **फिर यदि गङ्गा आदि शब्दों के यौगिक अर्थों की ओर ध्यान दिया जाय तो उनसे भी हमारी बात का समर्थन होता है। आश्चर्य तो यह है कि उनके समानार्थक इडा पिंगला, सुषुम्ना के यौगिक अर्थ भी क्रमशः लगभग वैसे ही पाए जाते हैं। यही दशा रेचक, पूरक, कुंभक शब्दों की है जो योगदर्शन में प्रयुक्त होते हैं।** उनकी व्याख्या यहां व्यर्थ है, प्रत्येक व्यक्ति कोष की पुस्तकों को देखकर अपना सन्तोष कर सकता है। **फिर यह बात भी वर्णन करने योग्य है कि** पुराणों के अनुसार गङ्गा भागीरथ के काल से चली है। भागीरथ राजा सगर की तीसरी पीढ़ी में हुआ है और वह उसे अपने पितरों की मुक्ति के लिये स्वर्ग से लाया था और अपने संकल्प में सफल हुआ। यदि इस कथा को सत्य माना जाये तो दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं। एक यह कि जो लोग भगीरथ के काल से करोड़ों वर्ष पहले इधर-उधर मर चुके थे, उनकी क्या गति हुई और यदि भगीरथ उसे अपने ही पितरों की मुक्ति के लिये लाया था तो उससे हमारा क्या सम्बन्ध है? दूसरे यह कि वेद जो सनातन माना जाता है उसमें गङ्गा शब्द उन अर्थों में जो उस पर लागू किये जाते हैं– क्योंकर प्रयुक्त हुआ? वास्तविकता यह है कि यह सब ढकोसले वेद की शिक्षा के विरुद्ध हैं। यह भी विदित रहे कि विचाराधीन वचन ऋग्वेद संहिता का नहीं, प्रत्युत उसके एक व्याख्यान का है। कदाचित् यही कारण है कि उस का पता नहीं बताया गया।

तीर्थ की मीमांसा—हमारी प्यारी सभा ने तीर्थों के विषय में मनुस्मृति का एक यह श्लोक प्रमाण के रूप में उपस्थित किया है:—**यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः। तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गां मा कुरून्गमः।**'

हम चकित हैं कि हमारी विदुषी सभा ने क्या समझ कर इस श्लोक को तीर्थों का प्रमाण निश्चित किया है। यहाँ तो इसके विपरीत उसका खंडन पाया जाता है; कहा है गङ्गा कुरुक्षेत्र मत जाओ। यह श्लोक मनुस्मृति के आठवें अध्याय के उस स्थान का है जहां साक्षी के अतिरिक्त शपथ लेने और झूठ बोलने के दण्ड आदि

का वर्णन है। इस श्लोक और उससे ऊपर के श्लोक में अगले पिछले श्लोकों के सम्बन्ध में साधारण रूप से झूठ से बचने की प्रेरणा की गयी है दोनों का अर्थ यह है कि यदि तुम समझते हो कि मैं अकेला हूं तो ऐसा नहीं क्योंकि तुम्हारे भीतर पाप और
५ पुण्य को देखने वाला मुनीश्वर सदा विद्यमान रहता है। ऐसा जो पवित्र तेजोमय वकील तुम्हारे भीतर विद्यमान है उसके साथ यदि तुम्हारा झगड़ा नहीं तो गङ्गा और कुरुक्षेत्र मत जाओ (अर्थात् उस मुनीश्वर की शिक्षा के अनुसार चलो और झूठ न बोलो, यही मूल बात है और गङ्गा आदि जाने से कुछ नहीं होता)।

१० वास्तव में मूल अभिप्राय पहले ही श्लोक में आ जाता है और फिर उसी बात को दूसरे श्लोक में दुहराना व्यर्थ था। इसीसे प्रतीत होता है कि यह श्लोक मनु जी का कहा हुआ नहीं प्रत्युत उस काल का बढ़ाया हुआ है जब स्वार्थ या भ्रान्ति से काल्पनिक तीर्थों और मूर्तिपूजा को प्रचलित किया गया था। **यह भी विदित**
१५ **रहे कि इस स्थान के अतिरिक्त सारी मनुस्मृति में कहीं गङ्गा का नाम भी नहीं आया है।** भला जिस अवस्था में कि मनुजी ने छोटी-छोटी बातों के वर्णन में श्लोकों के श्लोक लिख मारे हैं तो यदि यह काल्पनिक तीर्थयात्रा और मूर्तिपूजन (जिसका आजकल इतना प्रचार है और जिसके कारण वास्तविक धर्म हमको छोड़कर चला
२० गया है) उनकी दृष्टि में वैध होता या यदि उनके समय इसका प्रचार होता तो इसके विषय में दो चार श्लोक लिख देने कौन बड़ी बात थी? वास्तव में मनु जी ने धर्म और मोक्ष के जो सिद्धान्त लिखे हैं उनका ऐसी बातों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

इन काल्पनिक तीर्थों का खंडन तो भागवत जैसे ग्रन्थ में भी
२५ **पाया जाता है**; जैसा कि हम ऊपर वर्णन कर आये हैं अर्थात् जो मनुष्य पानी को तीर्थ समझता है और विद्वानों को नहीं वह गधा है। फिर देखो: —**इदं तीर्थमिदं तीर्थं भ्रमन्ति तामसा जनाः। आत्मतीर्थं न जानन्ति कथं मुक्तिर्वरानने ॥'** **अर्थात्**—यह तीर्थ है, वह तीर्थ है—अविद्वान् और तमोगुणी लोग ऐसा कहते फिरते हैं, वह
३० आत्मा के तीर्थ को नहीं जानते, उनकी मुक्ति क्योंकर हो सकती है अर्थात् नहीं हो सकती।

इस बारे में अब और अधिक लिखना व्यर्थ है, केवल मनु जी

का एक वचन साधारण सिद्धान्त के रूप में नीचे लिखा जाता है:—

'अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥'

अर्थः—जल से शरीर के अङ्ग शुद्ध होते हैं मन सत्य से पवित्र होता है, विद्या और उपासना से आत्मा पवित्र होती है, ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है । ५

यह श्लोक व्याख्या की आवश्यकता नहीं रखता । यदि गङ्गा-स्नान से पाप छूट सकते हैं और स्वर्ग मिल सकता है तो उपासना आदि कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता है ? इधर हत्या की, चोरी की, व्यभिचार किया उधर गङ्गा में नहाए और पवित्र हुए और स्वर्ग प्राप्ति इसके अतिरिक्त । १०

पापों से छूटना तो एक ओर रहा, इसके विपरीत ऐसे विश्वास से तो पापों की प्रेरणा होती है और पाप करने का साहस बढ़ता है। आप हजार ऐसे जाल बिछायें और लोगों को भ्रमायें परन्तु:— **'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'** । पापों का फल प्रत्येक को अवश्य भोगना पड़ेगा । १५

तीसरा प्रश्न

पण्डित महेशचन्द्र जी ने यह प्रश्न किया कि 'अग्निमीडे पुरोहितं' **आदि मन्त्रों में अग्नि शब्द से अभिप्राय परमात्मा से है या (भौतिक) आग से ?** २०

उत्तर—**इसके उत्तर में पण्डित रामसुब्रह्मण्य शास्त्री ने कहा कि इस मन्त्र में जो 'अग्नि' शब्द आया है उससे अभिप्राय 'जलाने की आग' (भौतिक अग्नि) से है । यदि इसके यौगिक अर्थ करें तो वे 'पूर्व मीमांसा' के 'रथकाराधिकरणवत्'—इस सूत्र के विरुद्ध होते हैं; इसलिये इस मन्त्र में अग्नि शब्द से भौतिक अग्नि ही अभिप्रेत है ।** २५

आर्यसमाज की ओर से प्रत्युत्तर—हमारी प्यारी सभा कहती है कि इस मन्त्र में जो 'अग्नि' शब्द आया है उसका अभिप्राय 'जलाने की आग' है, परमेश्वर नहीं । परन्तु इस बात को अस्वीकार नहीं किया गया कि यह शब्द कहीं भी परमेश्वर के अर्थों में नहीं आया है । यहां भी वही 'रथकार' आदि की युक्ति उपस्थित ३०

की गयी है जिसका हम ऊपर खण्डन कर चुके हैं। हमारी समझ में तो जैसा अवसर होता है वैसे (प्रकरणानुसार) अर्थ लिये जाते हैं। ऐसे ही एक विशालबुद्धि पण्डित ने जो वर्षों काशी में पढ़कर आया था— साधारण रूप से मृग का अर्थ हिरण जानते हुए **'मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति'** वाले भर्तृहरि जी के श्लोक का अर्थ मनुष्य की आकृति वाले हिरण किया गया था और ऐसे ही भट्टाचार्यों के लिए संस्कृत वालों ने 'सैन्धवमानय' वाला उदाहरण रखा हुआ है। जो पूर्वापर प्रसंग को देखे बिना किसी वाक्य का अर्थ करते हैं— उन्हें बुद्धिमानों के सामने लज्जित होना पड़ता है। **सर्वांश में कोई नियम निश्चित नहीं किया जा सकता कि सब स्थानों में रूढ़ि अर्थ लिये जायें अथवा यौगिक।** व्याकरण जानने वाले उन अर्थों को महत्व देते हैं जो धातु-प्रत्यय के नियमों से बन सकते हैं और यही विधि ऋषियों के काल में प्रचलित थी। अग्नि शब्द के रूढ़ि और यौगिक दोनों अर्थ लिये जाते हैं। इस शब्द के विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने अपनी 'भ्रान्ति-निवारण' पुस्तक में (जो उन्होंने साधारणतया समस्त पण्डितों और विशेषतया पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न के खण्डन में लिखी है) तथा अन्य पुस्तकों में भी इतने विस्तार के साथ विचार किया है कि किसी न्यायप्रिय मनुष्य को कोई सन्देह शेष नहीं रह जाता और यही कारण है कि न 'सन्मार्ग-दर्शनी' के तीन सौ पण्डितों ने और न भारतवर्ष के समस्त पण्डितों ने आज तक उनका खण्डन किया है। फिर भी हम केवल दो-तीन अन्य प्रमाण यहां लिख देना ही पर्याप्त समझते हैं—**'अग्निर्द्रविणोदा-अश्वोवायुः-श्येनोऽश्विनौषध इति।'** (निघण्टु अध्याय ५) अर्थात् (इस वाक्य में परिगणित) अग्नि आदि सभी शब्द ब्रह्म के समानार्थक हैं। इसी प्रकार देखिए **'ब्रह्म ह्यग्नि'** —(शतपथ ब्रा० १, ४, २, ११)। **'आत्मा वा अग्निः'**—(शतपथ ब्रा० ७, ३, ३, २)॥ आदि।

चौथा प्रश्न

पण्डित महेशचन्द्र जी ने पूछा कि अग्निहोत्र आदि यज्ञों का लक्ष्य जल और वायु की शुद्धि है या कि स्वर्ग आदि में पहुंचना ?

उत्तर—**पण्डित राम सुब्रह्मण्य शास्त्री** जी ने कहा कि 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः, ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत' **आदि यजुर्वेद**

के मन्त्रों से अग्निहोत्र आदि यज्ञ स्वर्गसाधक हैं अर्थात् उनके करने से स्वर्ग प्राप्त होता है।

आर्यसमाज की ओर से प्रत्युत्तर—यदि स्वर्ग से सुख का प्राप्त होना अभिप्रेत है जैसा कि कोष में इस शब्द के अर्थ हैं तो हमें कोई आपत्ति नहीं और यदि उससे अभिप्राय हूर और गिल्मां (मोतियों के रंग वाले लड़के) के विश्रामस्थल और इन्द्रियों के विषय की **पूर्ति करने वाले स्थान से है तो हम उसको स्वीकार नहीं कर सकते।** होम आदि से तत्काल मुक्ति नहीं मिल सकती। प्रत्युत यह तो शारीरिक सुख और सांसारिक आनन्द तथा परोपकार के साधन हैं और ऐसा ही समस्त ऋषि-मुनि मानते चले आये हैं। इससे स्पष्ट प्रकट है कि अग्निहोत्र आदि यज्ञों के अनुष्ठान से जल, वायु की शुद्धि और उसके द्वारा सुख होता है।

हां, यदि यह कहो कि होम में जो वेदमन्त्र पढ़े जाते हैं उनसे प्रार्थना उपासना; और प्रार्थना-उपासना से ईश्वरप्राप्ति होती है तो निस्सन्देह, इस प्रकार क्रमश: तो वह भी मुक्ति का एक कारण हो सकता है। अथवा—आत्मिक होम मुक्ति का कारण होता है। इसलिये मनु आदि सत्यशास्त्रों और उपनिषदों में लिखा है कि **इन्द्रियों का होम मन में करे और मन का आत्मा में और आत्मा का परमात्मा में करे।** और ऐसा ही महात्मा व्यास जी ने भी लिखा है।

पांचवां प्रश्न

पण्डित महेशचन्द्र जी ने पूछा कि वेद के ब्राह्मण भाग का अपमान करने से पाप होता है या नहीं ?

उत्तर—**पण्डित राम सुब्रह्मण्य शास्त्री ने उत्तर दिया कि यह तो हम पहले प्रश्न के उत्तर में लिख चुके हैं कि ब्राह्मणभाग भी वेद ही है। फिर ब्राह्मणभाग का अपमान करने से मानो वेद का अपमान हुआ और मनु ने वेद के अपमान के विषय में लिखा है।**

आर्यसमाज की ओर से प्रत्युत्तर—जो श्लोक पंडित जी ने उपस्थित किया है उसका वास्तविक अर्थ यह है कि पढ़े हुए वेद को भूल जाना, वेद की निन्दा करना, झूठी साक्षी देना, मित्र को पीड़ा पहुंचाना, अपवित्र भोजन करना, मद्य पीना - यह छहों समान पाप हैं। हमारी अन्वेषिणी सभा कहती है कि जो पाप मद्य पीने

वाले को होता है वही पाप वेद का अपमान करने वाले को होता है। यह बात बुद्धि के अनुकूल है परन्तु देखना तो यह है कि वह वेद का अपमान करने वाला कौन है ? स्वामी दयानन्द सरस्वती या उसके विरोधियों का विशाल समूह ? इस बात का निर्णय करने के
५ लिये आवश्यक है कि दोनों पक्षों के कुछ वचनों का यथार्थ रूप में वर्णन किया जाये।

विदित रहे कि दोनों पक्ष **वेद को प्रामाणिक मानते हैं और ईश्वरीय वचन समझते हैं।** विवाद तो इस विषय में है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती केवल संहिता को वेद और ब्राह्मणों को उनके
१० व्याख्यान कहते हैं और हमारी प्यारी सभा दोनों को समष्टि रूप से वेद मानती है। स्वामी जी कहते हैं कि वेद में मूर्तिपूजन, ईश्वर का अवतार, मृतकश्राद्ध और गंगा आदि तीर्थों का कोई उल्लेख नहीं है प्रत्युत उनका खण्डन पाया जाता है। हमारी प्यारी सभा इन बातों में वेद का विधान मानती है और शिवलिंग, शालिग्राम
१५ आदि की पूजा को एक सिद्धान्त बताती है। स्वामी जी वेद के सिद्धान्तों के अनुसार ईश्वरोपासना सिखाते हैं और हमारी प्यारी सभा प्रकृतिपूजा की शिक्षा देती है। स्वामीजी वेद को स्वतः प्रमाण और अन्य ग्रन्थों को परतः प्रमाण मानते हैं और हमारी प्यारी सभा समस्त शास्त्रों और ग्रन्थों को वेद के बराबर प्रामा-
२० णिक मानती है। स्वामीजी समस्त धार्मिक और सांसारिक विषयों में बुद्धि को हस्तक्षेप उचित बताते हैं और हमारी प्यारी सभा बुद्धि के पांवों में शास्त्राज्ञा की बेड़ी डालकर उसको गिराना चाहती है। स्वामीजी कहते हैं कि वेद के पढ़ने-पढ़ाने का समस्त मनुष्य जाति का समान अधिकार है और हमारी प्यारी सभा उसे
२५ अपनी व्यक्तिगत पैतृक दाय समझती है। इन सब बातों पर ऊपर विस्तार के साथ विचार हो चुका है और यहां उसकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं। अब हम इस बात का निर्णय – कि वेद का अपमान करने वाला कौन ठहरता है—अपने न्यायप्रिय पाठकों पर छोड़ते हैं और इस लेख को इस प्रार्थना पर समाप्त करते हैं कि हे
३० परमात्मन् ! तू अपनी कृपा से समस्त मनुष्यजाति को और विशेषतया भारत को (जिसे बुद्धि की अधिक आवश्यकता है) – वह बुद्धि का प्रकाश प्रदान करे जिसके लिये वेद के बीजमन्त्र गायत्री में

प्रार्थना की गयी है ताकि मूर्खता और अनेकेश्वरवाद का अन्धकार दूर होकर तेरे ईश्वरत्व और एकेश्वरवाद का तेज प्रस्फुरित हो और उलझे हुए विचारों और झूठे भ्रमों के स्थान पर एकता और वास्तविकता की लहरें मन में उठें।

—:o:—

द्वितीय परिशिष्ट ५

मूल पाठ पर अवशिष्ट टिप्पणियां

पृष्ठ ८, पं० ६-७ - **तत्रैका भृगुसंहिता सत्या वेदितव्या** - ऋ० द० भृगुसंहिता को ज्योतिषशास्त्र का प्रामाणिक ग्रन्थ मानते थे। इस विषय में पृष्ठ ८-९ पर दी संख्या १ की टिप्पणी के अन्त से पूर्व अर्थात् 'स्वीकार करता हूं' (पृ० ९, पं १२) के आगे अगला १० अंश और जोड़ लें—

ऋषि दयानन्द ने ८ अक्तूबर सन् १८७९ को फर्रुखाबाद के पौराणिक विद्वानों के २४ प्रश्नों के जो उत्तर दिये थे उन में १३ वां प्रश्न और उस का उत्तर (द्र० —पूर्ण संख्या ३४९, पृष्ठ ३८५) द्रष्टव्य है। उसमें 'भृगुसिद्धान्त' को आप्त प्रामाणिक ग्रन्थ और १५ उस में 'केवल गणित विद्या' का निर्देश माना है।

पृष्ठ २०, पं० २४ के लेखानुसार **प्रतिमा पूजन विचार— हुगलीशास्त्रार्थ सं०** १९३० में बा० हरिश्चन्द्र ने छपवाया था। ये बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य में प्रख्यात भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आरम्भ में ऋ० द० के घोर विरोधी रहे। २० विरोध में पुस्तकें भी लिखीं, परन्तु शीघ्र ही वे उनके प्रशंसक बन गये। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रकाशित की जाने वाली 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' पत्रिका के मुख पृष्ठ पर सम्पादक मण्डल में 'स्वामी दयानन्द' का नाम भी छपता था।

पृष्ठ ३५, पं० ७ - 'उनका वचन सत्य ही है' पर टिप्पणी— २५

रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तास्तपोज्ञानबलेन ये।
येषां त्रिकालममलं ज्ञानमव्याहतं सदा ॥१८॥
आप्ताः शिष्टा विबुद्धास्ते तेषां वाक्यमसंशयम्।
सत्यं वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्यं नीरजस्तमाः ॥१९॥

आयुर्वेदीय चरक सं० सूत्र० अ० ११॥ ३०

अर्थात् जो तप और ज्ञान के बल से रजोगुण और तमोगुण से रहित हैं जिनका त्रैकालिक निर्मल अव्याहत (यथावत्) ज्ञान है ऐसे आप्त शिष्ट और विद्वान् हैं उनका वचन असंशय सत्य है। वे रजोगुण और तमोगुण से रहित आप्त जन असत्य क्यों कहेंगे।

५ पृष्ठ ५४, पं० ८–'पूर्व ग्यारह लक्षणयुक्त जो धर्म कहा... ' पर टिप्पणी–

यहां 'पूर्व' शब्द से सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण (सन् १८७५) की ओर संकेत है क्योंकि प्रकृत विज्ञापन उसी की हस्तलिखित प्रतिलिपि के अन्त में है। **ग्यारह लक्षण युक्त धर्म**–ऋ० १० दयानन्द ने मनुस्मृति ६।६१ में उक्त दश लक्षणों में अहिंसा का समन्वय करके धर्म के ११ लक्षण कहे हैं। द्र०–स० प्र० (सन् १८७५), पृष्ठ १६६-१७०, पूना प्रवचन, तीसरा प्रवचन, पृष्ठ १४ (रा० ला० क० ट्र० सं०), संस्कारविधि प्रथम संस्करण (सन् १८७५) पृष्ठ १३७, सं० विधि संशोधित सं०, पृष्ठ ३० (रा०ला० १५ क० ट्र०–सं०)।

पृष्ठ ५५, पं० ८-९–'सुश्रुत का आहारविध्यध्याय और पाक करने के अध्याय'–ये अध्याय अन्वेषणीय हैं।

पृष्ठ ५५, पं० २५-२६–'परन्तु इस्से अधिक जिस देश में अपना जन्म हुआ होय' पर टिप्पणी–

२० आजकल के आर्यसमाज के नेता मानवतावाद के झोंके में बह कर उदारतावादी बनकर भूमण्डल के उत्थान की बात करते हैं। उन्हें ऋ० द० का यह वचन ध्यान से पढ़ना चाहिये। इसी प्रकार ऋ० द० ने स० प्र० के एकादश समुल्लासान्तर्गत ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज की आलोचना (पृष्ठ ५९१—६०१) में भी लिखा है २५ (द्र०–पृष्ठ ५९१, ५९२, ६०१)।

पृष्ठ ६२, पं० २६—**विष्णु स्वामी**–इस पर टिप्पणी विष्णु बावा ब्रह्मचारी ने '**वेदोक्तधर्मप्रकाश**' नामक एक ग्रन्थ कलि सं० ४९६०=वि० सं० १९१६ में लिखा था। इसमें अवतारवाद और मूर्तिपूजा के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों पर ग्रन्थकार की दृष्टि ३० उदार है। पाश्चात्य मत का खण्डन भी उक्त ग्रन्थ में किया है। इस के मराठी में दो संस्करण छपे हैं (दोनों मुम्बई मराठी ग्रन्थ

संग्रहालय, दादर बम्बई में विद्यमान हैं)। हिन्दी (व्रजभाषा) का सं० १९२६ में छपा था। यह हमारे संग्रह में विद्यमान है।

पृष्ठ ६९, पं० २०—**संस्कार की चोपड़ी बनाने**—इस विषय में पूर्ण सं० ६२ का पत्र (पृष्ठ ८०, पं० १७) भी देखें।

पृष्ठ ७०, पं० ४—'गान की चोपड़ी' अर्थात् 'प्रार्थना समाज' ५ के गान की पुस्तक। द्र०—पृष्ठ ६८, पं० १०।

पृष्ठ ७४, पं० २८—**विरोधी नहीं रहे**। इस के आगे बढ़ावें—

इन्दुप्रकाश के सम्पादक विष्णु शास्त्री ने शीघ्र ही ऋ० द० का विरोध छोड़ दिया था ऐसा **लोक हितवादी** पत्रिका के जनवरी फर्वरी १८८४ के अङ्क में पं० गोपालराव हरिदेशमुख ने स्पष्ट १० लिखा है। विष्णुशास्त्रीजी ने आ० स० मुम्बई में 'आर्यवैद्यशास्त्रनी उत्कृष्टता' विषय पर ३ भाग में व्याख्यान दिये थे। द्र०—आर्य्य-समाजनो नियम पृष्ठ ३२।

पृष्ठ ७५, पं० ३—**उन नियमों में दो नियम बढे हैं**—

ये २८ मूल नियम और उनका व्याख्यान सन् १९३३ में छपे १५ 'मुम्बई समाजनो इतिहास' के पृष्ठ १०-२१ तक छपे हैं। इन्हें इस संग्रह के अगले 'तृतीय परिशिष्ट' में भी हम दे रहे हैं।

एक विवाहादि उत्साह० यह नियम २७ वीं संख्या पर छपा है। **दूसरा—जब तक नौकरी०** यह नियम २६ संख्या पर मिलता है। २०

पूर्ण संख्या ५७,पृष्ठ ७६, पं० १२—**आर्यसमाज के नियम और उसकी व्याख्या पुस्तक छपता है**' पर टिप्पणी—

यह नियम और व्याख्या की पुस्तक हमें स्वतन्त्र रूप से छपी हुई प्राप्त नहीं हुई। सन् १९३३ में प्रकाशित 'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास' के रचयिता श्री दामोदरदास सुन्दरदास को प्राप्त हुई २५ थी। उसी आधार पर उन्होंने उक्त इतिहास में पृष्ठ २०-२१ तक नियमों और उनके व्याख्यान को गुजराती अक्षरों में छपवाया है। हम इस दुर्लभ ऐतिहासिक वस्तु का आगे 'तीसरे परिशिष्ट' में सुरक्षा की दृष्टि से पूर्ण रूप से अर्थात् नियम और व्याख्यान दोनों को छाप रहे हैं। ३०

पृष्ठ ९४—**विज्ञापनपत्रमिदम्**—पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ २९२ पर लिखा है—'दोनों विज्ञापन छपवाने का

प्रबन्ध किया।' ये दोनों विज्ञापन कौन से थे, यह हमें ज्ञात नहीं हो सका। प्रकृत विज्ञापन १४ अगस्त १८७६ से ३-४ मास पश्चात् बरेली में लिखा गया था।

पृष्ठ २८२ पं० १४—'आपकी नम्बरी १६४-२० सि० की' ५ पाठ के विषय में—'दानापुर में ऋ० द०' पुस्तक के पृष्ठ २६ में मुद्रित पत्र में '२० सि०' के स्थान में '२१ सितम्बर' छपा है। कौन सी तारीख शुद्ध है यह मूल पत्र से ही जाना जा सकता है। 'दानापुर में ऋ० द०' पुस्तक में भी मुद्रण प्रमाद पर्याप्त हैं।

पृष्ठ २८३, पं० २५—'मेरठ आर्यसमाज की स्थापना' विषयक १० ज्ञातव्य—

पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० पृष्ठ ५०१ पर 'मेरठ में आर्यसमाज की स्थापना २९ सितम्बर १८७८ में हुई थी' ऐसा लिखा है। पं० लेखराम कृत जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ ४४८ पर 'असौज वदी ३ सं० १९३५ तदनुसार २९ सितम्बर सन् १८७८ १५ में' मेरठ समाज की स्थापना लिखी है। यह दोनों लेख अशुद्ध हैं। पूर्ण संख्या २२२ (पृष्ठ २८२) पर छपे मेरठ से २३ सितम्बर ७८ को बाबू माधोलाल को लिखे पत्र में स्पष्ट लिखा है—**यहां पर आर्य्यसमाज हो गया है**। अतः मेरठ में आ० स० की स्थापना निश्चय ही २३ सितम्बर १८७८ से पूर्व हुई थी। पं० लेखराम कृत २० जी० च० में 'असौज वदी ३ सं० १९३५ तदनुसार २९ सितम्बर सन् १८७८' लिखा है। असौज अर्थात् आश्विन बदी ३ को १४ सितम्बर १८७८ शनिवार था। २९ सित० को आश्विन सुदी ३ थी। हमारा विचार है कि लेखराम जी का 'असौज बदी ३' लिखना ठीक है। उस से अंग्रेजी तारीख की तुलना में भूल हुई २५ है।

पृष्ठ ३९७, पं० १८—'विज्ञापन तुमने छपवा लेने नमूना भेजते हैं' ······ मुरादाबाद से विज्ञापन बाबत ······' पर टिप्पणी—

'दानापुर में ऋ० द०' पुस्तिका में पृष्ठ ३८ पर माधोलाल के नाम लिखे पत्र को छापते हुए सम्पादक विभुमित्र शास्त्री ने ३० टिप्पणी 'मुरादाबाद का विज्ञापन इस प्रकार था' लिखकर 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के पूर्ण संख्या ३४५ (पृ० ३८२) पर

छापे गये विज्ञापन को छापा है। यह सम्पादक की भूल है। उक्त विज्ञापन मुरादाबाद में नहीं लिखा गया था अपितु शाहजहांपुर में दिया गया था। मुरादाबाद का विज्ञापन प्रेस खोलने के सम्बन्ध में मुंशी इन्द्रमणि ने छपवाया था उसी की ओर यह संकेत है। द्र०—पूर्व पृष्ठ २६० की पङ्क्ति २३ से आगे का पाठ। ५

पृष्ठ ५०५, पं० ११-१२—'... **विज्ञापन ही वि[ज्ञापन] छपवा डाले। नहीं छापने योग्य बातें छापीं।'** इस पर टिप्पणी—

यहां जिस विज्ञापन के छापने पर ऋ० द० ने अप्रसन्नता प्रकट की है वह विज्ञापन यजुर्वेदभाष्य के अङ्क १६-१७ (सम्मिलित) के आवरण पत्र पृष्ठ ४ पर **बड़ा भारी विज्ञापन (अवश्य देखने योग्य)** १० शीर्षक से मुंशी बख्तावरसिंह ने छपवाया था। इसे हम तीसरे परिशिष्ट में पूर्ण संख्या ४३७, पृष्ठ ४७४, पं० २-३ के प्रसंग में दे रहे हैं।

पृष्ठ ५१५, पं० २८—१६ सितम्बर १८८० के आगे बढ़ावें—पूर्णसंख्या ४६३,पृष्ठ ५१७, पं १४ में '**१२ गुरुवार**' का ही निर्देश १५ है। परन्तु पूर्ण संख्या ४६५, पृष्ठ ५१८, पं० २१ में 'भाद्रसुदी १२ बुधवार' का निर्देश ही मिलता है।

पृष्ठ ५१६, पं० ९ **मथुरा से दूसरा पण्डित बुलाया है**—इस पण्डित का निर्देश पृष्ठ ५२७, पं० १३ में भी है।

पृष्ठ ५२३, पं० ८-९ **डाक्टरमासिनाम्ना** ये लन्दन की २० थियोसोफिकल सोसाईटी के प्रधान थे। पूर्व पृष्ठ २१३ पर पूर्ण संख्या **१७४**, १७५ के विषय में लिखा है—'दो पत्र इङ्गलैण्ड भेजे गये'। सम्भवतः १ पत्र डा० मासि को भेजा गया होगा। दयानन्द दिग्विजयार्क भाग ३ पृष्ठ ९१ पर डा० सी. सी. मैसी साहब के थियोसोफिकल सोसाइटी से इस्तीफा देने का उल्लेख किया है। २५ डा० मैसी ने जिस कारण इस्तीफा दिया था। उसे दयानन्ददिग्विजयार्क भाग ३ पृष्ठ ९१, ९२ (आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट देहली द्वारा प्रकाशित संस्करण, पृष्ठ ७४९) पर देखें।

पृष्ठ ५२७, पं० १३—**एक पंडित मथुरा से आया था**—इसका उल्लेख पूर्व पृष्ठ ५१६, पं० ९ में भी है। ३०

पृष्ठ ५४१, पं० २७ 'मिलता है।' से आगे बढ़ावें—'अगला पूर्ण संख्या ४९२, (पृष्ठ ५४३-५४७) जो पत्र ऋ० द० ने स्व-

हस्ताक्षर से भेजा था, उसके पृष्ठ ५४४, पं० ८-९ में 'मैंने इससे पहले पत्र में लिख··· ' का उल्लेख मिलता है।

पृष्ठ ६०५, पं० ११—**कलकत्ते की सभा**—इस सभा में ऋ० द० पर किये गये आक्षेपों का उत्तर हमने प्रथम परिशिष्ट में पृष्ठ ५ ९५९ पर छापा है। पं० लेखराम के निर्देशानुसार यह उत्तर ऋ० द० ने दिया था।

पृष्ठ ६०६, पं० २६—**आगे छापे जा रहे**—इस पर टिप्पणी—यह ओषधिपत्र आगे पूर्ण संख्या ९३७ पर पृष्ठ ९४८-९५३ तक छपा है।

१० पृष्ठ ६६७, पं० १०—**'तीन दिन पश्चात् वार्षिक उत्सव'** इस पर टिप्पणी—चैत्र शुक्ला १ को उत्सव मनाया गया। इसके संबन्ध में हमने आगे चौथे परिशिष्ट 'आर्यसमाज की स्थापना तिथि' में विस्तार से लिखा है।

पृष्ठ ६६७, पं० ११-१२—**'दानापुर से तीन सभासद यहां १५ उत्सव पर आवेंगे'** इस पर टिप्पणी—तीन के स्थान में चार सदस्य बम्बई पहुंचे। इनके नाम थे—बाबू माधोलाल, बाबू जनकधारी-लाल, बाबू रामनारायणलाल और पं० आदित्यनारायण। ये लोग २० मार्च १८८२ को बम्बई पहुंचे थे। 'दानापुर में ऋ०द०' पुस्तक के पृष्ठ ६५ पर इन लोगों का २ मार्च को बम्बई पहुंचना लिखा है, २० वह भूल है। ऋ० द० ने जिस पत्र में इन के सम्मिलित होने की सूचना दी है वह चैत्र वदी ९ - १७ मार्च १८८२ है। इससे स्पष्ट है कि ये लोग १७ मार्च के पश्चात् बम्बई पहुंचे थे।

पृष्ठ ६७०, पं० ६ कर्नल आल्काट के नाम पूर्ण संख्या ६४० का पत्र—

२५ यह पत्र ऋ० द० ने बाबू जनकधारीलाल से लिखवाया था (द्र०—'दानापुर में ऋ० द०' पृष्ठ ६६)। यह पत्र मूलतः अंग्रेजी में लिखा गया था।

पृष्ठ ६८१, पं० २—**कोटहूमीलाल**—इस पर नई टिप्पणी बढ़ावें—आगे पूर्णसंख्या ८६३ के पत्र में पृष्ठ ८८२, पं० २६ में ३० 'कुतुहंबीलालसिंह' नाम आया है। दयानन्ददिग्विजयार्क भाग ३, पृष्ट ९० पर 'कुटुम्बीलालसिंह' और ९२ पर 'कुटुम्बीलाल' नाम

मिलता है। आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का नया सं० पृष्ठ १४८, १४९।

पृष्ठ ६९७, पं० २४—'**टाइटल पेज**' इसके आगे बढ़ावें—'पर ऋषि दयानन्द के हस्ताक्षर से युक्त'।

पृष्ठ ६९७, पं० २६—'छपा है' के आगे बढ़ावें—'**इसके साथ देशहितैषी और आर्य का भी विज्ञापन छपा है'।** ५

पृष्ठ ७७३, पं० ३—**इन्द्रमणि जी के विज्ञापनरूप**—इस पर टिप्पणी देवें—इन्द्रमणि द्वारा प्रकाशित विज्ञापन तीसरे भाग में देखें।

पृष्ठ ७८०, पं० २०—'**सुरक्षित किया है**' के आगे बढ़ावें— १० सेवकलाल कृष्णदास के १९ तथा २० जनवरी १८८३ के पत्र तीसरे भाग में देखें।

पृष्ठ ७९६, पं० १—'**वे श्रीमान् महाराणा जी के पास भेज देंगे**'—इस पर टिप्पणी देवें—

'यह महाराणा उदयपुराधीशों को धन्यवाद का पत्र कई आर्य १५ समाजों की ओर से भेजा गया। यह धन्यवाद-पत्र दयानन्द दिग्विजयार्क भाग ३, पृष्ठ १४९-१५१ (नया सं० पृष्ठ १७९-१८०) पर छपा है। इसे तथा इसका महाराणा जी की ओर से दिया गया उत्तर तीसरे परिशिष्ट में देखें।

पृष्ठ ८०२, पं० ४—'**बारा [१२] मार्च की लिखी हुई चिट्ठी २० आई**'—इस पर टिप्पणी—वह चिट्ठी हमें नहीं मिली।

पृष्ठ ८०२, पं० ६-७—'**शुद्धि-पत्र........जिल्दें बंधवाने का लिखा सो अच्छा किया**'-इस पर टिप्पणी—

'शुद्धि-पत्र वेदभाष्य के ग्राहकों को भेजने और वेदभाष्य की जिल्दें बंधवाने के सम्बन्ध में ऋग्वेद भाष्य अङ्क ४०-४१, अधिक २५ श्रावण १९३९ के सम्मिलित अङ्क के टाइटल पेज ४ पर मुंशी समर्थदान ने सूचना छापी थी। उसी की ओर यह निर्देश है। उक्त सूचना तीसरे परिशिष्ट में दे रहे हैं।

पृ० ८५३ टि० १—**इस प्रकार शोधें**—यह सूचना य० भाष्य के ४८-४९ (सम्मिलित) अङ्क तथा ऋ० भाष्य के सं० १९४० ३० आषाढ़ कृष्ण के ५०-५१ (सम्मिलित) अङ्क के टाइटल पेज के प्रथम पृष्ठ पर छपी है।

पृष्ठ ८७९, पं० ११—**घड़ी तुम्हारे पास एक आई वा दो**—पुरोहित उदयलाल को घड़ी भेजने के लिये ऋषि दयानन्द ने सेवकलाल कृष्णदास को भी लिखा था और लक्ष्मण गोपाल देशमुख जब जोधपुर में स्वामी जी से मिलकर (जून ३।४।१८८३) बम्बई लौटे, तब उनसे भी घड़ी भेजने को कहा था। दोनों ने घड़ी भेजने की सूचना अपने-अपने पत्रों में दी। देखो म० मुन्शी राम सम्पा० पत्रव्यवहार (पृ० २४२, २४३, २७४) अत: स्वामी जी महाराज को सन्देह हुआ कि घड़ी एक भेजी गई और दोनों ने उसकी सूचना दी, या दोनों ने अलग-अलग घड़ी भेजी।

पृष्ठ ८९२ पं० १३ से पं० २५ के **प्रश्नोत्तर विषय पर टिप्पणी**—यहां भृगुसंहिता का भृगुसिद्धान्त के नाम से निर्देश किया। और उसे आप्त प्रामाणिक ग्रन्थ माना है। तथा इसमें 'केवल गणित विद्या' स्वीकार की है। इसकी तुलना पूर्ण संख्या २२, पृष्ठ ८, पं० ६-७ तथा पूर्णसंख्या १९३, पृष्ठ २६० पं० १०-१३ और सत्यार्थप्रकाश (१८७५) के तृतीय समुल्लास के पृष्ठ ८६ के साथ करनी चाहिये। विशेष द्र०—पूर्व पृष्ठ ८ की टि० १।

पृष्ठ ९५९ पर हमने [ ] कोष्ठ में जो सम्पादकीय नोट दिया है। उस के सम्बन्ध में निम्न उल्लेख भी दर्शनीय है—

इसी 'आर्यसन्मार्गदर्शिनी सभा और ऋषि दयानन्द' में आगे पृष्ठ ९८० पं० १८ में लिखा है—'हम को ज्ञात नहीं कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी इसका क्या अर्थ करते हैं।' इस लेख से इन उत्तरों का लेखक अन्य व्यक्ति होने की आशंका होती है। क्योंकि ऋषि दयानन्द ने इस उद्धरण पर काशी शास्त्रार्थ में अपना अभिप्राय प्रकट किया है। फिर भी हम समझते हैं इन प्रश्नों के उत्तर में ऋ० द० का हाथ अवश्य था। क्योंकि ऐसा गूढ़ विचार अन्य प्रकट नहीं कर सकता।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपनी जीवनी ('कल्याणमार्ग के पथिक') पृष्ठ ९९ (काशी ज्ञानमण्डल प्रेस) में लिखा है—'लाला सांईदासजी······।' पत्रों में भी वह प्रत्यक्ष रूप से कुछ नहीं लिखते थे। उस समय तक उन्होंने एक उर्दू ट्रैक्ट 'एक आर्य' नाम से लिखा था जिसमें कलकत्ता के पण्डितों की ऋषि दयानन्द के विरुद्ध दी हुई व्यवस्था की पड़ताल की गई थी। यह ट्रैक्ट हमें

देखने को नहीं मिला। परन्तु हमने जो उत्तर छापे हैं उनके लेखक साईंदास जी नहीं हो सकते, क्योंकि वे वेदशास्त्रादि के गम्भीर ज्ञाता नहीं थे।

पृष्ठ ९९९, पं० १४-१७—**जो ब्रह्म अर्थात् ...ब्राह्मण रखा गया**—इस पर टिप्पणी— ५

इस की तुलना 'पूना-प्रवचन' के दसवें प्रवचन (पृष्ठ ११०) के साथ करें—'ब्राह्मणों के बनाये हुए जो वेदों के व्याख्यान थे उन को ब्राह्मण पुस्तक कहा जाता था।' इसी प्रकार ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका के 'वेदसंज्ञाविचार', प्रकरण में भी लिखा है—'**चतुर्वेद-विद्भिर्ब्रह्मभिर्ब्राह्मणैर्महर्षिभिः प्रोक्तानि यानि वेदव्याख्यानानि** १० **तानि ब्राह्मणानि** अर्थात् चारों वेदों के जानने वाले ब्रह्म = ब्राह्मण महर्षियों से प्रोक्त जो वेद के व्याख्यान उन को ब्राह्मण कहते हैं'। द्र०—पृष्ठ १००, रा० ला० क० ट्रस्ट संस्क०।

पृष्ठ ९९९ पं० १९-२३— **जब कोई धार्मिक या वैधानिक...... होता था पर** टिप्पणी—इसकी पूनाप्रवचन पृष्ठ १११ पं० ४-६ १५ (रा० ला० क० ट्र० संस्क०) के पाठ के साथ तुलना करनी चाहिये। पूनाप्रवचन के इस प्रसंग पर दी गई दूसरी टिप्पणी भी देखनी चाहिये।

—:०:—

तृतीय परिशिष्ट

ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन में निर्दिष्ट २०

आवश्यक सामग्री का संकलन

पूर्ण संख्या ५५, पृष्ठ ७५, पं० ३—**उन नियमों में दो नियम बढ़ाये हैं**

यहां 'उन नियमों में' शब्द से जिन नियमों की ओर संकेत किया है, वे राजकोट की आर्यसमाज के लिये रचे गये थे। उनकी २५ संख्या २६ थी। उनमें आगे पत्र में लिखे दो नियम बढ़ाकर बम्बई आर्यसमाज के लिये २८ नियम बनाये थे।

पूर्ण संख्या ५७, पृष्ठ ७६, पं० १२—**आर्यसमाज के नियम और उस की व्याख्या पुस्तक छपता है—**

इन दोनों निर्देशों के अनुसार आर्यसमाज मुम्बई के २८ नियम व्याख्यान सहित नीचे दे रहे हैं—

५ **मुम्बई आर्यसमाज के नियम[1] और उसका व्याख्यान[2]**

मूल १. ओं सब मनुष्यों के हितार्थ आर्यसमाज का अवश्य होना चाहिये।

व्याख्यान—इस समाज से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों

---

१. यहां हम मुम्बई आर्य समाज के नियमों का पाठ सन् १९३३ में
१० छपे 'मुंबई आर्यसमाजनो इतिहास' के पृष्ठ १०-२१ पर छपे पाठ के अनुसार दे रहे हैं। श्री पं० लेखराम रचित जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ २००-२०३ तथा पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित भाग १, पृष्ठ ३३२-३५ में नियमों का पाठ हिन्दी भाषानुसार संशोधित छपा है।

२. मुंबई आर्यसमाजनो इतिहास में नियमों के मूल पाठ के साथ
१५ 'व्याख्यान' भी छोटे अक्षरों में छपा है। इस व्याख्यान की भाषा भी हिन्दी है (मूल नियम और व्याख्यान की भाषा हिन्दी होते हुए भी गुजराती लिपि में छपे हैं)। नियमों का व्याख्यान किस का लिखा है, यह उक्त इतिहास से ज्ञात नहीं होता। परन्तु इसी इतिहास के पृष्ठ २१ पर जो टिप्पणी (आगे इसे हम छाप रहे हैं) से, तथा ऋ० द० के पूर्ण संख्या ५७ के पत्र में पृष्ठ
२० ७६, पं० १२-१३ में लिखा है—"आर्यसमाज के नियम और उसकी व्याख्या पुस्तक छपता है" लेख तथा व्याख्या पर विचार करने से विदित होता है कि यह व्याख्या भी ऋषि दयानन्द की लिखी व लिखाई हुई है। इस लिये हम मूल नियमों को बड़े अक्षरों में तथा उस के साथ उसके व्याख्यान को छोटे अक्षरों में यहां छाप रहे हैं।

२५ 'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास' के लेखक श्री दामोदरदास सुन्दरदास ने आर्य समाज के नियमों और उसके व्याख्यान के पाठ के अन्त में पृष्ठ २१ पर टिप्पणी में लिखा है—'उपरना जुना मूल २८ नियमो जे ढबमां छापेला प्राप्त थया तेवोने तेवाज ऊपर मुजेब आपेला छे. ते समयनी छपाई तथा भाषापण कांइक जुदी पड़ती जणाय छे. तेमा कोई सुधारो के फेरफार
३० कर्या वगैर एमज आपवा उचित लागवाथी ते गुजराती टाइप मां ज असल मुजब छाप्या छे।'

पदार्थों की प्राप्ति मनुष्यों को यथावत् होगी। अतएव आर्यावर्तादि देशस्थ मनुष्य जातिमात्र का हित इस समाज से निश्चित होना है ॥१॥

मूल २. ईस समाज में मुख्य स्वतः प्रमाण वेदों का ही माना जायेगा। तथा साक्ष्यर्थ वेदों के विज्ञानार्थ और आर्य इतिहासार्थ, शतपथ ब्राह्मणादि ६ छः वेदों के जो अङ्ग, ४ चार उपवेद, ६ छः दर्शन, तथा ११२७ वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान, ये सब आर्य सनातन संस्कृत ग्रन्थों का गौण प्रमाण माना जायगा, जो कि वेदानुकूल। ५

व्याख्यान - मुख्य वेदों से उत्तम कोई ग्रन्थ माना न जायगा, किन्तु नीचे लीखे प्रमाणे साक्ष्यादिक प्रयोजन के लिये यथोक्त शतपथादि ग्रन्थ माने जायेंगे, जितना-जितना अंश वेदानुकूल। विरुद्धांस को न माना जायगा। स्वतः प्रमाण ग्रन्थान्तर प्रमाणानपेक्ष, कि वेदों के प्रमाण विषे वेदों का ही प्रमाण माना जायगा। और शतपथादि पूर्वोक्त ग्रन्थों का परतः प्रमाण, अर्थात् वेदों के प्रमाण से ही उनका प्रमाण होगा, स्वतः नहीं ॥२॥ १० १५

मूल ३. इस समाज में प्रतिदेश के मध्य एक-एक प्रधान समाज होगा, और अन्य सब शाखोपशाखारूप होंगे।

व्याख्यान — सब को निकट परस्पर व्यवस्था प्रीति और उपकार के लिये तथा विद्या वृद्ध्यर्थ यह नियम जानना ॥३॥ २०

मूल ४. प्रधान समाज के अनुकूल अन्य सब समाजों की व्यवस्था रहेगी।

व्याख्यान — उन्नति के लिए यह नियम जानना ॥४॥

मूल ५. प्रधान समाज से वेदोक्तानुकूल संस्कृत और आर्य भाषा में नाना प्रकार पुस्तक होंगे। सदुपदेश के लिये, और आठ आठवें दिन एक आर्यप्रकाश पत्र निकलेगा। ये सब समाजों में प्रवृत्त किये जायंगे। २५

व्याख्यान—विद्वान्, अविद्वान्, स्त्री, पुरुष इन सभों को सत्या-सत्य कर्तव्याकर्तव्य और इश्वरादि पृथ्वी पर्यन्त सब पदार्थों का यथावत् बोध और अत्यन्त सुखप्राप्त होगा ॥५॥

मूल ६. प्रत्येक समाज में एक प्रधान पुरुष और दूसरा
५ **मन्त्री तथा अन्य पुरुष और स्त्री ये सब सभासद् होंगे।**

व्याख्यान - जिस्से इस समाज की रक्षा और अत्यन्त उन्नति होय ॥६॥

मूल ७. प्रधान पुरुष इस समाज की यथावत् व्यवस्था पालन करेगा। और मन्त्री सब के पत्रों का प्रत्युत्तर तथा सब
१० **के नाम व्यवस्था लेख करेगा।**

व्याख्यान—सब समाजस्थों को सब सभासदों का वर्तमान और प्रश्नोत्तर विदित रहने के लिए यह नियम है ॥७॥

मूल ८. इस समाज में सत्पुरुष सद्नीति सदाचरणी जनों के हितकारक समाजस्थ किये जायंगे।

१५ **व्याख्यान**—दुष्ट मनुष्य के सभासद् होने से समाज को दोष लगता है। इसलिये दुष्ट को सभासद् शीघ्र नहीं करना किन्तु जो दुष्टता छोड़ने के लिये और सज्जनता ग्रहण करने के लिये निष्कपट होके सभासद हुआ चाहे सो हो सकता है ।।८॥

मूल ९. जो गृहस्थ गृहकृत्य से अवकाश प्राप्त होय, सो
२० **जैसा गृहकार्य में पुरुषार्थ करता है, उस्से अधिक पुरुषार्थ इस समाज की उन्नति के लिये करें। और विरक्त तो नित्य ही इस समाज की उन्नति ही करें अन्यथा नहीं।**

व्याख्यान—जब परोपकार सर्वहित स्वहृदय की प्रीति होगी, तब यह कार्य बनता है जो इस नियम के अनुकूल आचरण करेगा,
२५ उसको धन्यवाद देना चाहीये। और परमात्मा की तर्फ से भी उसी को धन्यवाद अवश्य मिलेगा ॥९॥

मूल १०. आठ आठवें दिन प्रधान मन्त्री और सब सभासद् समाज स्थान में एकठे होंय, सब काम से इस काम को मुख्य जानके।

व्याख्यान—क्योंकि ईस व्यवहार से इस लोक और परलोक तथा मोक्ष की निश्चित सिद्धि होती है, ईस्से इस काम को सर्वोत्तम अवश्य जानना ॥१०॥

मूल ११. ऐकिठे होके सर्वथा उचित होंय परस्पर प्रीति से प्रश्नोत्तर पक्षपात छोड़ के करें, सामवेदादि गान करें। ईन विषयों में ही होय, कि परमेश्वर, सत्यधर्म, सद्नीति, सत्योपदेश विषयक ही वादित्रवादनपूर्वक गान, पूर्वोक्त विषयक मन्त्रों का अर्थ, ऐसा ही वक्तृत्व, पुनर्गान, पुनर्मन्त्रार्थ, पुनर्गान ईत्यादि। ५

व्याख्यान—सत्य प्रतिपादन असत्य का खण्डन जिस्से होय, ऐसा न होय, कि मेरा ही कथन सत्य अखण्डित जैसा होय, वैसा ही हठादि से दूसरे का सत्य का भी खण्डन करना अपने असत्य का भी मण्डन करना इत्यादि सर्थथा छोड़ ही देना ॥११॥ १०

मूल १२. प्रत्येक सभासदों को न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से जितना धन प्राप्त होय, उसमें से आर्यसमाज आर्यविद्यालय तथा आर्यप्रकाश पत्र, ईन तीनों के प्रचार के लिये प्रीतिपूर्वक शतांश देवें। अधिक देने से अधिक धर्मफल। ईस धन का व्यय इन तीन विषयों में ही होय, अन्यत्र व्यय नहीं किया जाय। १५

व्याख्यान—इस नियम के विना आर्यसमाजादि की स्थिर व्यवस्था और उन्नति नहीं हो सकती वारंवार सभासदों से जादा लेने से अच्छा नहीं। और धनाढ्य लोगों पर अत्यन्त भार होने से उन की अरुची हो सकती है। इसलिये यह नियम होना ही चाहिये। परन्तु जो जो व्यापारी है और अपना व्यवहार गुप्त रखना चाहै वह एक वार इकिट्ठा धन देवै, यथासामर्थ्य और श्रद्धा, अथवा मासीक किंवा वार्षिक निबन्ध न कर देवे। तथैव राजलोगों की भी व्यवस्था रहै। और अन्य सब लोगों का शतांश देना ही ठीक है ॥१२॥ २० २५

मूल १३. जो जन ईन कार्यों की उन्नति और प्रचार के

लिये जितना प्रयत्न करै उसका यथायोग्य सत्कार उत्साह के लिये होना चाहिये।

व्याख्यान—परन्तु वह जन सत्कार की इच्छा किंवा दंभादि से कोई काम न करें, किन्तु इस काम को अपना ही समजे। मनुष्यों के
५ उपकार और ईश्वर की प्रसन्नता के लिये ही करें, अन्यथा नहीं। क्योंकि जैसे जैसे विनयादि मनुष्य में होते हैं वैसे वैसे मनुष्य का सत्कार आप से आप ही होता है, स्वेच्छा से नहीं। परन्तु आर्य-समाज का उपकार जन परमार्थ दृष्टि से ही करे और सब लोग उसकी प्रतिष्ठा यथायोग्य करें ॥१३॥

१० **मूल १४. इस समाज में वेदोक्त आदि प्रकार से ही एक अद्वितीय परमेश्वर की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करने में आवेगी।**

व्याख्यान—निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, दयालु, सर्वजगत् पिता, सर्व-
१५ जगन्माता, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त, सर्व-व्यापक, सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अभय, नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, अनन्त सुखप्रद, धर्मार्थ काम मोक्षप्रद ईत्यादि विशे-षणों से परमात्मा ही स्तुति गुणकीर्तन प्रार्थना, उस्से सर्वश्रेष्ठ कार्यों में सहाय चाहना, उपासना, उसके आनन्द स्वरूप में मग्न
२० हो जाना, सो पूर्वोक्त निराकारादि लक्षणवाला की ही भक्ति करनी। उस्से विपरीत की कभी नहीं करनी ॥१४॥

मूल १५. इस समाज में निषेकादि अन्त्येष्टिपर्यन्त संस्कार वेदोक्त किये जायंगे।

व्याख्यान—निषेक (१) वीर्यप्रदान, पुंसवन (२) वीर्य-
२५ रक्षोपाय, सीमन्तोन्नयन, (३) गर्भरक्षोपाय, जातकर्म (४) बालक और प्रसूत स्त्री की सम्यक् रक्षाकरण, नामकरण (५) देवदत्त, यज्ञदत्त, सुशील, सुवीर, यशस्वी इत्यादि पुत्रों का नाम रखना; कलावती, यशोदा, शर्मदा, धर्मदा, इत्यादि कन्याओं के नाम रखना, निष्क्रमण (६) शुद्ध प्रदेश में बालक को घुमाना आदि, (७)
३० कर्णवेध, (८) चुडाकर्म मुण्डन करना, यज्ञोपवीत (९) विद्यापठनार्थ

विद्यार्थी का चिह्न धारण करना, विद्यारम्भ (१०) नियमपूर्वक ब्रह्मचर्याश्रम-पालन, गुरुसेवा और यथार्थ विद्याभ्यास करना, सत्यभाषण, सुशीलादि सद्गुण धारना, समावर्तन (११) यथावत् चौदह विद्या पढ़ने शिल्पादि हस्तक्रिया सीख के विवाह करने की इच्छा करके गुरु को प्रसन्न करके घर को आना, विवाह (१२) २५ ५
वर्ष उपरान्त ४८ वर्ष पूर्व पुरुषों का विवाह का नियम है, वेदादि-शास्त्रों में, तथा स्त्री लोगों का नियम १६ वें वर्ष से आगे और २५ वा ३० वर्ष से पूर्व पूर्व कन्याओं का विवाह होना चाहिये। परस्पर प्रसन्नता, तुल्य विद्या, स्वभाव, रूप, बल, पराक्रम, शरीर के गुण, तुल्य होना चाहिये, परन्तु स्त्री का शरीर पुरुष से छोटा कुछ कम १०
बल होना चाहिये। तब गृहस्थाश्रम में सुख और उत्तम होते हैं, अन्यथा कुछ सुख तो नहीं होता, किन्तु दुःख ही भोगना पड़ता है, गृहाश्रम कृत्य (१३) नाना प्रकार गृहस्थों के व्यवहार, पञ्च-महायज्ञ, सन्तानोत्पत्ति, सन्तानों का सुशिक्षापूर्वक विद्यादान, स्त्री पुरुष, श्वसुर, सासू, भृत्य, गृह सम्बन्धि सब काम यथायोग्य १५
करना, गार्हपत्यदीक्षादि होना; वानप्रस्थ दीक्षा (१४) वेदान्तसेवन योगाभ्यास शास्त्रों का सुविचार, परमेश्वर की अत्यन्त भक्ति, सब पदार्थों का गुणदोष विचार, शारीर पदार्थों में दोष दर्शन, हिता-हित विचारादि करना, मोक्षविचार, उसके होने के उपायों का अनुष्ठान, संन्यास आश्रम दीक्षा, (१५) सब जगत् का कारण एक २०
अद्वितीय परमात्मा और सब जगत् कार्य्य, परब्रह्म में दृढ़ निश्चय, धर्म का उपदेश और अधर्म का खण्डन, पक्षपात छोड़ के सब का हित करना। एक परमेश्वर परायण होके सर्वत्र घूमना, मोक्ष का यथावत् निश्चय करना इत्यादि। मृत्युसंस्कार करना (१६) मृतक शरीर को स्नानादि से शुद्ध करना, सुगन्ध युक्त करना, श्मशान में २५
पांच हाथ लम्बी और तीन हाथ चौड़ी तथा तीन हाथ गहरी वेदी करके प्रथम अर्ध वेदी लकड़ी से भरनी। ऊपर मुड़दा रखना। फिर उस पर और बगल में लकड़ी चिणनी तथा एक हाथ भर पृथ्वी से ऊपर चिणनी चन्दन की लकड़ी कुछ १० वा २० सेर तो अवश्य चाहिये अन्य काष्ठ भी पलाश वा आम्रादिक होना, ३ ३०
तीन मण घी न्यून से न्यून २० सेर से कम न होना चाहिये। फिर अग्नि प्रवेश करना। पुनः शुक्ल यजुः के ३९ वें अध्याय के 'स्वाहा

प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः' ईत्यादि मन्त्रों से चिता में कस्तूरा केसरादि युक्त घी का होम करना; जब तक मृतक शरीर भस्म न हो जाय। फिर शोक निवृत्त्यर्थ १० दिन कुछ अधिक वा न्यून दिन तक विद्वानों के साथ भाषण, विचार करना। जब शोक निवृत्त हो ५ गया, तब विद्वानों को भोजन, दक्षिणा, धर्मात्माओं को यथा शक्ति देना। ए १६ सोलह् संस्कारों में होम दानादि और वैद्यक शास्त्र की रीति से भोजन, पान, औषधादि सेवन करना। जिस्से शरीरा-रोग्य वढ़े और बुद्धि अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होय, उस्से सब सुख होना, अन्यथा नहीं ॥१५॥

१० **मूल १६. आर्य विद्यालय में वेदादि सनातन आर्ष ग्रन्थों का पठन और पाठन कराये जायंगे, वेदोक्त रीति से स्त्री और पुरुषों को सत्यशिक्षा करने में आवेगी।**

व्याख्यान—संस्कृत वा भाषा में नाना प्रकार के ग्रन्थ बनाने और पढ़ाने में वेदानुकूल आवेंगे। कोई भाषान्तर भी पढ़ाये १५ जायगे। परन्तु जो जो उत्तमता युक्त होंगे मुख्य संस्कृत ग्रन्थों का ही पठन और पाठन कराया जायगा ॥१६॥

मूल १७. इस समाज में स्वदेशादिक हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिये प्रयत्न किया जायगा एक परमार्थ और द्वितीय लोकव्यवहार। इन दोनों का शोधन और शुद्धता की २० उन्नति तथा सब संसार के हित की उन्नति किइ जायगी।

व्याख्यान—जैसा 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' नौकर भी आपके स्वामी के काम से अपना काम प्रथम कर्ता है, पीछे स्वामी का। प्रातः काल जब निद्रा से जगता है तब पहिले अपना मुख प्रक्षालन पुंछना आदि करके पुनः नौकरी का काम कर्ता है, वैसा ही सब २५ मनुष्यों को उचित है, कि अपना अपना जन्म-देश का उपकार प्रथम करना और फिर अन्य देशस्थ मनुष्यों का उपकार करना। परमार्थ, ईश्वर, तद्भक्ति, तस्मादेव भय, तदाज्ञा पालन, सर्व-जनोपकार, विद्याभ्यास, विद्यादान, अधर्म का सर्वथा त्याग, सत्य-धर्म का सर्वथा अनुष्ठान, पक्षपात त्याग, सत्पुरुष संग, मन और ३० इन्द्रियों का दमन, मोक्ष और वैराग्य, विज्ञानादि मोक्षोपायों का

अनुष्ठान इत्यादि परमार्थ में लेना, और व्यवहार में ब्रह्मचर्यादि अनुष्ठान, यथाकाल न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से राज्य और धनादि का संग्रह करना, वर्तमान में उन की रक्षा यथायोग्य करना, रक्षित को युक्ति से बढ़ाना, बढ़े को सद्विद्यादि में यथायोग्य व्यय करना, कोई एक को राज्य वा धन का अधिकार नहीं देना। अयोग्य सन्तानों ५ को भी भोजन वस्त्रादि योग्य क्षेम मात्र से अधिक अधिकार न देना, किन्तु राज्य और धनादि की रक्षा उन्नति और व्यवस्था पालन धर्मात्मा विद्वान् और सज्जनों की सभा से ही सब व्यवस्था उत्तम उत्तम करना। शरीर के भोजनादि नियम सन्तानों को धर्म विद्या ही की सुशिक्षा करना, सत्य बात का प्रचार और मिथ्या १० बात का खण्डन करना और कराना। एक एक शरीर का नियम कुटुम्ब, घर, नगर, ग्राम, देश, और भूगोल, इन के सामाजिक नियम; सर्वोत्कृष्ट सर्वोत्कृष्ट यथायोग्य बांधना, जिनसे सब संसार का यथायोग्य परम हित होय वैसे वैसे अनेक सुनियम करना इत्यादि व्यवहार पक्ष में लेना॥१७॥ १५

मूल १८. इस समाज में न्याय जो पक्षपात रहित अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणों से यथावत् परीक्षित सत्य, धर्म, वेदोक्त, सोही माना जायगा, इस्से विपरीत न माना जायगा, यथाशक्ति।

व्याख्यान—आर्य सभासदों से कोई कहै कि यह बात वेदोक्त है २० तुम करो, तब दो बात विचारनी, जो वह युक्ति सिद्ध सत्य है तो माननी और युक्ति सिद्ध सत्यर्थ नहीं है, तो जानना कि ईस का यह अनर्थ करता है। फिर जो सर्वथा विद्वान् पक्षपात रहित लोगों को प्रत्यक्षादि प्रमाण और पदार्थ विद्या से युक्त नहीं अर्थ दिखता तो जानना कि यह वेदों का वचन नहीं है किन्तु कोइ की बनावट है, मत- २५ लब सिन्धू का वचन कि वा अविद्वान् का रचित है इश्वरोक्त नहीं। जब कोइ कहै कि वह काम परम्परा से चला आता है तुम लोग क्यों नहीं कर्ते? उस्से कहना कि वेदों में दिखला, पुस्तक के बीच में जो दिखलावे, फिर उस्से अर्थ करना, फिर जो अनर्थ होय, तो पूर्वोक्त रीति से ही निश्चय करके मानना वा छोड़ना। यथाशक्ति ३० जितना अपना सामर्थ्य होय उस्से कमती काम कधी न रहै, अधिक

श्रेष्ठ काम होय सो तो अच्छा ही है ॥१८॥

मूल १९. इस समाज की तर्फ से शिष्ट विद्वान् लोक सर्वत्र सत्योपदेश करने के लिये भेजे जायंगे, समयानुकूल ।

व्याख्यान—जिस्से सब लोगों में सत्य असत्य यथावत् प्रका-
५ शित होय, सत्य का ग्रहण सब लोक करें और मिथ्याचार का त्याग करें। तथा पाखण्डी धूर्त लोगों का खण्डन और धर्मात्मा सत्यप्रिय विद्वानों का मण्डन और सत्कार सर्वत्र होय एतदाद्यर्थ यह नियम है ॥१९॥

**मूल २०. पुरुष और स्त्री इन दोनों के विद्याभ्यास के
१० लिये भिन्न भिन्न आर्यविद्यालय प्रत्येक स्थान में यथाशक्ति किये जायंगे। पुरुषों की पाठशाला में अध्यापन और सेवा प्रबन्धादि पुरुषों से ही प्रबन्ध किया जायेगा। तथैव स्त्रियों की पाठशाला का स्त्रियों से, विपरीत नहीं।**

व्याख्यान—विद्या पुरुष और स्त्रियों को जब तक यथावत् नहीं
१५ होती तब तक उस देश में मनुष्यों को दुःख के दिन नष्ट होके सुख के दिन प्राप्त कभी नहीं होते। महापुण्य और धर्म यही है जो सत्य सनातन विद्या का प्रचार करना। यथोक्त रीति से प्रबन्ध होने से यथावत् विद्या होती है और विघ्न कोई नहीं होता, इत्यादि प्रयोजन के लिये यह नियम है ॥२०॥

२० **मूल २१. आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, आर्यप्रकाश पत्र और आर्य समाजाद्यर्थ धनकोश, इन चारों की व्यवस्था प्रधानार्य समाजानुकूल रहेगी। इनकी उन्नती और संरक्षण भी उस्से ही किया जायगा।**

व्याख्यान—जो कुछ इन चारों का मुख्य प्रबन्ध आज्ञा और
२५ सम्यक् उनकी रक्षादिक मुख्य समाजानुकूल रक्खा है यह मुख्याधिकार प्रधानार्य समाजाधीन रहेगा, और गौण काम शाखोपशाखारूप समाजों के आधीन ही यथायोग्य रहेगा। जिस्से किसी प्रकार व्यवस्थोलंघन कोई न कर सके। यथावत् उन्नति सब की होती जाय ॥२१॥

मूल २२. इस समाज में प्रधानादि सब सभासद परस्पर प्रीत्यर्थ अभिमान हठ दुराग्रह और क्रोधादि दुर्गुण सब छोड़ के उपकार सुहृदता से सबसे निर्वैर होके स्वात्मवत् संप्रीति सबकी करनी होगी।

व्याख्यान– जो प्रीति से होता है सो काम वैर से कभी नहीं होता। वह छोटा है, मैं बड़ा हूं, मेरी बात झूठी भी होय, वही सत्य होय, सभा में मेरी बात कट जायगी तो अप्रतिष्ठा मेरी होगी अर्थात् जैसे बने वैसे मेरी बात सर्वोपरि रहे, सत्य होय वा असत्य। ऐसा झुठा हठ लेना कोई को नहीं चाहिये। यह सब का अभिप्राय रहे कि जो यथार्थ सत्य है वही स्थिर रहे। छोटा और बड़ा, छोटे और बड़े काम से ही मानना, अन्यथा नहीं ॥२२॥

मूल २३. विचार समय सब व्यवहारों में न्याययुक्त सर्वहित जो सत्य बात सम्यक् विचार से ठहरे उसी को सब सभासदों को विदित करके वही सत्य बात मानी जाय। विपरीत न मानी जाय। इसी का नाम पक्षपात छोड़ना है।

व्याख्यान–जिस देश में मनुष्यों को सुमति विचार युक्ति है उस देश का सौभाग्य नित्य ही बढ़ता जायगा, और दुःख सब नष्ट हो जायगा। सब व्यवहारों में किं वा परमार्थ विचार में सदा सत्य की तर्फ ही रहना सबको चाहिये, विपरीत को छोड़ के। मनुष्य की मनुष्यता यही है। अन्यथा पशुता ही जाननी ईत्यादि प्रयोजन के लिये यह नियम जानना ॥२३॥

मूल २४. जो जन ईन नियमों से अनुकूल आचरण करेगा उसको शिष्ठ समाज में ही स्थिर करना, वह धर्मात्मा सद्गुणी होय। इस्से विपरीत को साधारण समाज में रखना। और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल ही देना। परन्तु पक्षपात से यह काम नहीं करना, किन्तु ए दोनों बात शिष्ठ सभासदों के विचार से ही की जाय, अन्यथा नहीं।

व्याख्यान – शिष्ट की प्रतिष्ठा करनी, दूसरे[1] को उपदेश और उत्साह देना तृतीय[2] से सदा उपेक्षा रखनी ॥२४॥

मूल २५. आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, आर्य प्रकाश पत्र और आर्यसमाजार्थ धनकोश ईन चारों की रक्षा और उन्नति ५ प्रधानादि सब सभासद तन मन और धन से यथावत् सदा करैं ।

व्याख्यान – ईन चारों की यथावत् प्रवृत्ति से आरम्भ से लेके उत्तरोत्तर मनुष्यों को महासुख लाभ होना अवश्य है ॥२५॥

मूल २६. जब तक नोकर करने और कराने वाला आर्य-१० समाजस्थ मिले तब तक और की नोकरी न करें और न अन्य को नोकर रक्खे । वे दोनों परस्पर स्वामी सेवक भाव से यथा योग्य वर्तें ।

व्याख्यान—इस नियम से घर की नाई दोनों का अच्छा होगा और व्यवहार में भंग कधी नहीं होना, तथा धर्मरीति से धनाढच १५ और दरिद्र का सुख से निर्वाह होना। इस्से समाजादि को अत्यन्त उन्नति होगी ॥२६॥

मूल २७. जब जब विवाह, पुत्र जन्म महालाभ किंवा मरण अथवा कोई समय दान, धन व्यय करना होय, तब तब आर्यसमाजार्थ धनादि दान अवश्य करैं । ऐसा धर्म काम २० कोई भी अन्य नहीं है, इस निश्चय को जान के इसका कधी ही न भुलैं ।

व्याख्यान—इस नियम से आर्यसमाजादि की अत्यन्त उन्नति होने से स्वदेशादिस्थ मनुष्यादि को अत्यन्त सुखों का लाभ होगा । इसलिये यह नियम है ॥२७॥

२५ **मूल २८. इन नियमों से कोई नियम नया किया**

---

१. द्वितीय को अर्थात् साधारण जन को । सम्पा० ।

२. तृतीय से अर्थात् दुष्ट से । सम्पा० ।

जायगा वा कोई निकाला जायगा, किंवा अधिक न्यून किया जायगा। सो सब शिष्ट सभासदों के विचार रीत से सब शिष्ट सभासदों को विदित करके ही यथायोग्य करना होगा।

व्याख्यान—इस नियम से सब बुद्धिमानों को आगे विचार करने का अवकाश रहेगा। कोई बुद्धिमान् अत्यन्त बन्धन में नहीं पड़ेगा। किन्तु आगे आगे विचार शक्ति के बढ़ाने का उत्साह बढ़ेगा। ईस्से विज्ञान नित्य बढ़ता ही जायगा। ओ३म्. २८।

टिप्पणी—ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन पृष्ठ ७५, पं० ३-६ पर जिन दो नियमों को बढ़ाने का उल्लेख करके नियमों का स्वरूप लिखा है, उन में प्रथम इन नियमों में संख्या २७ पर है और दूसरा नियम संख्या २६ पर।

पृष्ठ १३३, पं० २०-२१ - इसके '**पत्र के विषय में दीनानाथ गांगोली ने अंग्रेजी में जो पत्र**' के स्थान में इस प्रकार शोधें—'**पत्र को भेजते समय दीनानाथ गांगोली ने बङ्गला में जो पत्र** .....'। दीनानाथ गांगोली का मूल बङ्गला पत्र इस प्रकार था—

श्री श्री दुर्गाशरणम्

नमस्कारं ते निवेदनमिदम्

दयानन्द सरस्वती महोदयेर एक खनि मात्रो पत्रो पाइयासी ताह पठैलम् अवश्य तिनि अन्यो कोनो व्यक्तिर द्वारा यह इंग्रेजी ते लिखइया लोइआ छीलैन य ते ताहार साखोर आछे आशाकारी अपनी भला आछन

वसम्बद्ध

श्री दीनानाथ गांगोली

हालीशहर वङ्गाला

२४ पौष १३०२[1]'

पूर्ण संख्या ४१३, पृष्ठ ४४४—'**मीमांसक उपसभा**' के सदस्य आदि का वर्णन है इस 'उपसभा' का निर्देश पूर्ण संख्या ५७७, पृष्ठ ६१४, पं० ४ में भी है। यह 'मीमांसक उपसभा' ता० २८ जून सन् १८८० ई० तदनुसार आषाढ़ कृष्णा ६ सोमवार सं०

---

१. वि० स० १९५२, सन् १८९५। यह मूल बंगला पत्र महाशय मामराज जी से प्राप्त हुआ था।

१९३७ के दिन फर्रुखाबाद आर्यसमाज की अन्तरङ्ग सभा में नियत की गई थी। आर्यसमाज फर्रुखाबाद के रजिस्टर में इस अन्तरङ्ग सभा का विवरण इस प्रकार लिखा है—

'श्रीयुत स्वामी जी महाराज के सन्मुख आज की सभा में मीमांसकोपसभा का नियत होना सभासदों ने स्वीकार किया। इस सभा का आधिपत्य अन्तरङ्ग सभा पर होगा। इस में पक्षपात-रहित न्याययुक्त उन बातों का निर्णय किया जावेगा जो कि अन्त-रङ्ग सभा में ठीक ठीक निश्चित नहीं हुई हैं। इस के सभासद और प्रतिनिधि सभासद निम्नलिखित नियत हुए—'

[इतना अंश श्री मामराज जी ने आ० स० फर्रुखाबाद के रजिस्टर से नकल किया था। अगला अंश इतिहास फर्रुखाबाद पृष्ठ २३३ से दे रहे हैं।]

[मूल सदस्य]	[प्रतिनिधि सदस्य]
१. बाबू दुर्गाप्रसाद जी	१. मुंशी हरनारायण जी
२. लाला जगन्नाथप्रसादजी	२. पुरोहित मुन्नीलाल जी
३. लाला निर्भयराम जी	३. आप के पुत्रों में से
४. लाला रामचरण जी	४. लाला काली चरण जी
५. पं० गोपालराव हरि जी	५. मुंशी नारायण दास जी

विशेष—यह **मीमांसकोपसभा** आपसी वैमनस्य को मिटाने के लिये नियत की गई थी। इसी कारण इस का अन्तरङ्ग सभा पर भी आधिपत्य स्वीकार किया गया था (द्र०—फर्रुखाबाद का इति-हास, पृष्ठ २३३)। यदि इसी ढंग पर सर्वत्र समाजों प्रतिनिधि सभाओं और सार्वदेशिक सभा में भी अन्तरङ्ग सभा के ऊपर मीमांसक **उपसभा** नियत की जाये और उस के निर्णय का रागद्वेष छोड़ कर स्वीकार किया जाये तो सभी विवाद समाप्त हो सकते हैं।

पूर्ण संख्या ४२९, पृष्ठ ४६०-४६३—इस पत्र में वेदभाष्य की शीघ्रता से पूर्ति के लिये सहायतार्थ दो पण्डित रखने के लिये विभिन्न व्यक्तियों से प्राप्त हुए चन्दे का उल्लेख है। इस पत्र को तथा पूर्ण संख्या ३२२ (पृ० ३५६-३५८) पर छपे मुख्तियारनामे तथा पूर्ण संख्या ४४७ (पृ० ४८८) पर छपे प्रथम स्वीकार पत्र को

समझने के लिये इस की पृष्ठभूमि जाननी आवश्यक है। वह पृष्ठ भूमि इस प्रकार है—

ऋषि दयानन्द २० मई १८८० = वैशाख शु० ११ सं० १९३७ को सातवीं (फर्रुखाबाद के इतिहासानुसार पृष्ठ १३५, वस्तुतः ९ नवमी) बार जब फर्रुखाबाद पधारे थे, तब उन्होंने २७ जून के व्याख्यान के अन्त में—'**वेदों का महीधरादिकों ने अशुद्ध अनर्गल अर्थ करके देश में भ्रान्ति फैलाई। वेदों का शुद्ध व सत्यार्थ शीघ्र होना आवश्यक है**' इत्यादि कहकर **वेदभाष्य के कार्य को शीघ्र संपादन के लिये प्रबन्ध करने को कहा** (फर्रुखाबाद का इतिहास पृष्ठ १३९)। इसके उपरान्त ही तत्काल १३५०) रु० एकत्रित हो गये (फर्रु० का इति० पृष्ठ १४०) और इस कार्य की पूर्ति के लिये श्री कालीचरण मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद ने ५ जून १८८० को एक विज्ञापन प्रकाशित किया, जो ऋग्वेद और यजुर्वेदभाष्य के अङ्क १४ के आवरण पत्र पृष्ठ ३ पर इस प्रकार छपा था—

विज्ञापन

आर्य समाज फर्रुखाबाद की ओर से

'सब आर्यसमाजों और सज्जनों को विदित किया जाता है कि जो वेद भाष्य श्री युत स्वामी जी महाराज हम लोगों के परम उपकार के वास्ते कर रहे हैं और जिसके सत्य अर्थ का प्रकाश शीघ्र ही हो जाना अवश्य है और यह बड़ा भारी काम है। एक के पूरा करने का कभी सम्भव मालूम नहीं होता। देखिये **अकेले स्वामी जी ने गत वर्षों में अति परिश्रम किया कि जिससे महा दारुण रोग उनको हुआ कि जिससे शरीर बचना भी असम्भव हो गया'**, परन्तु ईश्वर की कृपा से वे सब रोगनिवृत्त हो गये अब हम

---

१. यह महादारुण रोग भयानक अतिसार था। यह कष्ट लगातार कई मास तक रहा। इसका उल्लेख ऋषि दयानन्द ने स्वयं पूर्ण संख्या २९७ (पृष्ठ ३३३) से पूर्ण संख्या ३३७ (पृष्ठ ३७३) तक के कई पत्रों में किया है। सम्भव है इस रोग से शरीर के बचने की असंम्भावना देखकर ही ऋषि दयानन्द ने अत्यन्त भयानक अवस्था में अलीगढ़ जाकर ठा० मुकुन्द-सिंह आदि के नाम मुख्तियारनामा रजिस्ट्री करवाया। यह मुख्तियारनामा पूर्ण संख्या ३२२ (पृष्ठ ३५६) पर छपा है। रजिस्ट्री कराने के लिये ऋषि

सब लोगों की यह सम्मति है कि प्रशंसित महाराज के पास दो पण्डित ऐसे योग्य और विद्वान् सब समाजों की ओर से नियत किये जावें कि वे भी वेदभाष्य के श्रम का कुछ बोझ उठा लेवें, जिससे स्वामी जी का भार हल्का हो जावे अर्थात् कम श्रम करना पड़े, और वेदभाष्य शीघ्र ही बन जावे। क्योंकि उसके न होने से अन्धकार मनुष्य के हृदय में छा रहा है और नाना प्रकार के परस्पर विरोधी मतों में स्थित होकर महाहानि सुखों की करली और करते जाते हैं वह कभी न छूट सकेगी। अर्थात् एक मन्त्र का भी भाष्य रह जावेगा तो सम्भव है कि अविद्वान् लोग उसी का उल्टा सूधा अर्थ समझाकर मनुष्यों को बहकावेंगे और अपना मतलब साधेंगे। इस वास्ते सब आर्यसमाजों को निवेदन किया जाता है कि यथाशक्ति इस काम में सहायता करनी उचित है। दो पण्डित विद्वान् १००) रु० से कम पर नहीं मिल सकते और सम्भव है कि जो उसकी सामग्री शीघ्र जुड़ जाये तो छः वर्ष में सम्पूर्ण चारों वेदों का भाष्य हो जा सकता है। तो इतने व्यय का भार हम सब समाजों और लोगों को उठा लेना अशक्य नहीं है। इस समाज से भी यथाशक्ति द्रव्य का प्रबन्ध किया जायेगा। और जिस जिस समाज या मनुष्य ने जो कुछ भेजना हो निम्नलिखित नियमानुसार पत्र द्वारा इस समाज को अथवा श्री स्वामी जी महाराज को एक मास के भीतर उत्तर भेज दें।

हम आशा करते हैं कि इस परम उपकारक विषय में कोई भी सज्जन यथाशक्ति प्रयत्न करने में आलस्य न करेगा। जो यह काम

दयानन्द रोग की अधिकता के कारण कचहरी में भी न जा सके। रजिस्ट्रार ने अपना आदमी उनके स्थान पर भेजकर उनका बयान लिया। इसका उल्लेख उक्त मुख्तियारनामे की रजिस्ट्री पत्र के अन्त में रजिस्ट्रार के लेख में किया है। देखो यही पत्रव्यवहार पृष्ठ ३५८, पं० ८-९। शरीर की अचानक ऐसी दुरवस्था को देखकर ही ऋषि दयानन्द ने इसके कुछ काल के अनन्तर ही १६ अगस्त १८८० को मेरठ में अपने 'स्वीकारपत्र' (वसीयतनामा) की भी रजिस्ट्री करवा दी। यह स्वीकारपत्र इसी ग्रन्थ में पूर्ण संख्या ४४७ (पृष्ठ ४८८) पर छपा है। जीवनचरित्रों में इस दारुण रोग का साधारण सा उल्लेख तो है, परन्तु मुख्तियारनामे का उल्लेख ही नहीं है।

इस समय में भी पूरा न हुआ तो फिर इसका होना अतिदुर्लभ है, क्योंकि ऐसा परोपकारी श्रेष्ठ गुणयुक्त विद्वान् और दयालु दूसरा कौन है जो इसको पूरा करे। इससे यह सर्व हितकारी कार्य अवश्य कर्तव्य है।

१—एक वर्ष का व्यय प्रथम ही देना होगा फिर इसी क्रम से प्रतिवर्ष छठे वर्ष पर्यन्त लिया जावेगा। ५

२—यदि कोई पांच वर्ष का व्यय एक बार भेज देवेगा तो उस से छठे वर्ष की याचना न की जावेगी, किन्तु उसके ब्याज से पूरा हो जावेगा।

३—जो समाज वा मनुष्य जितना देवे एक वर्ष से कम न देवे अर्थात् जितना माहवारी देवे उसका १२ गुणा करके वर्ष के आदि में भेज दिया करे। यह चन्दा छः वर्ष के पीछे नहीं लिया जावे। १०

४—इसके धन व्यय का हिसाब वर्ष वर्ष के अन्त में आर्यसमाज फर्रुखाबाद भेज दिया करेगा। छठे वर्ष के अन्त में जो व्यय करके बच रहेगा वह यथासंख्य सब देने वालों का अंश लौटा दिया जायेगा। १५

५—इस व्यय में जिस किसी देनेवाले को कभी शंका पड़े तो आर्यसमाज फर्रुखाबाद से प्रत्युत्तर मंगवा सकते हैं।

६—इस पत्र का उत्तर वा धन प्रदान जो कुछ जिसको भेजना हो वह बाबू दुर्गाप्रसाद कोशाध्यक्ष आर्यसमाज फर्रुखाबाद के पास एक मास के भीतर भेज देवे। २०

ह० कालीचरण मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद, ५ जून १८८०।

पूर्ण संख्या ४३१ पृष्ठ ४६३ पर जिस प्रकार के सहायक पण्डित के लिये **वेदभाष्य के टाइटल पेज पर** विज्ञापन छापने का उल्लेख है, वह विज्ञापन **'चाहना'** शीर्षक से यजुर्वेदभाष्य अङ्क १५ के टाइटल पेज ३ पर इस प्रकार छापा गया था— २५

चाहना

विदित हो कि हमको वेदभाष्य के काम के लिये एक ऐसा पण्डित चाहता है जो कि पाणिनि व्याकरण अर्थात् अष्टाध्यायी, महाभाष्य, पूर्वमीमांसा, निघण्टु निरुक्त, न्याय, वेदान्त पढ़ा हुआ, संस्कृत की भाषा व्याकरण की रीति से सुन्दर बना सकता हो, एक वा दो वेद भी पढ़ा हो, संस्कृत शीघ्र शुद्ध लिख सके। जो ३०

ऐसा पण्डित होगा उसको ५०) रु० वा ६०) मासिक जैसी उसकी योग्यता होगी मिला करेगा।

इस विषय में निम्नलिखित पते पर पत्र भेजना चाहिये—

मुंशी बखतावरसिंह, प्रबन्धकर्ता वैदिक यन्त्रालय लक्ष्मी कुण्ड, ५ काशी।

पूर्ण संख्या ४३७, पृ० ४७४, पं० २,४—चारों वर्षों के पृथक् पृथक् चन्दा का विज्ञापन……भेज दें। यह विज्ञापन यजुर्वेदभाष्य अङ्क १६, १७ (सम्मिलित) के आवरण पत्र पृष्ठ ४ पर निम्न-प्रकार छपा था—

१० **बड़ाभारी विज्ञापन**

(अवश्य देखने योग्य)

१—सब सज्जनों को विदित हो कि अब वेदभाष्य के छपने और प्रकाश करने का प्रबन्ध अच्छे प्रकार हो गया है, सो अब प्रतिमास अंगरेजी की पहली तारीख को यहां से डाक में डाला १५ जाया करेगा।

२—जिन महाशयों के पास पहली तारीख से १० दिन के भीतर वेदभाष्य न पहुंचे तुरन्त हमको पत्र लिखें, नहीं तो फिर आगे को कोई दोष हम पर न लगा सकेगा।

३—ईश्वर की कृपा से इन दो १६, १७ अङ्कों के साथ तीसरा २० वर्ष सम्पूर्ण हो गया, अब १८ अङ्क से नये चौथे वर्ष का आरम्भ होगा। सब सज्जनों को उचित है कि इस अगले वर्ष का चन्दा ८) रु० दोनों वेदों का हमारे पास भेज दें। पिछले तीन वर्षों का चन्दा १७) रु० होता है, सो जिन्होंने कुछ नहीं दिया वे १७) रु० और जिन्होंने कुछ दे दिया है वे १७) रु० में से जितना दिया है उतना २५ निकालकर बाकी का चन्दा हमारे पास शीघ्र भेजदें।

४—जो ग्राहक इस मास सितम्बर में ही अपना पिछला हिसाब दाम-दाम[1] भेजकर न चुका देंगे, तो हमको उनके नाम नादिहंदो[2] में लिख कर वेदभाष्य में छापकर प्रकाशित करने पड़ेंगे।

३० इसलिये उचित है कि जैसे सभ्यता पूर्वक हम सब ग्राहकों के

---

१. अर्थात् दमड़ी दमड़ी। २. अर्थात् न देने वालों की सूची में।

पास ३ वर्ष से बराबर वेदभाष्य भेज रहे हैं, वैसे ही वे भी शीघ्र दाम भेज कर हिसाब चुका दें।

५—अब चौथे वर्ष का हम नया रजिस्टर बना रहे हैं कि जिस के अनुसार सब ग्राहकों के नाम छापे जावेंगे, यदि किसी को वेद- ५ भाष्य न लेना हो तो १५ सितम्बर तक हमको लिखें, नहीं तो फिर बराबर एक वर्ष तक लेना और दाम देना पड़ेगा।

हस्ताक्षर बख्तावरसिंह, मैनेजर वेदभाष्य बनारस

विशेष—ऋ० द० ने इस विज्ञापन के छापने पर अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए लिखा था—'[जन] से दाम उधार हैं उनका हिसाब छाप दो सो तो कुछ भी नहीं किया किन्तु विज्ञापन ही विज्ञापन १० छाप डाले। नहीं छापने के योग्य बातें छापीं। द्र०—पूर्ण संख्या ४५३, पृष्ठ ५०५, पं० १०-१३।

पृष्ठ ४८८, पं० २५ में जिस विज्ञापन का उल्लेख किया है वह पूर्व इसी परिशिष्ट में पृ० १०२१-१०२३ पर छपा है।

पूर्ण संख्या ४५३, पृ० ५०५, पं० १४—**मुन्शी जी का [वृत्तान्त] १५ वृथा छापा**[1]। मुंशी इन्द्रमणि के मुकद्दमे का वृत्तान्त जो ऋग्वेद-भाष्य अङ्क १६, १७ (सम्मिलित) के आवरण पत्र पृ० २—३—४ पर छपा था वह इस प्रकार है—

मुंशी इन्द्रमणि जी के मुकद्मे का वृत्तान्त

तीन वर्ष हुए होंगे एक किसी मुसलमान ने हिन्दूओं के खण्डन २० में एक किताब 'बद्द हिन्दू' बनाकर छपवाई थी उसमें देवता अवतार आदि की निन्दा सर्वथा प्रमाण शून्य लिखी थी उसके उत्तर में किसी हिन्दू ने एक किताब 'रद्द मुसलमा' बनाई फिर उबेदुल्ला नामी मुसलमान ने एक किताब 'तोफेतुलहिन्द' बनाकर छपवाई उसमें देवता आदि की अतीव निन्दा भरी है, मुसलमानों ने इस २५ किताब के अनुसार जगह जगह हिन्दुओं के सम्मुख देवता आदि और हिन्दू मत की निन्दा करनी आरंभ की। इससे बहुधा मूर्ख

१. इस विषय में पूर्ण स्थिति जानने के लिये पृष्ठ ५११ की टिप्पणी २ अवश्य देखें।

हिन्दू मुसलमान हो गये, तव मुंशी इन्द्रमणि ने अपने मतानु-
यायियों की रक्षा के लिये उस किताव के उत्तर में एक किताब
'तोफेतुलइसलाम' बनाई और वह आगरा, लाहौर, गुजरांवाला,
बुलन्दशहर, मुरादाबाद आदि में छपकर प्रसिद्ध हुई। फिर
५ मुरादाबाद के मुसलमानों ने 'एजाज मुहम्मदी' और
'हिदयेतुलइइसना' दो किताब बनाईं। इनमें हिन्दुओं के देवताओं
की बहुत बुराई प्रमाण शून्य लिखी और छापकर प्रसिद्ध की।
इनके उत्तर में मुंशी इन्द्रमणि ने 'हमलः हिन्द' और 'समसाम
हिन्द' दो किताब बनाई। वे १६ वर्ष हुए मेरठ में, फिर १२ वर्ष
१० हुए मुरादाबाद में मुद्रित हुईं। इन किताबों के छपने से आज तक
कहीं हिन्दू मुसलमानों में कोई उपद्रव नहीं हुआ फिर मुसलमानों
की ओर से मौलवी मुहम्मदअली तहसीलदार विस्तारी जिला
मुरादाबाद ने इन दोनों किताबों के उत्तर में 'सीतुल्लाजव्वार'
नामी एक किताब बनाकर बरेली में छपवाई। इसमें हिन्दुओं के
१५ देवता और मुंशी इन्द्रमणि को निरी गालियां ही भरी हैं। फिर
मुसलमानों ने और भी कई किताब 'लज्जतुलहिन्द, तेग फकीर
बर गरदन शरीर, हकगोई शरह, सलोई' आदि बनाई। जिनमें
हजारों गालियां देवता और अवतारों को लिखी हैं। मुंशी इन्द्र-
मणि ने इन किताबों का उत्तर तो नहीं लिखा केवल अपनी
२० पहिली दो बार की छपी हुई हमलः हिन्द समसाम हिन्द को
तीसरी बार छपवाया। मुरादाबाद एक मुसलमान ने द्वेष करके
अपने अखबार जामशमशेद १३ मई सन् ८० में लिखा कि इन
किताबों के छपने से यहां के मुसलमान बिगड़ रहे हैं कोई इन्द्रमणि
को मार डालेगा। सरकार इन किताबों को जलवा दे। इस पर
२५ गवर्नमेण्ट से एक चिट्ठी सत्य निर्णय को साहब मजिस्ट्रेट के नाम
आई। उन्होंने वह चिट्ठी डिपटी इमादअली को सौंपी। डिपटी
इमादअली तो मुंशी इन्द्रमणि के जानी शत्रु और अपने मत के
अतीव पक्षपाती हैं। साहब बहादुर को इस विषय में खूब ही
समझाया और इन्द्रमणि की ओर अपने निर्णयपत्र में पूर्ण दोष
३० आरोपण किये। अब तो प्रायः मुसलमानों ने नगर में कहना
प्रारम्भ किया कि इन्द्रमणि को कठिन होगा। अभी साहब बहादुर
ने गवर्नमेण्ट की चिट्ठी का उत्तर नहीं लिखा था कि मुंशी इन्द्र-

मणि ने एक अरजी डाक के द्वारा साहब मजिस्ट्रेट के पास भेजी कि इस विषय में मुझको बुला कर निर्णय किया जाय।

२१ जुलाई साहब बहादुर किसी कारण से रयासत रामपुर को पधारे, वहां के राज्याधिकारी पुरुषों ने साहब बहादुर से इन्द्रमणि के विषय में बहुत कुछ कहा और उन्हें महा कोपित कर दिया, ५ साहब उसी दिन रामपुर से लौट आये, २२ तारीख कचहरी में जाते ही मुंशी इन्द्रमणि को दफा २९२ और २९३ ताजिरात हिन्द का दोष लगाकर वारण्ट के द्वारा कचहरी में बुलाया। हम नहीं जानते जब कि मुंशी जी आप अरजी दे चुके थे कि मुझे बुलाया जाय, फिर साहब बहादुर ने प्रथम ही वारण्ट की क्या आवश्यकता १० समझी। क्या साहब बहादुर को मुसलमानों की प्रसन्नता और मुंशी साहब की जो कि हिन्दुस्तान भर में एक प्रतिष्ठित पुरुष हैं उनकी अप्रतिष्ठा ही करनी स्वीकार थी, परन्तु कोर्ट इंस्पेक्टर साहब जो वारण्ट लाये थे मुंशी साहब को अपनी सज्जनता के कारण प्रतिष्ठा सहित ही साहब की कचहरी में ले गये और मुंशी १५ साहब के पहुंचते ही बाबू नरेन्द्रचन्द्र और बाबू बैजनाथ वकील भी अदालत में पधारे। साहब बहादुर ने मुंशी साहब से कहा कि तुम ने 'हमल: हिन्द वा समसाम हिन्द' में अमुक अमुक बातें कहां से लिखी? उत्तर दिया कि अमुक अमुक किताब से लिखी हैं और मैंने ये किताबें मुसलमानों की बनाई हुई किताबों के उत्तर में २० लिखी हैं, कुछ दिन का अवकाश मिले तो सबका प्रमाण दूंगा, वकील भी अवकाश की प्रार्थना करते थे, परन्तु साहब ने इस पर कुछ ध्यान न किया और यह आज्ञा दी कि हम २५ को सरकारी गवाही सुनेंगे और २६ को मुकद्दमा करेंगे एक घण्टे के भीतर १०००) रु० जमानत के दो। एक घण्टे में १०००) रु० जमानत २५ की आज्ञा भी मुंशी साहब को बंदीग्रह भेजने की सूचक है, क्योंकि मुंशी साहब धनाढ्य तो हैं नहीं, केवल विद्या में प्रसिद्ध हैं, परन्तु ईश्वर को मुंशी साहब की बात रखनी थी, किसी पुरुष ने अपने पास से १०००) रु० जमानत का दे दिया।

२३ जुलाई को तातील थी २४ को मुकद्दमा पेश हुआ। साहब ३० बहादुर ने कहा कि हमने 'हमल: हिन्द व समसाम हिन्द' पर ३ आक्षेप रक्खे, इनका उत्तर दो -

(१) 'मेहर' को खरची क्यों लिखा ?
(२) मरियम के विषय में जो लिखा है कहां से लिखा ?
(३) आईशा और संग असवद की कथा कहां से लिखी ?

प्रथम बाबू बैजनाथ ने 'शरह मुहम्मदी' का तरजुमा बाबू
५ श्यामाचरण का किया हुआ जो कानून सरकारी है दिखाया है
इसमें भी 'मेहर' को खरची लिखा है, फिर मुंशीजी ने दूसरे प्रश्न
का उत्तर कुरान के 'सूरह तहरीम' में से दिखा दिया, इस पर
अंग्रेजी कुरान भी देखा गया उसमें भी वही अभिप्राय निकला।
तीसरे आक्षेप के विषय में मुंशी जी ने निवेदन किया कि 'हिन्दये-
१० तुल इसनाम' वालों ने एक कथा शिव पारवती की महा निन्दित
लिखी है वह 'रद्द हिन्दू' में से लिखी है उसके उत्तर में जो कुछ 'रद्द
मुसलमा' वाले ने लिखा था वही 'रद्दमुसलमा' में से मैंने लिखा है।
फिर मुंशी जी की ओर से दरखास्त गुजरी कि हमारे पास इस
समय कुरान के सिवाय और किताब नहीं है और हमलः हिन्द
१५ समसाम हिन्द में मुसलमानों की किताबों से लिखा है। १५ दिन
का अवकाश मिले तो सब किताब तलाश करके प्रमाण दिया जाय
और गवाहों के नाम सम्मन जारी कराये जायं। यह दरखास्त
नामंजूर हुई। फिर बाबू बैजनाथ ने दूसरी दरखास्त गुजारी कि
हुकम नामंजूरी दरखास्त की नकल मिले कि हम अपील करें और
२० मुकदमा मुतलवी रहे। यह भी नामंजूर हुई और जो कुछ मुंशी
साहब तथा वकीलों ने निवेदन किया साहब ने कुछ न सुना और
५००) रुपये मुंशी इन्द्रमणि पर जुरमाना कर दिया और सम्पूर्ण
'हमलः हिन्द व समसाम हिन्द' मकान मुंशी साहब के से कोर्ट
इंस्पेक्टर को भेजकर मंगाली और फड़वा डालीं।

२५ महान् शोक है कि यह वादानुवाद मुसलमान और हिन्दुओं में
३० वर्ष से हो रहा था और प्रथम मुसलमानों ने ही हिन्दुओं के
खण्डन में प्रमाण शून्य किताबें लिखी थीं, जिनसे हिन्दू मत की
बड़ी निन्दा और हानि हुई कि बहुधा हिन्दू उनकी मिथ्या बात
सुन कर मुसलमान हो गये। उनको तो आज तक सरकार ने कुछ
३० नहीं कहा और मुंशी इन्द्रमणि ने अपने मत की रक्षा के लिये उन
किताबों का उत्तर प्रमाण सहित लिखा और अब केवल वह
किताबें जो पहले दो बार मुद्रित होकर प्रसिद्ध हो चुकी है और

जिनसे आज तक कहीं कोई उपद्रव भी नहीं हुआ तीसरी बार छप-
वाई तो ५००) रु० जुरमाना हुआ और किताबें फाड़ी गई। इस
मुकद्दमे में साक्षात् मुसलमानों का पक्ष हुआ। इस मुकदमे को सुन-
कर नगर नगर के हिन्दुओं में हाहाकार हो रहा है। हिन्दू मुसल-
मानों में यहां विरोध हो गया। हम न्यायशील गवर्नमेण्ट से ५
प्रार्थना करते हैं कि यह शास्त्रार्थ जिस प्रकार ३० वर्ष से हो रहा
है और हिन्दू ईसाई मुसलमान आज तक जैसे अपने मत के प्रति-
पादन और परमत के खण्डन की किताबें लिखने में स्वतन्त्र हैं उसी
प्रकार हिन्दुओं को रक्खें। नहीं तो जिन जिन मुसलमानों ने
हिन्दुओं के खण्डन में किताबें लिखी हैं और देवता अवतार आदि १०
की वृथा निन्दा की है उनको भी दण्ड दे।

पृ० ५३७ पर 'पत्र-सारांश (पूर्णसंख्या ४८६)' के रूप में छपे
पत्र के सम्बन्ध में इसी पृ० की टिप्पणी १ (पं० २२-२३) देखें।
इसके विषय में पुनः पृष्ठ ५३६, में लिखा है—**'एक पत्र आर्य-
समाज गुजरांवाला के द्वारा भेजा था'** आर्यसमाज गुजरांवाला के १५
मन्त्री नारायण कृष्ण ने ऋ० द० के पत्र को श्री पं० आत्माराम
जी को भेजते समय जो पत्र साथ में लिख कर भेजा था, वह इस
प्रकार था—

आ० स० गुजरांवाला के मन्त्री नारायण कृष्ण का पत्र[1]

श्रीयुत पं० आत्माराम जी और लाला ठाकुरदास जी २०
नमस्ते।

देहरादून से यहां एक पत्र प्रश्न के उत्तर का जो आप सज्जनों
ने स्वामी जी से किये थे इस प्रयोजन से पहुंच्या था कि इसकी एक
नकल आप के समीप भेजी जावे, सो नकल आप के समीप भेजी
जाती है, और यह भी प्रकट किया जाता है कि इस की एक नकल २५
स्वामी जी की आज्ञानुसार लुधेहाने के श्रावक सज्जनों के पास भी
भेजी गई है, मुनशी प्रभुदयाल जी से आप कूं मालूम हुआ होगा।
ता० १३ नवम्बर सन् १८८० ईसवी।

द० नारायण कृष्ण आर्यसमाज गुजरांवाला

---

१. यह पत्र 'दयानन्द सरस्वती मुखचपेटिका' भाग १, पृष्ठ २० पर ३०
छपा है।

पृ० ५४४, पं० १२-१५ तक राजा शिवप्रसाद के मतानुसार जैन और बौद्ध एक हैं, इस विषय का उल्लेख किया है। (इस पर वहां की संख्या ३ की टिप्पणी देखें)। ठाकरदास ने इस विषय में राजा शिवप्रसाद को पत्र लिखा था उसका जो उत्तर राजा शिव-
५ प्रसाद ने दिया उसे हम नीचे दे रहे हैं। इस में राजा शिवप्रसाद ने जैनियों के दबाव में आकर अपने पूर्व लेख के विपरीत लिखा है। पत्र इस प्रकार है—

'श्री ५ सकल जैन पंचायत गुजरांवालों को शिवप्रसाद का प्रणाम पहुंचे कृपापत्र पत्रों सहित पहुंचा।

१० १. जैन और बौद्ध मत एक नहीं है सतानन से भिन्न भिन्न चले आये जर्मन देश के एक बड़े विद्वान् ने इसके प्रमाण में एक ग्रन्थ छापा है।

२. चार्वाक और जैन से कुछ संबंध नहीं जैन को चार्वाक कहना ऐसा है जैसा स्वामी दयानन्द जी महाराज को मुसलमान
१५ कहना।

३. इतिहास तिमिर नाशक का आशय स्वामी जी की समझ में नहीं आया उसकी भूमिका की नकल (१) इसके साथ दी जाती है उससे विदित होगा कि 'संग्रह' है बहुत बात खंडन के लिये लिखी गई मेरे निश्चय के अनुसार उसमें कुच्छ भी नहीं है.

२० ४. जो स्वामी जी जैन को इतिहासतिमिरनाशक के अनुसार मानते हैं तो वेदों को भी उसके अनुसार क्यों नहीं मानते.

आपका दास शिव प्रसाद

(१) **भूमिका** (इतिहासतिमिरनाशक की)

पढ़ने वालों से हम हाथ जोड़ के और बहुत नम्र होके विनती
२५ करते हैं कि जब तक पूरा ग्रन्थ न देख लें भला बुरा न कहें और ग्रन्थ कर्त्ता के मत निश्चय इष्ट उपासना भक्ति श्रद्धा का कुछ खोज न करें बड़ी भूल होगी यदि ग्रंथ की लिखावट से कोई इसका अनु-मान करना चाहेगा वा ऐसे संकल्प विकल्प और वादानुवाद में

---

१. यह पत्र 'दयानन्द सरस्वती मुखचपेटिका' भाग १ पृष्ठ ३५-३६
३० पर छपा है।

पड़ेगा यह ग्रंथ तो जैसा बहुत से ग्राधुनिक ग्रंथो में देखा गया ग्रौर वड़े वड़े ग्राधुनिक विद्वानों से सुना गया जो ग्रंगरेजी पारसी नहीं जानते उनके लिये हिन्दी में लिखा है इससे वह ग्रौर नहीं तो इतना ग्रवश्य जान जायंगे कि वह क्या सोचे हुये हैं ग्रौर दूसरे क्या सोचते हैं वह क्या समझे हुये हैं ग्रौर क्या समझते हैं यदि दूसरों ने कुछ ग्रयथार्थ सोचा समझा हो वह दृढ़तर प्रबल प्रमाण दे जब दूसरी बार ग्रंथ छपेगा उन्हीं के प्रमाणों के ग्रनुसार उसमें लिख दिया जायगा यह तो संग्रह है कुछ किसी मत के खण्डन वा स्थापन करने के निमित्त नहीं लिखा गया है इत्यलम् किमधिकम्.

बनारस १ जनवरी सन् १८७३ ई० शिवप्रसाद

पूर्ण सं० ६४४, पृ० ६७२, पं० १६-१७ –**वे जैसा [आर्य का] नोटिस लिख भेजें छपने के वास्ते वैसा ही छपवा देना।** पुनः पूर्ण संख्या ६६२, पृष्ठ ६६१, पं० २२-२३ –**आर्य पत्र का नोटिस भेजते हैं, टाइटल पेज पर छाप दो।** पुनः पूर्ण संख्या ७०९, पृ० ७४१, पं० १४-१६ 'ग्रार्य पत्र लाहौर ··· एक बार छाप देना।' यह 'ग्रार्य' पत्र सम्बन्धी नोटिस रूप विज्ञापन ऋग्वेदभाष्य ग्रङ्क ४२-४३ (सम्मिलित) ग्रङ्क (ग्राश्विन कृष्ण सं० १९३९) के टाइटल पेज ३ तथा ऋ० भा० ग्रङ्क ४८-४९ (सम्मिलित) ग्रङ्क (वैशाखकृष्ण १९४०) के टाइटल पेज ४ पर इस प्रकार छपा था—

विज्ञापन

आर्य

इस नाम का मासिक पत्र ग्रंग्रेजी भाषा में छपता है। इस में ग्रार्यावर्तीय प्राचीन विद्या, धर्म ग्रौर नीति ग्रादि उत्तमोत्तम विषयों पर बहुत लिखा जाता है। वेदादि सत्यशास्त्रानुकूल ग्रार्य-समाज के उद्देश्यों को समझने के लिये यूरोपादि देशवासियों ग्रौर एतद्देशीय ग्रङ्गरेजी जानने वालों को यह बहुत ही उत्तम साधन है। ग्रङ्गरेजी मासिक पत्र थियोसोफिस्ट में ग्रार्यसमाजों के विरुद्ध जो विषय छपते हैं उन का उत्तर ग्रार्य समाजों की ग्रोर से यही पत्र देता है।

जो सज्जन पुरुष इस को लेना चाहें, डाक व्यय सहित ४ रुपया वार्षिक भेज कर नीचे लिखे पते से मंगावें।

लाला रत्नचन्द बैरे

सम्पादक, आर्य दर्पण मिट्टा बाजार, लाहौर

५ पूर्णसंख्या ७०६, पृ० ७४१, पं० १४-१६ —'........**देशहितैषी अजमेर जिस प्रकार का नोटिस वेदभाष्य के टाइटल पेज पर छपने के लिये भेजे वैसा एक बार छाप देना**'। यह देशहितैषी पत्र सम्बन्धी नोटिस ऋग्वेदभाष्य अङ्क ४१-४२ (सम्मिलित) आश्विन कृष्ण सं० १९३९ के अङ्क के टाइटल पेज ३ पर इस प्रकार छपा

१० था—

देशहितैषी

मासिक पत्र आर्य समाज अजमेर की ओर से प्रकाशित होता है। जिस्में वेदादि सत्य शास्त्रानुकूल सनातन धर्मोपदेश तथा उपयोगी समाचार तर्क-वितर्क सहित प्रेरित पत्रादि निष्पक्षपाततायुक्त

१५ सरल भाषा में मुद्रित होते हैं। वार्षिक मूल्य केवल उपकार की दृष्टि से डाक महसूल सहित १≡) रखा है। जिन सद् व्यक्तियों को इस्का ग्राहक बनना स्वीकार होय इस पते से पत्र भेजे।

मुन्नालाल, मन्त्री आर्यसमाज अजमेर

पूर्ण संख्या ७४२, पृ० ७७३, पं० ३—**एक पत्र मुंशी इन्द्रमणि**

२० **जी के विज्ञापन रूप मेरे पास आया।** तथा पूर्ण संख्या ७८९, पृ० ८१९, पं० १४, २१ में भी **मुंशी जी के विज्ञापन का उल्लेख है।** मुंशी इन्द्रमणि ने जो विज्ञापन ऋ० द० और आर्यसमाज मेरठ के विरुद्ध छपवाया था, वह इस प्रकार था—

मुंशी इन्द्रमणि का विज्ञापन[1]

प्रकट हो कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की सम्मति से

२५ जगन्नाथदास की प्रश्नोत्तरी के खण्डन में एक व्याख्यान सर्वथा मिथ्या देशहितैषी नामक मासिक पत्र अजमेर में एक उचित वक्ता

---

१. यह विज्ञापन दयानन्ददिग्विजयार्क भाग ३, पृष्ठ १००-१०४ तक (नया दिल्ली संस्क० पृष्ठ १५४-१५७) तथा पं० लेखराम जी० च० हिन्दी स० पृष्ठ ८४३-८४५ तक छपा है। हमने दयानन्ददिग्विजयार्क से

३० छापा है।

के नाम से मुद्रित हुआ है और उसमें प्राय: यह नाम भी निन्दा के साथ लिखा है। उसका उत्तर भी शीघ्र ही मासिक पत्र के द्वारा जो कि हम धर्माधर्म के निर्णय में प्रचारित करना चाहते हैं, मुद्रित होकर सज्जनों के अवलोकनार्थ प्रकाशित किया जायगा। वरन् उक्त व्याख्यान के अन्त में जो यह लिखा है कि जगन्नाथदास और इन्द्र- ५ मणि की प्रतिज्ञा से विरुद्ध करना आदि अन्यथा व्यवहारों को जो कोई सज्जन पुरुष जानना चाहें वो आर्यसमाज मेरठ के लाला रामशरणदास आदि भद्रपुरुषों से पूछ देखें कि अन्य मार्गियों के विचार विषय की शान्तिकारक व्यवहार प्रसंग में इन्होंने कैसा-कैसा विपरीत व्यवहार किया है। मैंने अद्य पर्यन्त उस विषय को १० स्वामी जी की अति निन्दा का कारण जानकर मुद्रित नहीं कराया, परन्तु जबकि वे उल्टा चोर कोतवाल को डांटे इस दृष्टान्त के सदृश अब मेरी मिथ्या निन्दा लोगों से करने और छपवाने लगे, तब उस विषय को प्रकाशित कर देना अत्यावश्यक जाना। विदित हो कि जिस समय मुझ पर मुसलमानों के झगड़े में १५ ५००) रु० दण्ड हुआ तो स्वामी जी ने समाजों को पत्र लिखे कि मुन्शी इन्द्रमणि की सहायता के लिए चन्दा करके हमारे तथा लाला रामशरणदास सभासद् आर्यसमाज मेरठ के पास भेजो। यहां से एकत्र करके मुन्शी जी के पास भेजा जायगा, जिससे कि वह उक्त दण्ड क्षमा होने के लिये अपना मुकदमा लड़ावें। स्वामी २० जी के लेखानुसार लाहौर, अमृतसर, रुड़की, फर्रुखाबाद, फीरोजपुर, शाहजहांपुर और गावाद, दार्जिलिंग, गुरुदासपुर, जेहलम, मुल्तान, बटाला आदि के सज्जनों ने यथोचित द्रव्य एकठ्ठा करके स्वामी जी तथा लाला रामशरणदास के पास भेजना प्रारम्भ किया, जबकि उक्त मुकदमे का अपील जजी मुरादाबाद ही २५ में दायर था तो मुझ को ६००) रु० मिस्टर हिल साहब बैरिस्टर हाईकोर्ट के पास भेजने की आवश्यकता हुई, तब मैंने आप मेरठ जाकर लाला रामशरणदास से कहा कि ६००) रु० बैरिस्टर साहब के पास भेजने हैं, जिसमें ४००) रु० तो मेरे पास हैं, २००) रु० चन्दे के रुपये में से जो तुम्हारे पास जमा हुआ है, दे दीजिये, ३० लाला साहब ने उत्तर दिया है कि यहां से तो अभी तुमको रु० नहीं मिलेगा, वहीं से कुछ यत्न करके भेज दो। फिर मैंने उनसे प्रश्न

किया कि अब तक आपके पास कितना रुपया जमा हुआ है तो उत्तर दिया कि समाज से बतलाने की आज्ञा नहीं है। धन्य है जिसकी सहायता के लिये सज्जनों ने धन भेजा उसको देना तो क्या ? यह भी न बतलाया जाय कि इतना द्रव्य है। निदान मैं ५ वहां से अपने स्थान को चला आया और एक सज्जन की सहायता से बैरिस्टर साहब को ६००) रु० भेज दिये फिर जब जजी मुरादाबाद से ५००) रु० जुर्माने में से ४००) रु० जमा होकर १००) रु० शेष रहे, तब लाला रामशरणदास जी मुरादाबाद आए थे। मैंने उनसे कहा कि अब हाईकोर्ट में अपील करनी है, १० रुपया भेजिये। तब भी लाला साहब ने वही उत्तर दिया कि वहां से तो रुपया नहीं मिलेगा यहीं से यत्न करके हाईकोर्ट की अपील कर दीजिये। फिर लाला रामशरणदासजी अपने स्थान को चले गये और मैं रुपये के लिये कई बार स्वामी जी को तथा लाला रामशरणदास जी को लिखा मुझे दोनों जगह से कुछ न उत्तर मिला। १५ तब मैंने भारतमित्र कलकत्ते में यह छपवाया कि जिन सज्जनों को मेरे मुकदमे में सहायता करनी हो वह जो देना चाहें, वह मेरे ही पास भेजें अन्य जगह को भेजा हुआ द्रव्य मुझ को नहीं मिलता ! फिर स्वामी जी को लिखा कि इस मुकद्दमे के लिए आपके तथा रामशरणदास के पास धन जमा हुआ और हमको नहीं मिलता २० यदि आपका विचार ऐसा ही है तो स्पष्ट लिख दीजिये। हम हाईकोर्ट का अपील न करें इस लिखा-पढ़ी के उपरान्त स्वामी जी ने ६००) रु० रामशरणदास जी ही के पास रक्खा हां जिन महाशयों ने मेरे पास धन भेजा वह मेरे पास पहुंचा और उन्हीं के सहाय से इस मुकद्दमे का काम चला। यहां यह विषय संक्षेप से २५ निवेदन किया गया विस्तारपूर्वक फिर प्रकट किया जायगा। अब बुद्धिमान् न्याय करें कि जो धन सज्जनों ने मेरी सहायता के निमित्त स्वामी जी तथा रामशरणदास जी के पास भेजा और उन्होंने सम्पूर्ण मुझको न दिया किन्तु उसके स्वामी बन बैठे तो अन्य मार्गियों के विवाद के विषय के शान्तिकारक व्यवहार प्रसङ्ग ३० में स्वामी जी और रामशरणदास जी ने विपरीत व्यवहार किया है या मैंने।

इन्द्रमणि मुरादाबाद

पूर्ण संख्या ७६३, पृ० ७६५, पं० २६ से पृ० ७६६, पं० २ तक महाराणा उदयपुराधीश को आर्यसमाजों की ओर से जिस धन्यवाद पत्र[1] के भेजने का उल्लेख है वह इस प्रकार था—

आर्यसमाजों की ओर से
महाराणा सज्जनसिंह जी को समर्पित धन्यवाद-पत्र ५

श्रीमन्महाराजाधिराज महिमहेन्द्र यावदार्यकुलदिवाकर महाराणा श्री श्री १०८ श्री सज्जनसिंहजी वर्म्मा धीरवीर चिर प्रतापी जी० सी० एस० आई० मेदपाटाधीश चरणेषु।

महामान्यवर महाशय

श्रीमान्! इस आर्यसमाज का सविनय निवेदन यह है कि १० हमारे आर्यावर्त्त देश के यावत् भूत भावी और वर्त्तमान आर्यसमाजों के सर्वस्व रूप परम पूजनीय परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ श्री मद्दयानन्द सरस्वती स्वामीजी महाराज का सर्वत्र उपदेश करते करते इस वर्ष यावदार्यकुलदिवाकर के प्राचीन और अक्षतराज्य मेवाड़ में भी पधारना होकर सात मास के लगभग निवास हुआ १५ और जब तक उक्त स्वामी जी महाराज का तत्र निवास हुआ तब तक श्रीमान् ने अपनी परम प्रसिद्धि योग्यता के अनुसार स्वामी जी महाराज का आतिथ्य और आदर सम्मान बहुत ही अच्छी तरह रक्खा कि जिसके सविस्तार समाचार हम लोगों के जानने में आकर यह उत्कंठा हुई कि हम सब लोग हमारे उस सनातन २० यावदार्यकुलदिवाकर को इस निवेदन पत्र द्वारा अन्त:करण से धन्यवाद अर्पण करें कि जिनके शूरवीर पुरुषा हमारे प्रजापति सब समय से लेकर इस समय तक निरन्तर रहे हैं कि जिस समय की आर्य-विद्या-धर्म और राजनीति का उपदेश और प्रतिपादन उक्त स्वामी जी महाराज वर्त्तमान काल में करते हैं॥ २५

श्रीमन् महाशय राजन्! जैसे इस वर्ष स्वामीजी महाराज का अकस्मात् पधारना मेदपाट देश में होने से आर्यावर्त्त की सनातन आर्य-विद्याधर्म और राजनीति के उपदेश श्रवण करने का अवसर

---

१. यह धन्यवाद पत्र दयानन्ददिग्विजयार्क भाग ३, पृष्ठ १४९-१५१ (नया दिल्ली संस्करण पृष्ठ १७९-१८०) पर छपा है। हमने वहीं से लेकर ३० छापा है।

श्रीमान् को अपने सभ्य सुभटगणसहित प्रथम ही प्राप्त हुआ है वैसे ही सब आर्यसमाजों को भी आज श्रीमान् को अपने सनातन यावदार्यकुलदिवाकर जानने और सविनय धन्यवाद देने का प्रथम ही हस्तगत हुआ है निदान श्री श्री जगदीश्वर से यही प्रार्थना
५ है कि श्रीमानों को चिरस्थाई रक्खें ॥

श्रीमान् आपने जो एक अपना निज हस्ताक्षरी पत्र स्वामी जी महाराज को अर्पण किया है उसकी प्रति अवलोकन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जैसी हम लोग श्रीमान् की योग्यता इतने दूरस्थ प्रदेशों में बैठे-बैठे सुनते थे वह आज सर्वरीत्या निश्चित हुई
१० और उसमें भी विशेषता यह है कि जो कुछ श्रीमानों ने उक्त पत्र में लिखा है वह छ: सात महीनों तक निरन्तर स्वामी जी महाराज की परीक्षा करके लिखा है। और इसके अतिरिक्त यह भी आपको अपने धन्यवाद देने योग्य विषय है कि श्रीमानों ने उक्त स्वामी जी महाराज कृत स्वीकार पत्र और उसमें नियत की हुई व्यवस्थापक
१५ सभा के सभापति का पद अपने कतिपय सभ्य सुभटों सहित अंगीकार किया कि जिससे यह दृढाशा हुई कि श्रीमान् हम सब आर्यों पर अब से वही सनातन पुत्रवत् कृपा दृष्टि रक्खेंगे ॥ अन्त में सब आर्यों की यही सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर से प्रार्थना है कि श्रीमानों को धनवान् पुत्रवान् और आयुष्मान् पूर्णप्रतापयुक्त करे।
२० मिति········ संवत् १९४० विक्रमी

श्रीमदीय चरणसेवक समस्त आर्य समाज के प्रधान सभासदों की ओर से ॥

हस्ताक्षर—सभापति
हस्ताक्षर—उपसभापति
२५ हस्ताक्षर—मन्त्री
हस्ताक्षर—कोशाध्यक्ष
हस्ताक्षर—पुस्तकाध्यक्ष

पूर्ण संख्या ७६५, पृ० ७६८, पं० १४—**एक मान्य-पत्र मुझको दिया—**

३० पूर्ण संख्या ८०५, पृ० ८३६, पं० ६—**मान्य-पत्र पर यदि तुम्हारा लेख**············

पूर्ण संख्या ८११, पृ० ८४२, पं० ३-६—**जो [लेख] मुंशी**

समर्थदान ने मान्य-पत्र के साथ छापा है, सो अच्छा है। क्योंकि इतने लेख के विना मान्य-पत्र का अर्थ लोगों के समझ में नहीं आता। इतना लेख अवश्य होना था।

मुंशी समर्थदान का प्रारंभिक लेख तथा मान्य-पत्र यजुर्वेद-भाष्य अङ्क ४८, ४९ (सम्मिलित) के आवरण पत्र पृष्ठ ३ पर ५ इस प्रकार छपा था—

विज्ञापन

सब सज्जनों को प्रकट हो कि श्री स्वामीजो महाराज श्री महाराणा जी के उदयपुर में ७ मास तक विराजमान रहे। उस समय श्रीमान् उदयपुराधीशों ने स्वामी जी महाराज को मान-पत्र दिया, सो सब लोगों के अव- १० लोकनार्थ प्रकट किया जाता है—

मान-पत्र की प्रति

श्रीमदेकलिङ्गेश्वरो जयति ॥

स्वस्ति श्री सर्वोपकारार्थकारुणिकपरमहंसपरिव्राजकाचार्य-वर्यश्री ५ श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीयतिवर्येषु इतः महाराणा सज्जन- १५ सिंहस्य नतिततयः समुल्लसन्तु उदन्तस्तु। आप का अठै सात मास का निवास सूं चित अत्यन्त आनंद मैं रह्यो क्योंकि आपकी शिक्षा को प्रकार श्रेष्ठ और उन्नतिदायक है और आपका संयोग सूं के ही न्याय धर्मादि शारीरिक कार्यों[1] मैं निस्सन्देह प्राप्त होवा की म्हां का सभ्य जना सहित दृढाशा हुई कारण कि शिक्षा और उपदेश वां २० श्रेष्ठ पुरुषां दृढ होवै है ज्यो स्वकीय आचरण भी प्रतिकूल नहीं राखै सो यो आप में यथार्थ मिल्यो अब म्हें आपका वियोग को संयोग तो नहीं चावांहा परन्तु आपको शरीर अनेक मनुष्यां कै उपकारक है जी सूं अवरोध करणों अनुचित है तथापि पुनरागमन सूं आप भी म्हाका चितनैं शीघ्र अनुमोदित करेगा इत्यलम्। २५

सं० १९३९ फाल्गुन कृष्ण ५ भौमे

हस्ताक्षर
महाराणा
सज्जनसिंहस्य

---

१. न्याय धर्म और शरीर की उन्नति के लिये ऋषि दयानन्द ने महा- ३०

पृ० ८०१, पं० २२-२३—**यजुर्वेदभाष्य का ४६-४७ (सम्मिलित) अङ्क देर से प्रकाशित हुआ।** इस की सूचना समर्थदान ने इस अङ्क के टाइटल पेज ४ पर इस प्रकार दी थी—

वेदभाष्य के प्रिय ग्राहकों से निवेदन है कि कई कारणों से श्री
५ स्वामी जी महाराज के पास से वेदभाष्य के पत्रों के आने में देर हो गई। इससे यह (४६-३७) अङ्क समय पर न निकल सका। और इसके निकलने में देर होने के कारण ऋग्वेद का अङ्क भी १ अप्रेल को नहीं निकल सकेगा। कुछ पीछे से निकलेगा।

पूर्ण संख्या ७७२, पृ० ८०२, पं०७—**[वेदभाष्य की] जिल्दें**
१० **बंधवाने का लिखा सो अच्छा।** मुंशी समर्थदान ने वेदभाष्य की जिल्द बंधवाने का विज्ञापन ऋग्वेदभाष्य अङ्क ४०-४१ (सम्मिलित) श्रावण अधिक सं० १९३९ के आवरणपत्र पृष्ठ ४ पर निम्न प्रकार छापा था—

वेदभाष्य की जिल्द

१५ वेदभाष्य के ग्राहकों को प्रकट हो कि दोनों वेदों का भाष्य बहुत सा छपकर आप लोगों के पास पहुंच चुका है, इसलिये दोनों वेदों की जिल्दें बन्धवा लेना ठीक है। दोनों वेदों की पृष्ठ संख्या तो आदि से अन्त तक एक ही रहेगी परन्तु जिल्दें पृथक् पृथक् होंगी। यद्यपि एक एक जिल्द की पृष्ठ संख्या पृथक् पृथक्
२० होती तो उत्तम थी परन्तु जहां जहां दोनों वेदों की संख्या का टूटना ठीक था वहां से आगे तक छप गई। इसलिये अब तक एक ही संख्या रक्खी गई है॥

जिल्द का क्रम ऐसा रक्खा है कि 'ऋग्वेदभाष्य' अङ्क ४०-४१ में पृष्ठ ११२८ तक चौथा अध्याय पूरा हुआ है यहां तक एक जिल्द
२५ होगी। और यजुर्वेदभाष्य का दशवां अध्याय तक ३४।३५ में पृष्ठ ९६० तक पूरा हुआ है इसकी एक जिल्द बंधेगी। हम दोनों वेदों को एक एक जिल्द का सूचीपत्र और शुद्धिपत्र पृथक् पृथक् छपवा के ग्राहकों के पास पीछे से किसी अङ्क के साथ भेजंगे तब सब लोग

राणा सज्जनसिंह को '**दिनचर्या के नियम**' लिख कर दिये थे। वे नियम पूर्ण
३० संख्या ७२९ पर पृष्ठ ७५५-७६४ तक छपे हैं। उन्हीं की ओर यह संकेत प्रतीत होता है।

दोनों भाष्यों के साथ शुद्धिपत्र और सूचीपत्र लगाकर जिल्द बंधवा लें।

समर्थदान
प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय
प्रयाग ५

पूर्ण संख्या ८१०, पृ० ८४०, पं० ४—**तेरे लिखे प्रमाणे प्रतिकृति भेजी जाती है—**

ऋषि दयानन्द की प्रतिकृतियां (फोटो) अनेक स्थानों पर ली गईं। उनकी एक सूची श्री महाशय मामराज जी ने भेजी है जिसे उन्होंने महान् परिश्रम और अन्वेषण कर के तैयार किया है। उसे १० हम आगे परिशिष्ट ६ में दे रहे हैं पाठक वहां देखें। उन में से ऋ० द० सरस्वती के उपलब्ध असली फोटो और उपलब्ध मूल पत्रों की प्रतिकृति दयानन्द अङ्क १, वेदवाणी वर्ष ३६, अङ्क १, नवम्बर १९८३ में देखें।

पूर्ण संख्या ८२३, पृ० ८५२, पं० ११—**वेदभाष्य के टाइटल पर** १५ **जोधपुर का नोटिस छाप देना।** यह नोटिस (सूचना) यजुर्वेदभाष्य के ४८-४९ (सम्मिलित) अङ्क तथा ऋग्वेदभाष्य के सं० १९४० आषाढ शुक्ल के ५०—५१ (सम्मिलित) अङ्क में टाइटल के प्रथम पृष्ठ पर नीचे इस प्रकार छपी थी—

'विदित हो कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी इन दिनों २० मारवाड़ देश में जोधपुर शहर में विराजमान हैं।'

पूर्ण संख्या ८२३, पृ० ८५३, पं० ५-६—**ये निम्नलिखित समाचार वेदभाष्य के टाइटल पेज पर छाप देना।**

समर्थदान ने उक्त समाचार ऋग्वेदभाष्य अङ्क ५०,५१ (सम्मिलित) के आवरण पत्र पृष्ठ ४ पर इस प्रकार छापा २५ था—

उदारता

हम अत्यन्त धन्यवादपूर्वक प्रगट करते हैं कि शाहपुरेश श्रीमान् महाराज राजाधिराज श्री नाहरसिंह जी वर्मा ने वेदभाष्य की सहायता में २००) रु० चित्तौड़ी (जिनके १५० रु० कलदार होते ३० हैं) दिये और ३०) रु० मासिक मिति जेष्ठ कृष्ण ४ सं० १९४०

से वैदिक धर्म्मोपदेशक मण्डली के व्यय के लिये देना स्वीकार किये हैं।

समर्थदान
प्रबन्धकर्त्ता
५ वैदिक यन्त्रालय
प्रयाग

[श्री पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जी० च० पृष्ठ ६६२ पर लिखा है—'विदा के समय शाहपुराधीश ने २५०) रु० वेदभाष्य की सहायतार्थ, दिये·········।' यहां १५० कलदार के स्थान में २५०) भूल से छप गया प्रतीत होता
१० **है[1]।]**

पूर्ण संख्या ८६३, पृष्ठ ८८०, पं० ६-७—**आप के·········पत्र में किसी ने वेद पर आक्षेपपत्र छपवाया है।** यह आक्षेप पत्र मूलत: 'थियोसोफिस्ट' मार्च १८८३ में मिस्टर ए० ओ० ह्यूम साहब ने छपवाया था। उसे 'भारतमित्र' पत्र के सं० १६४० आषाढ़ सुदी ८
१५ गुरुवार के अङ्क में भारतमित्र के सम्पादक ने उद्धृत करके लिखा —'हम लोगों को आशा है कि स्वामी दयानन्द जी इसका खण्डन कर आर्यसमाज का गौरव बढ़ावेंगे'। (१४ जुलाई सन् १८८३)। मिस्टर ह्यूम का आक्षेप निम्न प्रकार था—

मिस्टर ह्यूम का वेद पर आक्षेप[2]

२० 'वेद ईश्वर की वाणी है, इसलिये अभ्रान्त है, आर्यावर्त्त और स्वामी दयानन्द जी का यही मूल मन्त्र है। परन्तु फिर प्रश्न उठता है कि इतना अनुमानातीत वेद ऐसा अनुमान क्यों है? ईश्वर का वचन इतना रहस्यमय क्यों है? यदि इस मूल मन्त्र को कि वेद अभ्रान्त है, सत्य मानलें तो इस का अर्थ यह होगा कि वेद
२५ के उपदेशक अभ्रान्त (निर्भ्रान्त) हैं। क्योंकि वेद में भ्रान्ति का अस्तित्व और अनस्तित्व भाष्यकारों के हाथ में है। स्वामी

---

१. शाहपुराधीश द्वारा दिया गया मान पत्र तीसरे भाग में यथास्थान छापा है, वहां देखें।

२. यह हमने पं० लेखराम कृत जीवन चरित हिन्दी सं० पृष्ठ ८३७ से
३० उद्धृत किया है।

दयानन्द का वेदभाष्य भी तब अभ्रान्त हो सकता है जब दयानन्द जी स्वयं ईश्वर के तुल्य हों और उन में ईश्वर की पूर्ण प्रेरणा हो। इसलिये मैं ललकार कर कहता हूं कि स्वामी जी अपने मूल मन्त्र को प्रमाणित करें या अपनी प्रेरणा का प्रमाण दें।'

५

पूर्ण संख्या ८६०, पृष्ठ ६०८, पं० १६—**श्रीमान् महाराणा जी ने धन्यवाद पत्र के प्रत्युत्तर में लिखा सो अच्छी बात हुई।** आर्य-समाजों की ओर से प्रेषित (पूर्व पृष्ठ १०३५ पर मुद्रित) धन्यवाद पत्र के उत्तर में महाराणा उदयपुराधीश ने जो लिखा वह इस प्रकार है—

श्रीमान् १०

उदयपुराधीश के आज्ञापत्र की प्रति

श्री राम जी

श्री

श्री एकलिङ्ग जी	श्री सज्जन महीशस्यश्चैक—
नम्बर	लिङ्गरतेरियम् ॥ स्वतन्त्रसदसो १५
१५६	मुद्रा मुद्रिता हि दयानिधेः
	॥१॥

सिद्धि श्री श्री आर्यसमाज अमुक योग्य लिखी राज्यस्थान उदयपुर से राजे श्री महद्राजसभा अपरं च राज में जो एक आर्य-समाज अमुक का धन्यवाद पत्र लिखा मिती आश्विन कृष्ण ३ २० आश्विन संवत् १६४० का श्री मन्महाराजाधिराज महिमहेन्द्र यावदार्यकुल दिवाकर महाराजा जी श्री १०८ श्री सज्जनसिंह जी वर्मा धीर वीर प्रतापी की सेवा में उक्त समाज की ओर से सविनय निवेदन करने की राज के पत्र लिखे मिती आश्विन कृष्ण ३ सं ४० के साथ भेजा वह आज श्रीमान् यावदार्यकुल दिवाकर की सेवा में २५ यथाविधि निवेदन होकर उसको प्रत्युत्तर में श्रीमदीय आज्ञानुसार लिखने में आता है कि उक्त धन्यवाद पत्र को श्रीमानों ने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार किया और उक्त समाज के सभासदों ने जो अपने

शुद्ध अन्तःकरण से अपनी वृत्ती और विचार इस अक्षतराज्य के प्रति उक्त धन्यवाद पत्र में प्रकाशित किये हैं उनको ज्ञात करके भी श्रीमान् अति प्रसन्न हुए और सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से आशा रखते हैं कि सर्व आर्यों के ऐसे ही श्रेष्ठ विचार सदैव रह कर मेद-
५ पाटेश्वर के लालन और पालन के भागी होंगे और प्रतिदिन आर्यावर्त्त देश की सनातन आर्यविद्या धर्म-उच्चनीति और रीति मर्यादादि को सम्प्रति काल के क्षय से संरक्षित करके यथास्थित पालन करेंगे किमधिकम् संवत् १९४० आश्विन कृष्ण १४ तदनुसार तारीख २९ सितम्बर[1] सन् १८८३ ई०

१० हस्ताक्षर मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया मन्त्री
राजे श्रीमहद्राज सभा श्री दर्बार देश मेवाड़

पूर्ण संख्या ८९३, पृ० ९१२, पं० ६-९ – **ऋग्वेद का चौथा अष्टक भी पूरा हो गया। पांचवें अष्टक का एक अध्याय कल पूरा होगा और छठा मण्डल आज पूरा हो गया। परमेश्वर की**
१५ **कृपा से १ वर्ष में ऋग्वेदभाष्य पूरा हो जायगा।**

यह पत्र ऋषि दयानन्द ने भाद्र वदी ५ सं० १९४० = २३ अगस्त १८८३ को लिखा था। इसके पश्चात् ऋषि दयानन्द केवल दो मास ७ दिन ही जीवित रहे। उसमें भी २७ सितम्बर से अन्त तक रुग्ण ही रहे। इस बीच के १ मास ४ दिन में ऋषि दयानन्द
२० ने सातवें मण्डल के ६२ वें सूक्त के दूसरे मन्त्र तक का भाष्य किया।

ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेद और यजुर्वेद का भाष्य कहां तक किया, तथा उनके सामने कितना छपा, कितने भाग की प्रेसकापी बनी, और कितने भाग तक हिन्दी बन गई थी। इन सब बातों की
२५ सूचना देने के लिये श्रीमती परोपकारिणी सभा के तात्कालिक

---

१. ऋषि दयानन्द के पूर्ण संख्या ८९० के जिस पत्र में इस धन्यवाद पत्र के प्रत्युत्तर में लिखे लेख का उल्लेख है, वह भाद्र वदी १ सं १९४० = १९ अगस्त १८८३ का है। इससे प्रतीत होता है महाराणा जी द्वारा प्रथम प्राप्त धन्यवाद पत्र के प्रतिलेख की हस्तलिखित प्रति भेजी जा चुकी थी।
३० प्रस्तुत पत्र आश्विन कृष्णा ३ को लिखे गये धन्यवाद पत्र के उत्तर में लिखा गया है।

मन्त्री श्री पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने ऋषि दयानन्द के अनन्य सेवक और लेखक ब्र० रामानन्द को नियत किया। रामानन्द ने इन विषयों का जो लिखित उत्तर पाण्ड्या जी को दिया वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस पत्र को श्री महाशय मामराज जी ब्र० रामानन्द के घर से खोज कर लाये थे। पत्र इस प्रकार ५ है—

ब्र० रामानन्द का पत्र

श्रीयुक्त माननीयानेक शुभगुणगणाऽलंकृत ब्रह्मकर्मसमर्थ श्रीमत्पंडितवर्य मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्याऽभिधेयेष्वितो रामानन्दब्रह्मचारिणोऽनेकधा प्रणतयः समुल्लसन्तुतरामिति। १०

भगवन् आपने जो मुझे श्रीयुत परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी जी कृत ऋग्वेदादि भाष्य के विषयों की परीक्षा कर के श्रीमती परोपकारिणी सभा में निवेदन करने के लिये (एक सारांश) बनाने को प्रेरणा की थी सो आपकी आज्ञानुसार उसको बनाकर आप की सेवा में समर्पित कर्त्ता हूं, १५ अवलोकन कीजियेगा।

इत्यलं प्रशंसनीय बुद्धिमद्वर्येषु

मिति पौष कृष्ण ३ शुभचिन्तक
रवि सम्वत् १९४० रामानन्द ब्रह्मचारी

ऋग्वेदभाष्य

श्रीयुत परमहंस परिव्राचकाचार्य श्री १०८ मद्दयानन्द सरस्वतीजी कृत ऋग्वेदादिभाष्य की व्यवस्था निम्नलिखित प्रमाणे जानना चाहिये—अर्थात्

ऋग्वेद का भाष्य १ मण्डल के आरम्भ से ७ वें मण्डल के ६२ वें सूक्त के २ मन्त्र तक रचा गया।

१ मण्डल के आरम्भ से ८६

यजुर्वेदभाष्य २०

यजुर्वेद का भाष्य सम्पूर्ण हो गया अर्थात् ४० वें अध्याय की समाप्ति पर्यन्त रचा। १५ वें अध्याय के ११ मन्त्र तक का भाष्य मुद्रित हो गया अर्थात् ५० और ५१ अंक तक। २५

१५ वें अध्याय के १२ वें मन्त्र से लेकर २१ वें मन्त्र तक की शुद्ध प्रति छपने में शेष मुन्शी समर्थदान जी के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है। ३०

सूक्त के ५ मन्त्र तक मुद्रित हो चुका अर्थात् ५०+५१ अङ्क तक।

१ मण्डल ८६ सूक्त के ६ मंत्र से ९१ सूक्त के ३ मंत्र तक की शुद्ध प्रति छपने में शेष मुन्शी समर्थदानजी के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है।

१५ वें अध्याय के २२ वें मन्त्र से २३ वें अध्याय के ४९ मन्त्र तक छपने योग्य शुद्ध प्रति लिखी हुई है।

१ प्रथ[म] मंडल के ९१ सूक्त के ४ मन्त्र से १ प्रथम मण्डल ११४ वें सूक्त के ५ वें मन्त्र तक की शुद्ध प्रति लिखी हुई छापने योग्य है।

२३ वें अध्याय के ५० वें मन्त्र की भाषा बनी हुई शुद्ध प्रति में लिखने योग्य है।

१ प्रथम मंडल के ११४ सूक्त के ६ मन्त्र से १ मंडल के १२४ वें सूक्त के १२ वें मन्त्र तक की भाषा बनी हुई है।

२३ वें मन्त्र के ५१ वें मन्त्र से ६५ मन्त्र तक अर्थात् अध्याय की समाप्ति पर्यन्त की भाषा नहीं बनी।

१ मण्डल के [१२४ वें सूक्त के १३ वें] मन्त्र से १ मण्डल के [१४३ वें] सूक्त की समाप्ति पर्यन्त का भाष्य पं० ज्वालादत्त जी [के पा]स भाषा बनाने के लिये वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है।

२४ वें अध्याय से २६ वें] अध्याय तक का भाष्य भाषा बनाने के लिये पं० ज्वालादत्त जी के पास वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में है।

१ मण्डल १४४ वें सूक्त से मंडल ७ के ६२ वें सूक्त के २ मन्त्र तक का भाष्य अशुद्ध संस्कृत में बना हुआ है।

२७ वें अध्याय के आरम्भ से ४० वें अध्याय की समाप्ति पर्यन्त का अशुद्ध संस्कृत भाष्य बना हुआ है अर्थात् बिना शुधी संस्कृत है।

१ मण्डल के ६१ वें सूक्त के ५ वें मन्त्र से १ मण्डल के ११४ वें सूक्त के पूर्व मन्त्र के ऋग्वेद भाष्य के रद्दी पत्रे अर्थात् शुद्ध प्रति हो गई।

१३ वें अध्याय के २१ वें मन्त्र से २३ वें अध्याय के ४९ वें मन्त्र तक के रद्दी पत्रे हैं अर्थात् शुद्ध प्रति हो गई।

मिति पौष कृष्ण ३ रवि सं० १९४०

विशेष—इस पत्र में ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के कुछ भागों के लिये **'अशुद्ध संस्कृत'** शब्द का प्रयोग हुआ है। उसका तात्पर्य **रफ कापी से है अर्थात्** उस भाग की **'फेयर कापी'**=**'मुद्रण योग्य'** प्रतिलिपि तैयार नहीं हुई थी।

ब्र० रामानन्द का यह पत्र परोपकारिणी सभा के २८ दिसम्बर १८८३ के प्रथम अधिवेशन में पढ़ा गया था और इस विषय में निम्न प्रस्ताव पास हुआ था—

'प्रस्ताव सं० ५ एक पत्र इस विषय पर पढ़ा गया कि स्वर्गवासी स्वामी जी ऋग् और यजुर्वेद भाष्य का कौन कौन सा भाग समाप्त और असमाप्त छोड़ गये हैं। प्रतीत होता है कि समग्र यजुर्वेद का भाष्य स्वामी जी पूर्ण कर गये परन्तु बहुत थोड़ा भाग उसका अब तक मुद्रित हुआ है और ऋग्वेद का सप्तम मण्डल तक।

सबकी सम्मति से यह स्वीकृत हुआ कि पण्डित भीमसेन तथा ज्वालादत्त प्रूफ के शोधने और संस्कृत भाष्य का हिन्दी अनुवाद करने के कार्य पर नियत किये जायं और प्रति व्यक्ति को २५) पच्चीस मुद्रा मासिक वेतन मिले..........।'

परोपकारिणी सभा के अधिवेशनों का रिपोर्ट संग्रह (सन् १९२७) पृष्ठ ३॥

पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने २८ दिसम्बर १८८३ के अधिवेशन के प्रस्ताव संख्या ७ के अनुसार २८ दिसम्बर १८८५ के अधिवेशन में **एक आवेदन पत्र** (६ दिसम्बर १८८५ का छपा) उपस्थित किया, जिसमें ऋषि दयानन्द के लिखित तथा उनके संगृहीत लिखित और मुद्रित पुस्तकों का विवरण दिया है। उस आवेदन पत्र में ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के सम्बन्ध में निम्न लेख है—

वेष्टन नं० १८—श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेद और यजुर्वेदभाष्य अशुद्ध लेख अर्थात् संस्कृत शोधकर भाषा बनाने का।

वेष्टन नं १९—श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेद और यजुर्वेदभाष्य का शुद्ध लेख भाषा सहित, जो छापने योग्य।

वेष्टन नं० २०—श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेदभाष्य भाषा

सहित, इसकी शुद्ध प्रति लिखी जाकर वेष्टन संख्या १९ में रखनी।

इस उद्धरण में भी 'शुद्ध' शब्द **प्रेस कापी** के लिये और '**अशुद्ध लेख**' **रफ कापी** के लिये प्रयुक्त हुआ है।

—:०:—

५

चतुर्थ परिशिष्ट

आर्यसमाज-स्थापना की वास्तविक तिथि

ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में वैदिक धर्म के प्रचारार्थ और वैदिक आर्ष वाङ्मय वा आर्षज्ञान के प्रसारार्थ क्रमशः आर्यसमाज और परोपकारिणी सभा की स्थापना की थी। परोपकारिणी सभा
१० की स्थापना तिथि जो उदयपुर के स्वीकार पत्र में 'सं० १९३९ फाल्गुन शुक्ला ५ मंगलवार तदनुसार ता० २७ फैब्रुवरी सन् १८८३ ई०' छपी है (द्र०—पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ७८८, पं० १४-१६)। उस में विद्यमान अशुद्धि का संशोधन उसी स्थान पर टिप्पणी में दर्शा दिया है। आर्य समाज की स्थापना तिथि में
१५ मूलतः न भूल है, और न आरम्भ में इसके सम्बन्ध में कोई विवाद ही था। यह झूठा विवाद बम्बई आर्य समाज के भवन पर लगे एक जाली शिला लेख से उत्पन्न हुआ है। अतः हम यहां आर्यसमाज स्थापना तिथि के विवाद के मूल भूत प्रमाणों और हेतुओं की मीमांसा करके पूर्वतः स्वीकृत शुद्ध स्थापना तिथि की प्रामाणिकता
२० दर्शाएंगे।

विवाद का आरम्भ और कारण—सन् १९३९ तक आर्य-समाज की स्थापना तिथि निर्विवाद रूप से **चैत्र शुक्ला ५, सं० १९३२** (गुजराती सं० १९३१) तदनुसार **१० अप्रैल शनिवार सन् १८७५** मानी जाती थी, परन्तु हैदराबाद सत्याग्रह के समय
२५ सितम्बर १९३९ को श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज जब बम्बई की प्रथम स्थापित काकड़वाड़ी (गिरगांव) को आर्यसमाज में गये तो वहां उन्हें समाज मन्दिर पर एक छोटा सा शिलालेख दिखाई दिया, जिस पर आर्यसमाज स्थापना तिथि **चैत्र सुदि १, सं० १९३१ (गुजराती सं०), ७ अप्रैल बुधवार सन् १८७५**

अङ्कित थी। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने ४ सितम्बर १९३९ को आर्य सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा देहली को लिखा—

'आर्यपर्वपद्धति में आर्यसमाज का स्थापना दिवस चैत्र शुक्ला पंचमी है और बम्बई आर्यसमाज में जो शिला ऋषि के समय की है, उसमें स्थापना चैत्र शुक्ला प्रतिपदा लिखी है। यह विषय ५ अन्तरंग सभा में रख कर निश्चय किया जाए कि भविष्य में कौन-सी तिथि मानी जाये। यह विषय प्रान्तीय सभाओं को लिखकर उनसे सम्मति मंगवाई जाए॥

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के उक्त नोट पर सार्वदेशिक सभा ने अपनी २७ जनवरी १९४० की अन्तरंग सभा में विचार १० करके निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया—

'नोटिस का विषय सं० ४ आर्य समाज स्थापना दिवस की ठीक ठीक तिथि के निर्धारण का विषय पेश हुआ। प्रगट किया गया कि इस समय आर्यसमाज स्थापनादिवस चैत्र शुक्ला ५ को मनाया जाता है। परन्तु बम्बई के आर्यसमाज के शिलालेख पर १५ स्थापना तिथि चैत्र शुक्ला प्रतिपदा अंकित है तथा वह प्रमाणित है। इसलिये स्थापना तिथि चैत्र सुदी १ रखनी चाहिये। यह भी प्रगट किया गया कि प्रो० ताराचन्द जी गाजरा इस सम्बन्ध में विशेष खोज और छानबीन कर रहे हैं।

निश्चय हुआ कि सम्प्रति यह विषय स्थगित किया जाये और २० पूरी-पूरी छानबीन होने के बाद यह विषय पुनः पेश किया जाये।'

[टिप्पणी—पाठक वृन्द ! सार्वदेशिक सभा के इस प्रस्ताव पर ध्यान देवें। प्रथम—शिलालेख में अङ्कित चैत्र शुक्ला १ को प्रमाणित कह दिया। और दूसरे अंश में 'इस विषय को स्थगित रखने और पूरी छानबीन के पश्चात् पुनः पेश करने का निर्देश है।] २५

तत्पश्चात् यह विषय पुनः २८-१०-४० की अन्तरंग सभा में प्रस्तुत होकर निम्नलिखित निश्चय हुआ—

'जामे जमशेद नामक समाचार-पत्र तथा आर्य समाज बम्बई की पुरानी रिपोर्ट के आर्य समाज स्थापना विषयक लेखों के फोटो प्राप्त करके यह विषय आगामी अन्तरंग में प्रस्तुत किया जाये। ३० इससे पूर्व २७-१-४० की अन्तरंग ने निश्चय किया था कि यह विषय आगामी बैठक में पेश किया जाये।'

उक्त निश्चय के अनुसार यह विषय १५-१२-४० की अन्तरंग सभा में प्रस्तुत होकर निम्न प्रकार निश्चय हुआ—

'आर्य समाज स्थापना-दिवस की तिथि के परिवर्तन का विषय पेश हुआ। आर्य समाज की नौंवी रिपोर्ट का फोटो पेश होकर पढ़ा ५ गया जिसमें समाज की स्थापना तिथि चैत्र सुदी प्रतिपदा अंकित की गई है। इसी सम्बन्ध में प्रगट किया गया कि जामे जमशेद नामक पत्र की कापी प्राप्त नहीं हो सकी है। विचार के बाद निश्चय हुआ कि यह पर्व चैत्र शुक्ल ५ के स्थान पर चैत्र सुदी प्रतिपदा को मनाया जाया करे।'

१० इस प्रकार १९४० के बाद से आर्य समाज स्थापना दिवस चैत्र सुदी १ को मनाया जाने लगा।[1]

इस नवीन उपस्थापित आर्य समाज स्थापना तिथि के सम्बन्ध में हम आगे विचार करेंगे। यहां पहले सन् १९३९ तक निर्विवाद रूप से मनाई जाने वाली चैत्र सुदी ५मी तिथि के सम्बन्ध में ऐति- १५ हासिक प्रमाण उपस्थित करते हैं—

१—श्रीगोपालरावहरिदेशमुख के नाम सं० १९३१ (गुजराती) मिति चैत्र शुद्ध ६ रविवार को लिखे गये पत्र में ऋषि दयानन्द लिखते हैं—

'बम्बई में चैत्र शुद्ध ५ शनिवार के दिन संध्या के साढ़े पांच २० बजते आर्यसमाज का आनन्दपूर्वक आरम्भ हुआ।'

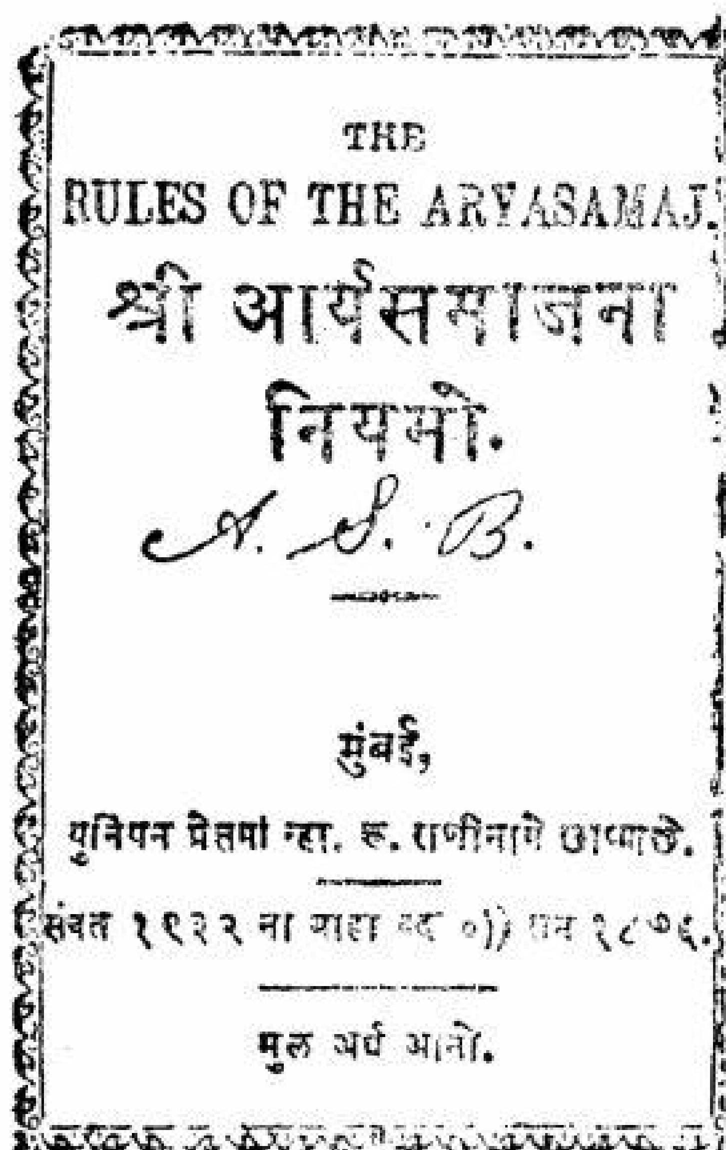
ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन तृतीय संस्करण संवत् १९३७, प्रथम भाग, पृष्ठ ५५।

---

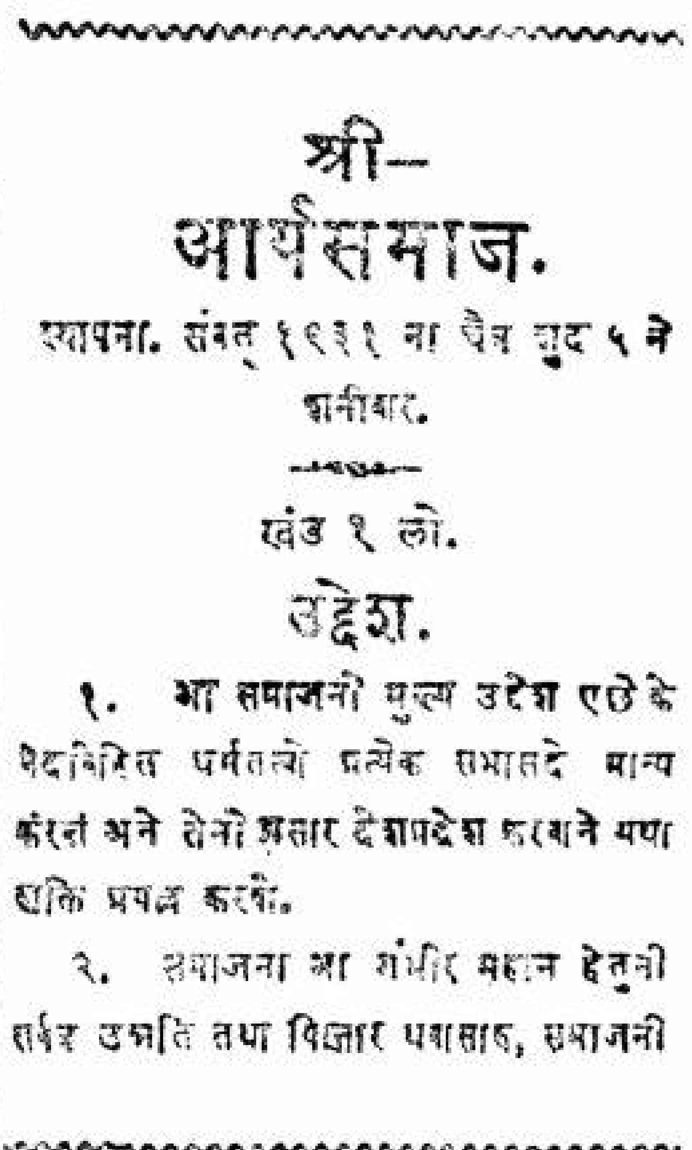
१. उक्त प्रस्तावों की प्रतिलिपि श्री पं० लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित ने 'आर्यसमाज की स्थापना कब हुई' लेख में दी है। हम ने वहीं से लिया है। २५ उपर्युक्त प्रस्तावों से स्पष्ट है कि चैत्र शुक्ला १ का आर्य समाज स्थापना तिथि मनाने का निश्चय २८-१०-४० की अन्तरंग सभा में स्वीकृत हुआ था। परन्तु सार्वदेशिक सभा की ओर से प्रकाशित 'आर्य समाज और उसका सन्देश' पुस्तक में पृष्ठ १६१ पर चैत्र सुदी १ की पुष्टि में 'सार्वदेशिक सभा दिल्ली का दिनाङ्क २७ जनवरी ४० के निर्णय' का उल्लेख है। यह सरासर अशुद्ध है। ऊपर के प्रस्तावों को पढ़ने से स्पष्ट है कि २७ ३० जनवरी ४० के प्रथम प्रस्ताव में तो 'पूरी छानबीन होने के बाद पुनः पेश करने' का उल्लेख है। यह है सार्वदेशिक सभा के मिथ्याचरण का नमूना।

२—आर्यसमाज स्थापना के ११ मास पश्चात् माघ सं० १९३२ को बम्बई आर्य समाज की ओर से प्रकाशित '**श्री आर्य समाजना नियमो**' शीर्षक २०×३० के बत्तीस पृष्ठी आकार की ३२ पृष्ठ की पुस्तक के आरम्भ में छपा है – **श्री आर्यसमाज स्थापना, संवत् १९३१ (गुजराती) ना चैत्र शुद्ध ५ ने शनिवार।**

हम इस पुस्तिका के प्रारम्भिक दो पृष्ठों की फोटो यहां देते हैं –


THE
RULES OF THE ARYASAMAJ.
श्री आर्यसमाजना
नियमो.
A. S. B.

मुंबई,
युनियन प्रेसमां न्हा. रू. [illegible] छाप्याछे.
संवत १९३२ ना माहा वद ०)) सन १८७६.
मूल अर्ध आनो.


श्री—
आर्यसमाज.
स्थापना. संवत् १९३१ ना चैत्र सुद ५ ने शनीवार.
खंड १ लो.
उद्देश.
१. आ समाजनो मुख्य उद्देश एछे के [illegible] मान्य करवां अने [illegible] यथाशक्ति प्रयत्न करवो.
२. समाजना आ [illegible] हेतुनी [illegible] उन्नति तथा [illegible], समाजनी

आर्यसमाज की स्थापना के विषय में बम्बई आर्यसमाज द्वारा मुद्रित उक्त पुस्तिका रूप सबसे पुराना और प्रामाणिक रिकार्ड है।

इस के पश्चात् पञ्जाब प्रतिनिधिसभा के आदेशानुसार श्री पं० लेखराम जी आर्यमुसाफिर ऋ० द० के जीवन चरित की

सामग्री का संकलन करते हुए सम्भवतः सन् १८६०-१८६३ के मध्य बम्बई पहुंचे थे। उन्होंने इस प्रसङ्ग में लिखा है—

'चैत्र सुदी ५ शनिवार सं० १६३२ तदनुसार १० अप्रेल सन् १८७५ व ३ रबीउल अव्वल सन् १८६२ हिज्री व संवत् १७६७ शालिबाहन व सन् १२८३ फस्ली व माहे सुरदाद सन् १२८४ फारसी, व चैत २६ संक्रान्ति संवत् १६३२ को शाम के समय, मोहल्ला गिरगांव में डा० मानक जी के बागीचे में, श्री गिरधर लाल दयालदास कोठरी बी० ए० एल० एल० बी० की प्रधानता में एक सार्वजनिक सभा की गयी और उसमें यह नियम सुनाये गये और सर्वसम्मति से प्रमाणित हुए और उसी दिन से आर्यसमाज की स्थापना हो गयी।

इस के आगे २८ नियम देकर पुनः लिखा है—

'फिर अधिकारी नियत किये गये। तत्पश्चात् प्रति शनिवार सायंकाल को आर्य समाज के अधिवेशन होने लगे।' हिन्दी सं० पृष्ठ २७२।

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि चैत्र सुदी पंचमी को ही बम्बई में आर्य समाज की स्थापना हुई थी और इसी दिन नियमों की स्वीकृति तथा अधिकारियों का चयन हुआ। **'तत्पश्चात् शनिवार को आर्यसमाज के अधिवेशन होने लगे।'** उद्धरण स्पष्ट बता रहा है कि चैत्र सुदी ५ को अधिवेशन नहीं हुआ। श्री पं० लेखराम जी के उक्त उद्धरण में देश में प्रयुक्त लगभग सभी प्रसिद्ध सन्, संवतों, उन के महिने वा तिथि का यथावत् उल्लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

पं० लेखराम जी के जैसा ही ठीक निर्देश श्री पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन चरित भाग १, पृष्ठ ३३२-३३५ तक मिलता है। इस निर्देश में पृष्ठ ३३५ पर **'इसके पश्चात् आर्यसमाज के पदाधिकारी नियत किये गये और प्रति शनिवार को सायङ्काल आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन होने निश्चित हुए।'** लेख अधिक स्पष्ट है। इसके आगे १०-१२ पंक्तियां छोड़कर लेख है—

'आर्यसमाज स्थापित होने के पश्चात् स्वामी जी के व्याख्यान आर्यसमाज में ही होने लगे। एक व्याख्यान १७ अप्रेल को हुआ और दूसरा २४ अप्रेल को हुआ।' पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ ३३५।

इस उद्धरण से हमारे पूर्व लेख की पुष्टि होती है कि चैत्र शुक्ला ५ को आर्यसमाज के नियमादि स्वीकार करने और पदाधिकारियों की नियुक्ति तथा प्रति शनिवार सायं अधिवेशन करने का निश्चय कर के सभा विसर्जित हो गई थी। इसलिये स्वामी जी महाराज का प्रथम भाषण १७ अप्रेल शनिवार को हुआ। ५

आर्यसमाज की स्थापना चैत्र सुदी पञ्चमी को ही हुई इसमें बम्बई से प्रकाशित होनेवाले 'टाइम्स आफ इण्डिया' के १० अप्रेल सन् १८७५ के प्रभात संस्करण पृष्ठ ३, कालम ३ पर छपी सूचना से भी होती है। पाठ इस प्रकार है।

"A meeting will be held at 5-30 P. M today in the Girgam Back Road, in the bungalow belonging to Dr. Maneck Ji AderJee when Pt. Dayanand Saraswati Swami will perform the ceremonies for the formation of Arya Samaj. All well wishers of the cause are invited to attend."[1] १० १५

इन सभी उद्धरणों को उद्धृत करने का प्रयोजन यही है कि जो लोग चैत्र सुदी १ को आर्यसमाज स्थापना के पक्षधर हैं, उनकी कल्पना का उद्घाटन हो जावे। चैत शुक्ला ६ सं० १९३२ पूर्व उद्धृत ऋषि दयानन्द के पत्र में आये **'आर्यसमाज का आनन्द पूर्वक आरम्भ हुआ'** का अर्थ **'साप्ताहिक अधिवेशन'** हुआ करते हैं, वह आर्यसमाज के प्रारम्भिक ग्यारह मासों की कार्यवाही में प्रयुक्त स्थापना शब्द और पं० लेखराम तथा पं० देवेन्द्रनाथ के उल्लेखों में चैत सुदी ५ को नियमों की स्वीकृति पदाधिकारियों की नियुक्ति होने का तथा साप्ताहिक अधिवेशन न होने के निर्देश से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द का 'आरम्भ हुआ' शब्दों का अभिप्राय 'स्थापना' से ही है। २० २५

इस प्रसंग में हम श्री पं० लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित (श्री स्वा० विद्यानन्दजी) द्वारा 'आर्यसमाज की स्थापना कब हुई' लेख का वह अंश उद्धृत करते हैं, जिससे स्पष्ट होगा कि चैत सुदी १ के पक्षपाती अपने झूठे दावे को सिद्ध करने के लिये ऐसी खींचातानी करते हैं जो असत्य की पर्याय बन जाती है। यथा— ३०

१. यह उद्धरण भी श्री दीक्षित जी के लेख से लिया है।

'चैत सुदी १ को आर्यसमाज स्थापना तिथि सिद्ध करने के लिये सार्वदेशिक सभा द्वारा नियुक्त पं० वैद्यनाथ जी का कथन है कि 'टाइम्स आफ इण्डिया' आदि में १० अप्रैल को छपी सूचना का आर्यसमाज की स्थापना से कोई सम्बन्ध नहीं है। उनके मत में
५ पं० लेखराम जी, देवेन्द्र बाबू आदि की यह भूल थी कि उन्होंने 'टाइम्स आफ इण्डिया' में छपी सूचना में आये 'formation' शब्द का अर्थ 'foundation' समझ लिया जबकि उसका ठीक अर्थ 'साप्ताहिक अधिवेशन' होता है। 'formation' अंगरेजी का शब्द है। अंगरेजी का सबसे अधिक प्रामाणिक कोश Oxford
१० English Dictionary है। उसमें formation शब्द के अर्थ दिये हैं—Putiing or coming into form, creation, production, formal structure, the manner in which a thing is formed, construction. ये सभी अर्थ foundation के तो पर्याय जैसे हो सकते हैं। परन्तु बहुत खोजने
१५ पर भी हमें formation का अर्थ 'साप्ताहिक अधिवेशन' अथवा उसका अंगरेजी पर्याय weekly meeting, assembly or congregation नहीं मिला। निश्चय ही formation का अर्थ निर्माण अथवा स्थापना है। **इस सूचना में** formation **के लिये भक्त जनों, सत्संगियों, मुमुक्षुओं, श्रद्धालुओं, आदि को आमंत्रित**
२० **न करके** well wishers of the cause **अर्थात् उद्देश्य से सहानुभूति रखने वालों को आने की प्रेरणा की गई है। इन शब्दों से भी स्पष्ट है कि उस दिन का वह आयोजन आर्य समाज की स्थापना के लिये किया गया था, प्रवचन सुनने-सुनाने के लिये नहीं।** Formalities for the formation of Arya Samaj
२५ का अभिप्राय भी स्थापना के लिये अपेक्षित विधि विधान, अधिकारियों की नियुक्ति आदि से है, हवन-यज्ञ आदि से नहीं।'

ये तो हुए चैत्र शुक्ला ५ को आर्यसमाज स्थापना तिथि सम्बन्धी लेख। अब चैत्र शुक्ला १ को आर्यसमाज स्थापना तिथि मानने वालों के प्रमाण वा हेतु—

३० १—आर्यसमाज काकड़वाड़ी गिरगांव मुम्बई की समाज में एक शिलालेख लगा है। इस में **'आर्यसमाज की स्थापना तिथि चैत्र**

सुदी १ सं० १९३१ (गुजराती) तदनुसार ७ अप्रेल बुधवार सन् १८७५' अङ्कित है।

२—इसकी पुष्टि में आर्यसमाज बम्बई की रजिस्टर्डडीड तथा कार्यवाहियों का भी हवाला दिया जाता है। ५

हम इन की क्रमशः परीक्षा करते हैं—

१—शिलालेख की परीक्षा—चैत्र सुदी १ को आर्यसमाज स्थापना तिथि बतलाने वाला शिलालेख उसी **आर्यस्थान** पर लगा है, जिसके ऊपर लगे एक शिला लेख में **फाल्गुन सुदि १ शनिवार १९३८, १८ फैब्रुअरी १८८२** अङ्कित है[1]।

इससे इतना तो स्पष्ट है कि स्थापना तिथि बोधक शिलालेख १० को यदि सही माना भी जाये तो आर्यसमाज स्थापना के लगभग ७ वर्ष बाद का है। इस विषय में हमारा विचार इस प्रकार है—

(क) निम्नहेतुओं से स्पष्ट है कि श्री पं० लेखराम जी सन् १८९३ में समाज भवन पर लगे शिलालेख की तिथि के लगभग ८-१० वर्ष पश्चात् ऋ० द० के चरित के अनुसन्धान में बम्बई गये १५ थे। उस समय यदि उक्त आर्यसमाज स्थापना तिथ्यङ्कित शिलालेख वहां लगा हुआ विद्यमान होता तो उस व्यक्ति द्वारा, जो ऋ० द० के चरित की खोज के लिये ही वहां पहुंचा हो, शिलालेख की उपेक्षा किया जाना असम्भव था। तथा यह भी प्रश्न होता है कि उस समय के आर्यसमाज के अधिकारियों ने पं० लेखराम को आर्य २० समाज की स्थापना की तिथि क्या बताई होगी? अनुसन्धान करने को निकले व्यक्ति ने तो न जाने कितने दिन बम्बई में ठहर कर विविध व्यक्तियों से पूछाताछी की होगी। ऐसी अवस्था में यदि उक्त शिलालेख विद्यमान होता अथवा समाज के अधिकारियों द्वारा पं० लेखराम को आर्यसमाज की स्थापना तिथि चैत सुदि १ २५ बताई जाती तो पं० लेखराम जी उसका ही निर्देश करते। इस से

---

१. जिस 'आर्यस्थान' नामक भवन पर 'फाल्गुन सुदी १ शनिवार १९३८, १८ फर्वरी सन् १८८२' तिथि का शिलालेख लगा है, वह भी उक्त तिथि के बहुत पीछे लगाया गया है। इस विषय में हम आगे लिखेंगे। वस्तुतः यह भवन के निर्माण के काल का बोधक नहीं है। ३०

स्पष्ट है कि **सन् १८६० – १८६३ के मध्य जब पं० लेखराम जी ऋषि चरित के अनुसन्धान के लिये बम्बई गये थे, उस समय न वहां उक्त शिलालेख था और ना ही किसी व्यक्ति ने उन्हें आर्य-समाज स्थापना की तिथि चैत सुदि १ बताई थी, यह निर्विवाद** ५ **है।**

(ख) पं० लेखराम जी के पश्चात् ऋषि चरित के अनुसन्धान में श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने तथा श्री पं० देवेन्द्रनाथ जी ने जो प्रयत्न किया उस की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। श्री स्वामी सत्यानन्द जी तो कथा वा उपदेश के लिये अनेक बार १० बम्बई आर्य समाज में गये थे। श्री देवेन्द्रनाथ जी ने भी इस सम्बन्ध में अपने जीवन का १५ वर्ष का जो महत्त्वपूर्ण समय लगाया, उस काल में वे कई बार बम्बई समाज में गये होंगे। उन्होंने भी उक्त शिलालेख का कोई निर्देश नहीं किया और ना ही आर्यसमाज के किसी अधिकारी ने उन्हें आर्यसमाज की स्थापना १५ तिथि चैत सुदी १ बताई।

पं० लेखराम और पं० देवेन्द्रनाथ सदृश ऋषि जीवन पर न्योछावर होनेवाले ऋषि चरित-अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में यह सोचना कि उन्होंने बम्बई के आर्यसमाज के तात्कालिक अधिकारियों से आर्यसमाज स्थापना तिथि के विषय में २० कुछ नहीं पूछा, ऐसा वही विकृत मस्तिष्क का व्यक्ति सोच सकता है, जिसे येन केन प्रकारेण आ० स० स्थापना तिथि चैत्र सुदी १ की पुष्टि करनी हो।

(ग) स्थापना तिथि चैत सुदी १ के बोधक शिलालेख को सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर स्पष्ट विदित होता है कि यह जाली शिला २५ लेख पीछे से लगाया गया है। क्योंकि आर्यसमाज के भवन पर जो दूसरा शिलालेख लगा है, उससे इसके अक्षर-विन्यास में भिन्नता है। पाषाण भी भिन्न है। यदि दोनों शिला लेख समकाल के होते तो पाषाण की भिन्नता सम्भव होने पर भी दोनों के अक्षर विन्यास में तो समानता होती। साधारण से दो शिलालेखों को ३० भिन्न भिन्न कारीगरों से खुदवाने में कोई कारण प्रतीत नहीं होता।

यदि आर्य सार्वदेशिक सभा इस बात के निर्णय के लिये भारत

सरकार के किसी पुरातत्त्व विशेषज्ञ जो शिला लेख विशेषज्ञ भी हो, परीक्षा कराये तो जालसाजी स्पष्ट प्रमाणित हो जायेगी।

(घ) आगे हम आर्यसमाज बम्बई की रजिस्टर्ड डीड और मुद्रित रिपोर्टों के अंश उद्धृत करेंगे उन में सं० १ की डीड में आर्यसमाज स्थापना तिथि **७ मार्च सन् १८७५** है तथा सं० २ की रिपोर्ट में **चैत्र शुद्ध १ शनीवार ता० ७ मार्च शके १८७५** छपा है। इनमें चैत्र शुद्ध १ मार्च और शनीवार लिखना अशुद्ध है। यदि उक्त विवादास्पद शिलालेख 'आर्यस्थान' पर लगे अन्य शिलालेख के साथ सं० १९३८ में ही लगाया गया होता तो उस शिलालेख में **चैत्र शुद १ सं० १९३१ ता० ७ अप्रेल १८७५ बुधवार** लेख की विद्यमानता में डीड और रिपोर्ट में उक्त दिन और मास की भयङ्कर भूलें कदापि न होतीं। इस से भी स्पष्ट है कि यह शिलालेख, सन् १८८८ की डीड तथा सं० १९४५ की छपी रिपोर्ट के पीछे किसी समय लगाया गया।

(ङ) पूर्व १० अप्रेल सन् १८७५ के 'टाइम्स आफ इण्डिया' के प्रभात संस्करण में छपी सूचना और उसके सम्बन्ध में पं० वैद्यनाथ शास्त्री के वक्तव्य की पं० लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित द्वारा की गई जो यथार्थ समीक्षा ऊपर उद्धृत की है, उससे स्पष्ट है कि पं० वैद्यनाथ जी को असत्य पक्ष के पोषण की चाहे कितनी ही झूठी कल्पनायें क्यों न करनी पड़ें, उनमें उन्हें कोई झिझक नहीं होती।

(२) अब हम आर्यसमाज बम्बई की रजिस्टर्ड डीड तथा उन कार्यवाहियों (रिपोर्टों) पर विचार करते हैं, जिन्हें 'चैत्र सुदी १' की पुष्टि में प्रमाण रूप से उपस्थित किया जाता है।

१—ता० १३ अप्रैल १८८८ को दो बजकर ५५ मिनट पर आर्यसमाज ट्रस्ट सम्बन्धी जो डीड रजिस्टर्ड हुआ उसमें निम्न लेख है—

Whereas in or about the christian year 1875 a certain inhabitant of Bombay being desirous of establishing a samaj in Bombay with the object and for the purpose of carrying out Religious, Social and Moral reforms on the authority of the VEDAS as explained and taught by the late

revered Pandit DAYANAND Saraswati Swami. A meeting of the promoters of the intended institution was held at Bombay on the Seventh day of MARCH 1875 under the presidency of the said
५ Pandit DAYANAND Saraswati Swami and at such meeting the following principles were adopted.

२—ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त श्री सेवकलाल कृष्णदास जी द्वारा सं० १९३१ (उत्तर भारतीय १९३२) चैत्र सुदी १ से
१० १९४४ फाल्गुन अमावस्या तक की एक हिसाब आदि की रिपोर्ट छपी है[1] (आ० स० बम्बई में है)। उसमें निम्न लेख है—

'...अने अंते ज्यारे समाज स्थापन थतोज न थी, एवं केटलाक सुज्ञ गृहस्थोए जाण्युं त्यारे अमने अने रा०रा० पाचाचंद आणंदजी पारेख ते नियम घड़ी कहाड़वा ते ओए सोप्युं एटले तेना नियमो
१५ अमे तैयार करी रा० रा० पाताचंद जी ने बंवावी स्वर्गवासी रा० रा० गिरधरलाल दयालदास कोठारी बी०ए०एल०एल०बी० जे ओ समाज स्थापन थई त्यारे लोकापवाद ना भय राख्याबगर मेदान पड़ी प्रमुख थया हता ते ओ पासे सोधावी तैयारकर्या अने संवत् १९३१ ना **चैत्र शुद्ध १ शनिवार ता० ७ नी मार्च शने (शके)**
२० १८७५ ने दीने सांजना गिरगाममां डाक्टर माणेकजीनी बाड़ी मां आर्यसमाज स्थापन करवा सारु जे जाहेर सभा बोलाव्यामां आवी हती तेमा रजु कीधा अने ते सर्वानुमते बहाल रह्या अने तेज दहाड़े आर्यसमाज नी स्थापना थई, अने तेना अधिकारियो पण नेम्यामां आव्या अने त्यार थी प्रति शनिवारे सायंकाले समाज थवा लागी
२५ परन्तु थोड़ा महिना बाद ते दिवस समाजस्थो ने अनुकूल न आव्या थी ते फेरवी रवीवार राख्यो जे हजी सुधी कायम छे।'

३—श्री सेवकलाल कृष्णदास जी द्वारा सं० १९५० (१८९४) की रिपोर्ट पृष्ठ २८ पर इस प्रकार लिखा है—

'अने एज धोरण थी प्रथम सं० १९३१ ना चैत्र सुदी १ ने दिने

---

३० १. यह रिपोर्ट 'सुबोधप्रकाश प्रेस' बम्बई में संवत् १९४५ सन् १८८९ में छप कर प्रकाशित हुई थी।

मुम्बई मां आर्यसमाज स्थापन थयो''

[उपर्युक्त तीनों लेखों (आर्यसमाज की डीड तथा रिपोर्टों) की प्रतिलिपि हमारे गुरुभाई श्री पद्मदत्तजी त्रिवेदी ने १६ मार्च १९५४ के पत्र के साथ भेजी थी।[1] श्री पं० पद्मदत्त जी त्रिवेदी उस समय आर्यसमाज बम्बई में कार्य करते थे।[2]] ५

समीक्षा—अब हम उपर्युक्त तीनों लेखों की क्रमशः समीक्षा करते हैं—

१—आर्यसमाज की रजिस्टर्ड डीड की जो अंग्रेजी प्रतिलिपि ऊपर दी है, उस में आर्यसमाज की स्थापना तिथि ७ मार्च १८७५ दी गई है, इसमें महिने की सबसे बड़ी भूल है—**अप्रेल** के स्थान में १० **मार्च** लिखा है। इसमें वार और देशी तिथि का कोई उल्लेख नहीं है।

२—सं० १९३१ (गुज०) से सं० १९४४ तक की जो रिपोर्ट ऊपर दी है उसकी भूलों की ओर ध्यान आकृष्ट करने से पूर्व पाठकों को यह जानना चाहिये कि ऊपर उद्धृत रिपोर्ट का गुज- १५ राती पाठ (स्थापना तिथि अंश को छोड़कर) पं० लेखराम जी के जीवन चरित के विवरण से प्रायः मिलता है। द्र०—जी० च० हिन्दी सं० पृष्ठ २६९-२७२, आ० स० के अट्ठाईस नियमों के पूर्व और पश्चात् का पाठ।

इस रिपोर्ट में **चैत्र शुद्ध १ सं० १९३१ (गुज०) शनिवार ता०** २० **७ मार्च शके १८७५** के दिन आर्यसमाज की स्थापना का उल्लेख

---

१. यह पत्र और उसके साथ भेजी प्रतिलिपियां अभी हमारे पास सुरक्षित हैं। इन्होंने ही सन् १९५२ के श्री प्रताप जी शूरजी के यज्ञ के समय आ० स० मुम्बई की सं० १९३२ में छपी प्रारम्भिक ११ मासों की रिपोर्ट, जिसमें आर्यसमाज की स्थापना तिथि चैत्र शुद्ध ५ छपी है, हमें २५ देखने को दी थी।

२. यहां यह ध्यातव्य है कि आ० स० बम्बई के अधिकारियों ने छपी रिपोर्टों के दिखाने वा अंश लिखकर भेजने के तथाकथित अपराध में उन्हें कार्य से मुक्त कर दिया था।

है। यह रिपोर्ट आर्यसमाज की रजिस्ट्री से कुछ मास पीछे सं० १९४५ की है (द्र०—पृष्ठ १०५६, टि० १)। इस तिथि निर्देश में एक साथ कई भूलें हैं। यथा—

५ **क**—चैत्र शुद्ध १ सं० १९३१ (गुजराती, उ० भा० १९३२) शनिवार नहीं था, बुधवार था। शनिवार को चैत्र शुद्ध ५ थी, प्रतिपदा नहीं थी। प्रतीत होता है चैत्र शुक्ला ५ को चैत्र शुक्ला १ में बदलते हुए वार को बदलना रह गया। प्रमादवश ऐसी भूलें प्रायः पूर्व लेख में परिवर्त्तन करते समय हो जाती हैं। परन्तु कई बार ऐसी भूलें पुराने लुप्त हुए अथवा छिपे इतिहास को व्यक्त करने में बहुत १० सहायक होती हैं। इसका एक उदाहरण हम अपने 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' ग्रन्थ पृष्ठ ५४ से संक्षिप्त करके देते हैं—

पञ्चमहायज्ञविधि के सं० १९३४ से लेकर सं० १९३८ तक के संस्करणों में सन्ध्याग्निहोत्र के प्रमाण में अथर्ववेद के २ मन्त्र **सायं सायं गृहपतिः और प्रातः प्रातर्गृहपतिः** भाष्य सहित उद्धृत हैं। १५ परन्तु इन मन्त्रों के भाष्य पर क्रम संख्या १-२ न होकर ३-४ छपती रही है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के इस प्रकरण में निम्न चार मन्त्र भाष्य सहित उद्धृत हैं—

समिधाग्निं दुवस्यत…………………॥१॥
अग्निं दूतं पुरोदधे …………॥२॥
२० **सायं सायं गृहपतिर्नो** ……॥३॥
प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो…………॥४॥

मन्त्रों के ये ही क्रमाङ्क भाष्य के अन्त में भी दिये हैं।

पञ्चमहायज्ञविधि में केवल तृतीय चतुर्थ मन्त्र तथा उस के भाष्य को उद्धृत किया है अर्थात् प्रथम और द्वितीय मन्त्र तथा २५ उस का भाष्य छोड़ दिया है। इस प्रकार पञ्चमहायज्ञविधि में उद्धृत **सायं-सायं** तथा **प्रातः-प्रातः** मन्त्र की क्रम संख्या तो ३, ४ को बदलकर १, २ कर दी; परन्तु संस्कृतभाष्य में उनकी मन्त्र की क्रम संख्या ३, ४ ही रह गई। यह लेखक प्रमाद जन्य अशुद्धि स्पष्ट करती है कि पञ्चमहायज्ञविधि का यह प्रकरण ऋग्वेदादि- ३० भाष्यभूमिका से उठा कर रखा गया है।

पञ्जमहायज्ञविधि की अशुद्धि के समान आ० स० स्थापना

तिथि के उपर्युक्त लेख में 'चैत्र शुद्ध ५' के स्थान पर 'चैत्रशुद्ध १' तो कर दिया गया परन्तु वार निर्देश जो पुराना शेष रह गया वह आज भी उच्चैःस्वर से उद्घोषित कर रहा है कि आ० स० की स्थापना के दिन शनिवार था।

ख—अंग्रेजी ता० ७ मार्च दी गई है। संशोधित तिथि के अनुसार ७ अप्रैल होनी चाहिये। यह ७ मार्च तिथि यह घोषित कर रही है कि इस रिपोर्ट का लेखन वा प्रकाशन डीड की रजिस्ट्री के पश्चात् हुआ था।

ग—अंग्रेजी तारीख के साथ शने (शके) १८७५ लिखा है। शके का प्रयोग सम्पूर्ण दक्षिण भारत में शालिवाहन शक (संवत्सर) के लिये प्रयुक्त होता है। यहां 'सन्' शब्द होना चाहिये।

उपर्युक्त आर्यसमाज की डीड और सं० १९४५ में प्रकाशित रिपोर्ट में दिन मास आदि की जो भूलें हैं उन से व्यक्त होता है कि सन् १८८८ तथा सं० १९४५ तक आर्यसमाज की स्थापना तिथि बोधक शिलालेख नहीं लगा था, अन्यथा उस में **चैत्र सुदि** १, ७ **अप्रैल बुधवार सन् १८७५** ऐसा निर्देश होने पर डीड और रिपोर्ट में वार और मास की उक्त अशुद्धियां कदापि न होतीं।

३ सं० १९५०, सन् १८९४ की रिपोर्ट का जो अंश ऊपर छापा है, उसमें 'वार' तथा अंग्रेजी मास आदि का उल्लेख नहीं है। इस में जो गुजराती '**धोरण**' शब्द है, उसका अर्थ है—परम्परागत, क्रमागत। अतः उक्त रिपोर्ट का अभिप्राय होगा—और ऐसा परम्परागत विश्वास था कि प्रथम सं० १९३१ के चैत्र सुदी १ के दिन मुम्बई में आर्य समाज की स्थापना हुई।

इस रिपोर्ट में 'धोरण' शब्द का उल्लेख भी यही दर्शाता है कि इस के लिखे जाने तक स्थापना तिथि बोधक शिलालेख नहीं लगा था। अन्यथा 'धोरण' शब्द का उल्लेख नहीं किया जाता।

एक अन्य रिपोर्ट—आर्यसमाज की स्थापना तिथि चैत्र सुदी १ सिद्ध करने के लिये सन् १८७८ से १८८३ तक की साप्ताहिक सत्संगों की कार्यवाही के रजिस्टर का भी प्रमाण दिया जाता है। उस का अपेक्षित अंश इस प्रकार है -

'फाल्गुन कृष्णपक्ष ना वार रवि १९३८ ता १९ वी मार्च सने १८८२ अंग्रेजा ए रोज आर्यसमाज रा० रा० गोविन्दविष्णु की शाला मां सांज ना चार वजे मल्यो हतो। प्रथम वेदमन्त्रे ईश्वर स्तुति अने गवैया ए स्तुति गायन करवा बाद वर्तमान पत्र मा ५ आपेली जाहेर खबर प्रमाणे राव कृष्ण राम इमाराय 'देशोन्नति' विषय पर सुरसभाषण आप्यु हथु। ते पछी बीजे दिवसे अटले **चैत्र शुक्ल पक्ष प्रतिपदाने वार सोम सं० १९३८ ता० २० मार्च ने सने १८८२ ने रोजे आर्यसमाज नी जन्म दिवस होना नी महोत्सव करवामा आव्योहतो।'**

१० **समीक्षा**—इस विवरण में भी निम्न विचारणीय बातें हैं—

१—यह कार्यवाही आर्यसमाज स्थापना के सात वर्ष बाद की है। इसे पूर्व उद्धृत अन्य प्रमाणों, विशेषकर प्रारम्भिक ११ मास की कार्यवाही की तुलना में इसे प्रमाण नहीं मान सकते।

२—आर्य स्थान पर जो शिला लेख लगा है, तदनुसार यदि १५ यह माना जाये कि आर्यसमाज का भवन फाल्गुन सुदि १ शनिवार १९३८, १८ फैब्रुवरी १८८२ तैयार हो गया था।[1] उस अवस्था में उस के एक मास[2] पश्चात् आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन की रा० रा० गोविन्द विष्णु जी की शाला में लगने का प्रसंग ही नहीं उठता। हां, उक्त तिथि आर्यसमाज के भवन की २० नींव रखने की हो तो और बात है। अन्यथा उसके लेख 'श्रीमद् पण्डित '**दयानन्द सरस्वती स्वामी जी के सदुपदेश से सज्जन**

---

१. हम पूर्व पृष्ठ १०५३ की टि० १ में लिख चुके हैं कि अम्बई के समाज मन्दिर में आर्यस्थान सम्बन्धी शिलालेख में जो तिथि दी गई है वह भवन निर्माण की नहीं है (आजकल के आर्यसमाजी इसे भवन निर्माण की २५ तिथि मानते हैं)। अपितु उक्त स्थान पर आधार शिला रखने की है। इसकी प्राप्ति सन् १९३३ में प्रकाशित 'मुंबई आर्यसमाज नो इतिहास' के पृष्ठ ४० से होती है। इसमें श्री स्वामी जी महाराज के हाथ से नींव रखवाने का निर्देश है।

२. दक्षिण भारत में कृष्ण पक्ष शुक्ल पक्ष के बाद गिना जाता है। ३० अत: उत्तरभारतीयों का चैत्र कृष्ण पक्ष दक्षिणभारतीयों का फाल्गुन का कृष्ण पक्ष माना जाता है।

वैदिकजनों ने ...... **यह स्थान बना के आर्य समाज के अधिकार में रखा'** से तो समाजभवन बनने के पश्चात् उद्घाटन समय का शिलालेख होना चाहिये।

३--इस रिपोर्ट में चैत्र शुक्ला १ को **आर्यसमाज के जन्म दिवस के महोत्सव** करने का जो उल्लेख है, वह भी इस बात का ५ प्रमाण नहीं है कि आर्यसमाज की स्थापना वा जन्म चैत्र सुदी १ को हुआ था। क्योंकि हम लोक में सर्वत्र देखते हैं कि जिन पर्वों की राजकीय सार्वजनिक छुट्टी नहीं होती है उन श्रद्धानन्द बलिदान दिवस, लेखराम बलिदान दिवस आदि महत्त्वपूर्ण दिवस ठीक उस तिथि और तारीख को न मना कर दो चार दिन आगे पीछे रवि- १० वार आदि सार्वजनिक छुट्टी के दिन मनाते हैं। क्या कालान्तर में उसके रखे गये रिकार्ड से प्रमाणित उचित होगा कि श्रद्धानन्द और लेखराम बलिदान दिवस वही था, जिस दिन समाजों ने मनाया ?

बम्बई के गुजरातियों और महाराष्ट्रियों में चैत्र सुदी १ का १५ पर्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। अतः इस दिन सार्वजनिक छुट्टी भी होती है, इस दिन की महत्ता और सार्वजनिक छुट्टी के कारण उत्तर काल में आर्यसमाज जन्मोत्सव चैत्र सुदी ५ के स्थान में चैत्र सुदी १ को मनाई जाने लगी हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। २०

इस उत्सव को मनाने का निर्देश ऋ० द० ने भी चैत्र सुदी १३ सं० १९३८=ता० १७ मार्च १८८२ को कृपाराम स्वामी को लिखे पत्र में भी किया है। जो इस प्रकार है—

'तीन दिन पश्चात् वार्षिक उत्सव आर्यसमाज का ७वां होगा। द्र०—ऋ० द० के पत्र विज्ञापन संस्क० ४, पूर्ण संख्या ६३६ का २५ पत्र, भाग २ पृष्ठ ६६७।

ऋषि ने '**वार्षिक उत्सव**' शब्द का प्रयोग किया है, '**जन्मोत्सव**' शब्द प्रयोग नहीं किया। वार्षिक उत्सव का आयोजन आगे पीछे भी किया जाता है, यह सर्वलोक विदित है।

कुछ लोग चैत्रसुदी १ को आर्यसमाज स्थापना तिथि में यह ३० हेतु देते हैं कि चैत्र सुदी १ को नववर्ष का आरम्भ होता है अतः

ऐसे महत्त्वपूर्ण दिन को छोड़कर ५ को आर्यसमाज स्थापना करने की कोई तुक नहीं है।

हम इस प्रकार का कथन करने वालों से कहना चाहते हैं कि बम्बई आर्यसमाज की स्थापना में प्रमुख हाथ गुजरातियों का था। ५ गुजरातियों का नया संवत् कार्तिक सुदी प्रतिपद् (दिवाली के दूसरे दिन) से होता है। अतः नव वर्षारम्भ का हेतु भी अहेतु है।

इन सब प्रमाणों और हेतुओं से स्पष्ट है कि आर्यसमाज बम्बई की स्थापना चैत्र सुदी ५ सं० १९३२ (गुज० १९३१) शनिवार १० अप्रेल १८७५ को हुई थी। चैत्र सुदी १ को आर्यसमाजस्थापना- १० तिथि का बोधक शिलालेख न तो श्री पं० लेखराम और न श्री पं० देवेन्द्रनाथ जी के ऋषिचरित्र-संकलन निमित्त बम्बई जाने तक लगा था, आर्यसमाज की रजिस्टर्डडीड और रिपोर्टों के लिखने वा प्रकाशन के समय तक यदि पं० लेखराम जी और देवेन्द्रनाथ जी की बम्बई यात्राओं से पूर्व उक्त चैत्र सुदी १ का आर्यसमाज १५ स्थापना का उद्घोषक शिलालेख लगा हुआ होता तो उनकी दृष्टि में अवश्य आता अथवा जिन व्यक्तियों से ऋषि जीवन की घटनाओं का विवरण पूछा वे अवश्य चैत्र सुदी १ का निर्देश करते या शिलालेख की ओर ध्यान दिलाते। इसी प्रकार यदि आर्य समाज की डीड की रजिस्ट्री और रिपोर्टों के प्रकाशन से पूर्व २० शिलालेख लगा हुआ होता तो इन में दर्शाई हुई तिथि वार और मास की अशुद्धियां कदापि न होतीं, क्योंकि शिलालेख में चैत्र सुदी १ को आ० स० स्थापनातिथि मान कर वार और अंग्रेजी तारीख वा मास शुद्ध लिखे हुए हैं। हमारा विचार है कि चैत्र सुदी १ को उत्सव मनाने की परिपाटी के आधार पर ही पहले चैत्र सुदी १ २५ को आर्यसमाजस्थापनातिथि का मनना प्रारम्भ हुआ, जैसा कि रिपोटों में वर्णित है। परन्तु कालान्तर में आर्यसमाज की डीड और रिपोर्टों में व्याप्त अशुद्धियों को परिमार्जन करने और चैत्र-सुदी १ को स्थायीरूप देने के विचार से संवत् १९४५ के आस पास अथवा उसके भी पीछे यह शिलालेख लगाया गया।

झूठ की पराकाष्ठा

३० **आर्यभवन पर लगे दोनों शिलालेख सं० १९४४ के बाद के**

मैं कुछ दिनों से श्री स्वामी श्रद्धानन्द की आत्मकथा '**कल्याण**

मार्ग का पथिक' पढ़ रहा हूं। आज ज्येष्ठ पूर्णिमा सं० २०३८ तदनुसार ता० १० अप्रैल १९८१ मध्याह्नोत्तर उक्त आत्मकथा पढ़ते हुए लगभग ४ बजे 'सं० १९४४ बम्बई की पहली यात्रा' का श्री स्वामी श्रद्धानन्द का लिखा वर्णन पढ़ने पर मेरा मन एक क्षण के लिये स्तम्भित हो गया कि क्या आर्यजन भी इतना झूठ ५ लिख सकते हैं? श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज लिखते हैं—

आर्यसमाज मन्दिर का उन दिनों केवल चबूतरा ही बना हुआ था जिस पर मैंने व्याख्यान भी दिया। कल्याण मार्ग का पथिक, पृष्ठ १४३, पं० ३३-३४, ज्ञान मण्डल यन्त्रालय काशी, संवत् १९८१। १०

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के इस लेख से स्पष्ट है कि सं० १९४४=सन् १८८७ तक आर्यसमाज मन्दिर बना भी नहीं था (हमें मालूम नहीं कब बना)। उस अवस्था में आर्यसमाज मन्दिर पर 'आर्यसमाज स्थापना तिथि चैत्र सुदी १ सं० १९३१ (गुजराती) ७ अप्रैल १८७५ बुधवार' वाला शिलालेख भी निश्चित १५ ही सं० १९४४ के बाद जब कभी आर्यसमाज का भवन बना होगा, तब लगाया गया होगा।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के इस लेख से स्पष्ट यह भी हो जाता है कि जब श्री पं० लेखराम जी (सन् १८९०-१८९३ के मध्य) और श्री पं० देवेन्द्रनाथजी ऋषि चरित की खोज में बम्बई २० गये थे, तब न आर्यसमाज का भवन था और न आर्यसमाज स्थापना तिथि का बोधक शिलालेख ही लगा हुआ था। अतः उन के देखने न देखने का वा ध्यान देने न देने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इस नवीन साक्ष्य से भी स्पष्ट है कि आर्यसमाज काकड़वाड़ी २५ के भवन पर जो शिलालेख लगे हैं, वे सब सं० १९४४ के पश्चात् के तो अवश्य ही हैं।

अतः इस कल्पित जाली शिलालेख को प्रमाण मान कर आर्यसमाज की स्थापना तिथि चैत सुदी १ को मानना सर्वथा गलत है। **आर्यसमाज की स्थापना चैत सुदी ५ को शनिवार को ही हुई** ३० **थी और यही प्रामाणिक तिथि है।** सन् १९३३ में प्रकाशित श्री

दामोदरदास सुंदरदास कृत 'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास' ग्रन्थ के पृष्ठ ४१-४२ से यह भासित होता है कि आर्यसमाज का भवन सं० १९४९ या १९५० में बना था।

—:o:—

पञ्चम परिशिष्ट

आर्यभाषा को राजकीय कार्यों में प्रचलित करने के लिये ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से भेजे गये मेमोरियलों के नमूने

पृष्ठ ७३२, पंक्ति ८-९—इस समय (आर्यभाषा के) राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ जो मेमोरियल छपे हैं, सो शीघ्र भेजना।

ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से आर्यभाषा के राजकार्य में प्रवृत्त कराने के लिये अनेक स्थानों से राज्याधिकारियों के पास २०० मेमोरियल भेजे गए थे[1]। उनमें से हम एक मेमोरियल और एक निवेदन पत्र की प्रतिलिपि नीचे देते हैं। जिससे यह स्पष्ट ज्ञात हो जाएगा कि राजकार्य में आर्यभाषा हिन्दी को प्रवृत्त कराने में आर्यसमाज तथा उसके प्रवर्तक ने (उस काल में जब कि इस ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया था) कितना महान् कार्य किया था। आज हिन्दी के इतिहास में आर्यसमाज और उसके प्रवर्तक के हिन्दी के प्रचार के कार्य का उल्लेख केवल ३।४ पङ्क्तियों में लिख कर समाप्त कर दिया जाता है। हमारे विचार में इसका प्रधान कारण आर्य विद्वानों का इस क्षेत्र (इतिहास लेखन) से उदासीन रहना ही है, अन्यथा किसी भी हिन्दी के इतिहास लेखक को ऐसी धृष्टता करने का साहस ही न होता। भारत सरकार द्वारा दी गई सहायता से कई भागों में काशी नागरी प्रचारणी से प्रकाशित 'हिन्दी के बृहद् इतिहास' में ऋषि दयानन्द के द्वारा किये गये हिन्दी भाषा के प्रचार के विषय में कुछ भी नहीं लिखा गया।

---

१. अगले कानपुर से भेजे गये निवेदन-पत्र के पैरा ३ से व्यक्त होता है कि **दो सौ मेमोरियल शिक्षा कमीशन के पास भेजे गये थे।**

आर्यसमाज मेरठ द्वारा प्रेषित मेमोरियल[1]

(मुख पत्र)

ओ३म्

मेमोरियल



अर्थात् श्रीयुत डाक्टर हंटर साहिब बहादुर की सेवा में
नागरी प्रचारक निवेदन पत्र
जिसको आर्यसमाज मेरठ की आज्ञानुसार एक सभासद ने लिखा



मिति माघ बदी १२ रविवार
सम्वत् १९३९
विद्या दर्पण यन्त्रालय में छपा

ओ३म्

मेमोरियल

अर्थात् नागरी प्रचारक निवेदन पत्र

श्रीयुत विज्ञातिविज्ञ महामान्यवर एज्यूकेशनल कमीशन के प्रधानाध्यक्ष श्रीमान् डाक्टर हंटर साहिब की सेवा में अति विनय पूर्वक प्रार्थना ॥

यद्यपि आज तक जितने देवनागरी प्रचारक प्रार्थना पत्र अर्थात् (मेमोरियल) आपकी सेवा में भेजे गये हैं सम्भव है कि उनकी अपेक्षा यह निवेदन पत्र अति ही तुच्छ हो, परन्तु न्यायाधीश महाशयों के लिये संकेत मात्र ही बहुत होता है इसलिये आशा है कि इस छोटे से निवेदन पत्र पर अवश्य ध्यान होगा और विचारपूर्वक यथार्थ और प्रजाहित सम्मति दी जायेगी ।

प्रश्न—जिस देश में जिस भाषा के द्वारा शिक्षा दी जाती है क्या वह वहां के सब लोगों को शिक्षा देने के लिये उपयोगी है ॥

उत्तर—जिस देश में जिस भाषा के द्वारा वहां के लोगों को

---

१. यह मेमोरियल २०×२६ अठपेजी आकार के १६ पृष्ठों पर लीथो में छपा है। यह हमें महाशय मामराज जी द्वारा प्राप्त हुआ। मूल उनके संग्रह में सुरक्षित है।

शिक्षा दी जाये वह वहां के लोगों की प्राकृत और स्वाभाविक भाषा हो अर्थात् सब स्त्री पुरुष उसको बाहर भीतर बिना सोचे विचारे रात दिन बोलते चालते हों, क्योंकि उस भाषा के केवल अक्षराभ्यास हो जाने पर क्या बालक और युवा सब स्त्री पुरुष शीघ्र शब्द निकालने और पढ़ने लगेंगे। कारण इस का यह है कि बोली तो वही है जो माता पिता, भाई वन्धु और संगियों से सुनी सुनाई और बोली हुई है, केवल अक्षरों के सीखने और उनके जोड़ तोड़ में श्रम करना रह जायगा। परन्तु वह मातृभाषा आपस की बोल-चाल और लेख का निर्वाह मात्र ही न हो किन्तु उसमें आगे बढ़ने और विद्वान् बन्ने के लिये कविता और विद्या के विस्तृत मार्ग भी हों। अब रहे अक्षर उस मातृभाषा के ऐसे होने चाहिये जो सुलभ हों और उनमें सब प्रकार के शब्द लिखे जा सकें और पढ़ने में ज्यों के त्यों आवें और एक के लेख को दूसरा निर्भ्रम और शुद्ध पढ़ ले। रहा यह विचार करना कि इस देश की कौनसी प्राकृत भाषा है—यों तो इस आर्यावर्त में बंगाली, गुजराती, मरहटी आदि बहुतेरी भाषा जो क्रम से बङ्गाल, गुजरात और महाराष्ट्र आदि देशों में बोली जाती हैं, परन्तु हमारे पश्चिमोत्तर देश में मुख्य नागरी भाषा जिसे अब लोग हिन्दी कहने लगे हैं बोली चाली जाती और इसको छोड़ अवध, पंजाब और मारवाड़ आदि प्रदेशों में भी यही भाषा किसी किसी शब्द की उलट पुलट और ऊंचे-नीचे स्वरों के भेद से बोली जाती है और इसीलिये एक की बोल चाल को दूसरा भली भांति समझ लेता है। और यह मातृभाषा ऐसी सुगम है कि कहे प्रदेशों के अनन्तर और प्रदेशों के लोग भी बङ्गाली दक्षिणी आदि विना पढ़े और सीखे समझ लेते हैं और केवल मेल मिलाप से ही स्पष्ट बोलने लगते हैं। यह तो इसकी सुगमता सरलता का थोड़ा सा वर्णन हुआ अब इसके पूरे होने का व्याख्यान सुनिये कि इसमें कैसी कैसी कविता सीधी सीधी बोल चाल में है कि बड़ी बड़ी प्रसिद्ध भाषाओं की कविता लगा नहीं खातीं। टुक सूर, तुलसी, केशव और बिहारी आदि कवियों की कविता पर ध्यान दीजिये कि कैसे कैसे अद्भुत अलंकार और गूढ़ आशय इस भाषा में बंधे और समाये हैं। गद्य भी इस ललित भाषा की बहुत रोचक है। प्रेमसागर, राजनीति, शकुन्तला आदि

ग्रन्थों के देखने से उसकी उत्तमता और उत्कृष्टता भलीभांति सिद्ध होती है।

गणित, भूगोल, इतिहास और वैद्यक आदि विद्याओं की अनगिनत पुस्तकें बन गईं और प्रतिदिन बनती जाती हैं निदान यह प्राकृत भाषा सर्वथा सबके पढ़ने और लिखने के योग्य है।

अब रहे वह अक्षर कौन से हैं जिन में इस भाषा और अन्य भाषा के शब्दों का पूरा पूरा निर्वाह हो सके और वह यथावत् लिखे पढ़े जायें और लिखने और पढ़ने वाला कहीं रुके और अटके नहीं।

यह अनुपम और अपूर्व अक्षर संस्कृतभाषा के जो पृथिवी मात्र के सम्पूर्ण अक्षरों से उत्तम और सुन्दर हैं। सबसे बढ़कर उनमें यह बात है कि अक्षर अक्षर का रूप निराला है। पढ़ने लिखने में भ्रम कभी नाम को भी नहीं पड़ता और ऐसे सीधे और सुगम हैं कि दो चार दिन के अभ्यास से आ जाते हैं। यों तो संस्कृत भाषा के तरसट अक्षर हैं जिनमें बाईस स्वर, तेंतीस व्यंजन, चार अयोगवाह और चार यम हैं[1]। परन्तु हमारी प्राकृत नागरी भाषा में बहुधा बारह स्वर, तेंतीस व्यंजन, दो अयोगवाह विसर्जनीय, और अनुस्वार और एक यम सानुनासिक[1] अर्थात् सब अड़तालीस अक्षर काम आते हैं और इन्हीं से इस भाषा और अन्य शब्दों का यथोचित निर्वाह हो सकता है और इन मनोहर अक्षरों में सर्वोपरि यह गुण है कि इनमें घटा बढ़ा कर कुछ का कुछ नहीं बना सकते।

मुसलमानों के इस देश में आने और हेल मेल से जो अरबी फारसी के शब्द नागरी भाषा में मिल गये हैं उसी को लोग उर्दू कहने लगे हैं, परन्तु यह उर्दू बहुधा दिल्ली लखनऊ आदि दो चार बड़े बड़े नगरों में जहां पहिले बादशाह लोग रहते थे बोली जाती है। सो उनमें भी फारसी पढ़े लिखे लोग, शेष सब स्त्री पुरुष

---

१. वर्णों का यह वर्णन वर्णोच्चारण शिक्षा के अनुसार किया गया है। वस्तुतः सानुनासिक यम वर्ण नहीं है वह तो स्वरों का एक उच्चारण विशेष है। उसे द्योतित करने के लिये स्वर के ऊपर ँ ऐसा चिह्न किया जाता है। जो कि किसी स्वतन्त्र वर्ण का चिह्न नहीं है। यम स्वतत्र वर्ण हैं।

वही अपनी मातृभाषा बोलते हैं। हमारी भाषा में आपस के मेल जोल से जो कोई अरबी फारसी का तथा अंगरेजी का कोई शब्द मिल गया और सब लोगों में प्रचार पा गया, उसका बोलना और लिखना कोई ऐसी बुराई की बात नहीं जिस से कुछ हानि हो। पर हां, बुराई और हानि की बात तो यह है कि लोगों के जी में जो यह बात समा रही है कि फारसी आरसी है उसके पढ़े लिखे विना मनुष्य की बोल चाल और शील ही नहीं सुधरता और संवरता है इसलिये वह लोग फारसी पढ़ पढ़ कर अपने लेख में निरे अरबी फारसी के शब्द कूट कूट कर भरते हैं और जहां तक हो सकता है अपनी भाषा के सीधे सीधे शब्दों की जगह ढूंडभाल कर अरबी फारसी के टेढ़े टेढ़े शब्द बोलते और लिखते हैं यहां तक कि इजाफत और तरकीब आदि भी अरबी फारसी ही की लाते हैं।

यह फारसी के नाम पर उधार खाने वाले अपनी बोल चाल में तो बड़े बड़े लुगत ही अरबी फारसी के बोलते हैं जिनको साधारण लोग नहीं समझते और बहुधा कह देते हैं कि यह तेरी फारसी तो हमारी समझ में नहीं आती, ढ़वसिर कहें तो समझें। परन्तु उनका लेख जुलेखा बहार दानिश और माधोराम से कम नहीं होता जिसका समझना तो क्या और लोग मौज को भी नहीं पाते, फिर कहिये यह नाम की उर्दू जो सचमुच फारसी का घूंघट काढ़ रही है, लोग कैसे उसको सुगम सुलभ देख सकते हैं? कदापि नहीं॥

भला जब आदमी की सारी उमर अकेली उर्दू के लिए फारसी पढ़ते पढ़ते बीत गई तो आगे और क्या करेगा और वह फारसी भी कैसी जिसमें ऊपरी और मुंह देखी बात बनाना, लल्लो पत्तो, चापलूसी और रसिक बातों के सिवाय और कुछ न हो॥

इसका फल जो कुछ यहां के लोगों पर हुआ है उसको निश्चय चतुर मनुष्य जान्ते होंगे। कदाचित् यह उर्दू जिससे बहुत बड़ी हानि हुई और हो रही है सर्कारी दफतरों में लिखी पढ़ी न जाती तो कभी प्रचार न पाती और जैसी अब लोग नौकरी के लालच से पढ़ते हैं, नाम भी न लेते। इस पर भी तो उर्दू जान्ने वाले नागरी जान्ने वालों का मसा करके सवां (सौवां) भाग भी नहीं। कारण

इसका वही ठेठ बोल-चाल और अक्षरों की सुगमता का है। इस उर्दू भाषा का दफ्तरों में प्रचार होने से बड़ी भारी हानि तो यह है कि साधारण लोग अपने मुआमले और मुकद्दिमे के मध्ये की लिखत पढ़त सुनकर गूंगे बहरों के समान मुंह तकते रह जाते हैं बहुतेरा कान लगाते हैं, पर समझते नहीं, जो कहीं पढ़ने लिखने वाले ने किसी कारण और प्रयोजन से अपना और उसका सिर खपाया और सैकड़ों दृष्टान्त दिये तो जाकर कहीं औंधा सीधा मतलब समझे तो समझे, नहीं तो नहीं, हारकर जैसा कि किसी ने कहा वैसा मान लिया। जो पक्षपात को काम में न लावें तो वकील, मुख्तार इसकी साक्षी दे सकते हैं। साधारण लोगों के पास जब कोई सर्कारी कागज वा खत पत्र जाता है तो बेचारे उस को लिये मारे मारे फिरते हैं। जो दैव से फारसी पढ़ा मिल गया तो मिल गया, नहीं तो दस दस पांच पांच कोस जाकर पढ़वाते हैं और वह भी खाली हाथ नहीं, किन्तु दे लेकर अपना काम साध लेते हैं। वह फारसी पढ़े जैसा रात दिन बोलते हैं वैसा भी नहीं लिखते। लिखने के समय निरी फारसी छौंकते हैं (मानो इनकी जन्म घुट्टी फारसी ही है) और क्यों न फारसी बघारें, इसी में तो उनकी बड़ी जीत है। बात बात में लोगों को मूंडते और जरा जरा से लिखने पढ़ने का बहुत कुछ मांग लेते हैं जो यहां की ठेठ बोल चाल में लिखें तो ओलट ही क्या रहे और किस मिष से लोगों को ठगें। निदान कहां तक लिखा जाय, इस उर्दू का दफ्तरी [में] प्रचार होने से बड़ी बुराइयां और लोगों की हानि हुई और होती है। उदाहरण एक नहीं हजारों दे सकते हैं। इसलिये यह तीन काल में पढ़ने और दफ्तरों में प्रचार पाने योग्य नहीं।

और यह भाषा तो जो कुछ है सो है ही, परन्तु इसके अक्षर, जिनमें यह आजकल लिखी जाती है बहुत ही निषिद्ध है। उन्होंने रहा सहा लोगों का मठ मारा है।

इन फारसी अक्षरों की लिखत को पढ़नेवाले केवल अन्धे की लाठी के समान टटोलते चलते हैं और जो कुछ पढ़ते हैं उसको प्रसङ्ग से निकालते हैं और प्रसङ्ग के विना कोई किसी के लेख को निर्भ्रम और ठीक नहीं पढ़ सकता। और दूसरी भाषा के शब्दों

का लिखना पढ़ना तो मानो असम्भव ही है और किसी ने टूटा-फूटा लिख भी लिया तो पढ़ने में कदापि शुद्ध नहीं आता, कुछ कुछ मुंह से निकल जाता है। बहुतेरे नागरी, संस्कृत और अंगरेजी के शब्द इनही अक्षरों के प्रताप से बिगड़ गये, जिसको सुनकर हंसी आती है। यह कुछ लिखने पढ़ने वालों का दोष नहीं है, किन्तु अक्षर ही ऐसे हैं कि फारसी के अनन्तर और किसी भाषा के शब्द उनमें शुद्ध नहीं लिखे जा सकते और जो सच पूछो तो फारसी का भी निर्वाह यथावत् नहीं होता, क्योंकि प्रथम तो साकिन्, मुतहर्रिक आदि का भेद और पढ़ने के समय और **अलिफ़ ऐन** और **ते, तोय** ا ع ط ت और **से, सीन, स्वाद** ث س ص और **हे, हे** ح ه और **ज़ाल, जे, ज्वाद, ज़ोय** ذ ز ض ظ का भेद लिखने के समय पूर्वस्मरण और लुगत की किताब के बिना स्पष्ट नहीं हो सकता॥

दूसरे इन अक्षरों में **अलिफ, ऐन, वाव, ये** ا ع و ی ये चार स्वर हैं, जिनमें से **ऐन** ع अरबी में ही आता है और **वाव ये** و ی व्यञ्जन का भी काम देते हैं और **जेर, जबर, पेश ये** ِ َ ُ ا ی चार स्वरों के संकेत और उनकी मात्रा हैं जो बहुधा लगाई नहीं जाती। इनही स्वर और संकेतों से सारे स्वरों का खेंच तान कर उच्चारण करते हैं।

तीसरे इनकी बनावट और मिलावा भी बहुत भ्रमणीक है। जैसे **बे, पे, ते, से** ب پ ت ث और **जीम, चे, हे, खे** ج چ ح خ और **दाल, जाल** د ذ और **रे, जे** ر ز और **सीन, शीन** س ش और **स्वाद ज्वाद** ص ض और **तोय, जोय** ط ظ और **ऐन गैन** ع غ और **काफ़, गाफ़** ک گ बनावट और मिलावट में और **फे, काफ़** ف ق और **बे, पे, ते, से, नून, ये** ب پ ت ث ن ی की केवल बनावट में नुक्तों और शोशों के सिवाय कुछ अन्तर नहीं अर्थात् जब ये दूसरे अक्षरों से मिलाये जाते हैं तब सब का रूप एक सा दिखाई देता है, जो चाहो सो पढ़ लो। यदि पढ़ने वाले के भाग्य से नस्तालीक खत (जिसमें पूरे पूरे अक्षर और नुक्ते और शोशे लगे हुए होते हैं) हाथ का लिखा हुआ वा छपा हुआ तो उसने पढ़ लिया, नहीं तो माथा पकड़ कर रह गया, परन्तु हरकात के बिना उच्चारण तब भी ठीक न होगा॥

इस नस्तालीक खत में प्राय: पुस्तकें लिखी जाती हैं और वह मनमानी घसीट जिसमें रात दिन लोग चिट्ठी, पत्री आदि निज के और सर्कारी काम करते हैं, उसका पढ़ना अलबत्तह कुछ काम रखता है। ऐसे वैसे का काम नहीं जो पढ़ सके, बैठा सिर धुना करता है। उसके बाचने में अभ्यास करने के लिये लोग पढ़ने पढ़ाने से भी अधिक श्रम करते हैं। तब भी यह लिखत बहुत सोच विचार और पूर्वापर के सम्बन्ध से जों तों कर पढ़ने में आती है और यथार्थ में वह अक्षर और लिखित तो ऐसी नहीं कि जिसको कोई पढ़ सके, केवल पढ़ने वाले के अभ्यास की बात है। ऐसी लिखत को पढ़ कर सुनाने के लिए लोग पहले से देखभाल रखते हैं और फिर भी जो शब्द पढ़ने में नहीं आते उनकी जगह और का और सुना देते हैं। इन अक्षरों में जब फारसी ही की यह दुर्दशा है तो और भाषा की तो क्या कथा, जो लिखने में ही नहीं आती। यद्यपि फारसी वालों ने यहां की बोल चाल के लिये टे, डाल ड़े ڑ, ڈ ٹ नये अक्षर घड़े तो भी यहां की भाषा का यथोचित निर्वाह नहीं हो सकता। इसलिये उन्होंने बहुतेरे यहां की बोली के शब्दों को अपने ढंग पर बना लिया। जैसे ब्राह्मण को बिरहमन और दक्षिण को दकन आदि। निदान इस शिकस्त खत में ही वही शब्द पढ़ने में आते हैं जो जबान पर चढ़े रहते हैं और उनमें भी जो बहुधा एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं दुब्धा में डालते हैं और जहां इतर भाषा का शब्द आया और मुंह से कुछ का कुछ निकला, देखो जैसे नांव, गांव, ठांव कभी ठीक नहीं पढ़े जाते हैं॥

निदान इन फारसी अक्षरों और उनकी लिखत की कहां तक बुराइयां लिखी जायं, उनसे इस देश के लोगों की बड़ी भारी हानि है। नित नये जाल बनते हैं, रात दिन लोग धोके खाते हैं। जरा जरा से लिखवाने पढ़वाने के लिये गिड़गिड़ाते फिरते हैं। सर नामह उठवाई और कलम पकड़वाई के लिये नित उठ लुटते हैं। पृथिवी भर के लोगों की यही परिपाटी है जि जहां बालक पांच सांत वर्ष का हुआ और उन्होंने उसको पहिले मातृभाषा लिखानी पढ़ानी आरम्भ की और जब वह उसमें प्रवीण हो गया और गणित, भूगोल इतिहास आदि विद्या सीख चुका तब उस की रुचि के अनुसार इतर भाषा और विद्या सिखाते हैं। यहां कुछ काल से

एक निराली ही चाल पड़ गई है अर्थात् जब तक मां बाप की गोद में खेलता और तुतलाता रहा तब तक तो मातृभाषा सीखता रहा और जब पढ़ने लिखने के योग्य हुआ तब ही मुल्ला और मियां जी को सौंप दिया गया और यह गोत कि

करीमा बबख्शाय बर हाल मा। कि हस्तम असीरे कमंदे हवा ॥

गाने लगा और यह राग केवल जीभ तोड़ने और गला फाड़ने के लिये होती है, क्योंकि वह अवस्था तो ऐसी है ही नहीं कि दूसरी भाषा सीख सकें और उसके भार को उठा सकें, परवश बिचारे शिथिल और मन्द होकर अधम रह जाते हैं। न अपनी भाषा जैसी चाहिये आई, न दूसरी जो मार-पीट करके। बहुत हुआ तो दोनों भाषा का सार यह याद रहा कि

अय अकरीम बखशीश कर ऊपर हाल हमारे के।
कि हूं मैं कैदी हवा और हविस का॥

बस यही मुंशी लोगों की सारी ऊमर की मेहनत का निचोड़ है, जिसको उन्होंने अदालतों और दफ्तरों में फैला रक्खा है और केवल इतनी ही करतूत पर आपे को बड़ा मानते हैं और जानते हैं कि इल्म है तो फारसी और सदा घमंड से यह पढ़ते हैं कि—

कलम गोयद कि मन शाहे जहानम।
कलम कश रा बदौलत मे रसानम ॥

और कौतुक यह कि जरा जरा से लड़के छाती पर हाथ रख रसिक शेर पढ़ते हैं और ठंडी सांसें लेते हैं और आपे को संवारने और वेश बनाने में वेश्या को मात करते हैं। विचार करने का स्थान है कि जिस भाषा का ऐसा बुरा गुण हो, वह क्या शिक्षा देने और प्रचार पाने योग्य है? कभी नहीं॥

निस्संदेह यहां तक हो सकता है कि जो भाषा ऐसी क्लेश साध्य हो और उसमें निरे अवगुण भरे हों उसको लोग पढ़ते पढ़ाते ही क्यों हैं? तो इसका समाधान यह है कि न उसमें सर्कारी काम काज होते, न लोग उसको अंगीकार करते। कदाचित् प्रतीत न हो तो देख लीजिये, जो लोग अपनी लड़कियों की शिक्षा चाहते हैं वह सब नागरी पढ़वाते हैं। और कोई उनसे कहे भी कि अजी आप तो उर्दू फारसी जानते हैं, लड़कियों को क्यों नहीं सिखाते तो तुरन्त उसके उत्तर में यही कहते हैं कि उनकी कौन सी नौकरी

चाकरी करनी रह गई। और जी में यह भी जान्ते हैं कि उर्दू, फारसी पढ़कर लड़कों की क्या दशा हुई जो लड़कियों की होगी। वास्तव में पेट ऐसा ही है जो कुछ नहीं करना है, उसके लिये करना पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि उर्दू, फारसी वही लोग पढ़ते पढ़ाते हैं जो अदालतों से संबंध और प्रयोजन रखते हैं। शेष सब गुणग्राही पहले अपनी मातृभाषा सीखते हैं। देखिये इस देश में हजारों चटशाला और पाठशाला हैं, जिनमें लाखों लड़के नागरी पढ़ते हैं। यदि अपनी मातृभाषा में रुचि नहीं होती तो कौन पढ़ता॥

इस लेख से हमारा यह प्रयोजन नहीं है कि अपनी मातृभाषा के सिवा कोई कुछ न पढ़े, किन्तु बड़ा मनोरथ यह है कि प्राथमिक शिक्षा हमारी मुख्य नागरी में हो, तदनन्तर जिसकी जो रुचि हो उसके अनुसार संस्कृत अंगरेजी और अरबी आदि पढ़े, और जब तक अपनी भाषा में निपुण न हो ले तब तक दूसरी भाषा में शिक्षा न दी जाय। इस नियम के बिना जो कुछ हानि हुई, उसकी साक्षी बहुधा फारसी और अंगरेजी वालों की बोल चाल और उन के अनुवाद दे रहे हैं। हां रहा, इसका वर्त्ताव, वह तब ही हो सकता है जब सर्कारी दफ्तरों में नागरी का प्रचार हो। निदान कहां तक वर्णन किया जाय, नागरी भाषा और उसके अक्षरों से जो कुछ प्रजा का लाभ है उसको सब जान्ते हैं। यहाँ तक कि विदेशी लोग भी सराहते और उसके पढ़ने में उद्यत हैं। तथा च अभी इंगलिस्तान के कमिश्नरों ने सिविल सर्विस की परीक्षा में उर्दू की जगह नागरी को आवश्य[क] और प्रधान ठहराया है। इसलिये आशा है कि हमारी प्रार्थना भी अवश्य सफल होगी॥

अलमिति

आर्यसमाज मेरठ के एक सभासद ने लिखा मिति माघ वदि १२ रविवार सम्वत् १९३९ विक्र०

—:०:—

कानपुर निवासियों द्वारा प्रेषित
निवेदन-पत्र[1]

अशेषगुण सम्पन्न महामान्य महामहिम श्रील श्रीयुक्त सरऐल्-फ्रेड कामिन्स लायक के, सी, बी, सी, आई, ई पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध के लफ्टिनेण्टगवर्नर महाशय प्रवल प्रतापेषु।

सविनय निवेदनमिदम्।

हम रईस प्रार्थी जिला कानपुर के आप से विनय करते हैं, कि हम लोगों की दीन दुर्दशा पर ध्यान दीजिये ! न्यायशीला सर्कार की यह इच्छा है कि प्रजा को कष्ट किसी प्रकार से न हो। हम लोगों को मूर्ख न रहने देना और हमारी साधारण भाषा में शिक्षा देना यही न्यायशीला सरकार अंग्रेज का मत चला आया है। हम लोगों को बहुत आनन्द हुवा कि जब सर्कार से शिक्षा कमीशन के बैठने की आज्ञा हुई। यह सोचकर कि अब हम लोगों की दीन दशा पर शिक्षा कमीशन अपना मत आप तक यथोचित प्रकाश करेगी। पर बड़े शोक की बात है हमलोगों के विषय में अर्थात् जो जो हम आपके प्रार्थियों ने पुकारा था कुछ ध्यान न दिया गया। यहां पर हिन्दी उर्दू की जगह याने देवनागरी अक्षर फारसी अक्षरों की जगह सब सरकार के दफ्तरों में हो जाते, यही हमलोगों की पुकार थी। जो जो बुराइयां उर्दू के जारी रहने से होती जाती हैं उनके वर्णन करने का आपके सामने जो खुद भली भांति जानते हैं, कुछ प्रयोजन न था। पर हमलोगों को उर्दू से बहुत दिक्कत उठानी पड़ती है। इससे आपसे, जो हमारे पिता सदृश हैं, संक्षेप में कहते हैं।

(१) १८५४ ई० के डिस्पैच में इस बात पर बड़ा जोर दिया गया था कि लोगों को साधारण शिक्षा उनकी अपनी बोली में देनी चाहिये। उर्दू कि जिसमें आज तक उत्तर हिन्दुस्तान में शिक्षा दी जाती है लोगों की बोली नहीं है। हमारी मातृभाषा और देशी बोली जो हमारे घरों में स्त्री पुरुष लड़के वाले नित्य

---

१. यह निवेदनपत्र नीले रंग के फुलस्केप कागज पर ५ पृष्ठों में ग्रेट टाइप में टपा है। यह श्री महाशय मामराजजी द्वारा हमें प्राप्त हुआ। मूल उनके संग्रह में सुरक्षित है।

प्रति बोलते चालते हैं, हिन्दी है किन्तु उर्दू नहीं है। हम लोगों को हमारी मातृभाषा में शिक्षा नहीं दी जाती है। हमारी प्रथम शिक्षा हिन्दी ही के द्वारा उचित है और सर्व साधारण मनुष्यों में हिन्दी ही के द्वारा शिक्षा फैल सकती है।

(२) हिन्दी याने जो हम लोगों की बोली है और देवनागरी अक्षरों में लिखी जाती है बङ्गाली गुजराती मरहटी की तरह संस्कृत की एक शाखा है। पर बँगाल गुजरात और महाराष्ट्र देशों में उनकी प्रत्येक भाषा दफ्तरों में प्रचलित है और सर्वसाधारण को शिक्षा इन्हीं में दी जाती है। इस लिये हम आप से प्रार्थना करते हैं कि उसी तरह यहां पर भी दफ्तरों में लिखा पढ़ी होवे।

(३) शिक्षा कमीशन की रिपोर्ट से यह प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि हिन्दी के द्वारा प्रथम शिक्षा चाहने वाले अधिक मनुष्य हैं, क्योंकि दो लाख मनुष्यों के अनुमान से **दौ सो मेमोरियल** इसी प्रयोजन से शिक्षा कमीशन की सेवा में पहुंचे। और उर्दू को केवल लाचार होकर इस कारण सीखते हैं कि देश के दफ्तरों में उर्दू लिखी पढ़ी जाती है और उर्दू का जो कुछ प्रचार हुआ वह तभी से हुआ है, जब से यह दफ्तरों की बोली ठहराई गयी है।

(४) हिन्दी में बहुत सुगम शब्द जो सबको समझ पड़ते हैं, होते हैं और देवनागरी अक्षरों में लिखी जाती है। उर्दू में आधे से अधिक फारसी और अरबी के शब्द बोले जाते हैं, जो सबकी समझ में नहीं आते। केवल फारसी और अरबी पढ़े मनुष्य समझते हैं और यह फारसी और अरबी अक्षरों में लिखी जाती है।

(५) मुसलमानों के राज्य के पहिले यहां पर इन्हीं देवनागरी अक्षरों में काम होता था।

(६) यद्यपि मुसलमान और सर्कार अंग्रेजी ने उर्दू को दफ्तरों की भाषा बनाकर इसकी पाठशाला बिठा कर इसके फैलाने के बड़े बड़े उपाय किये तथापि सर्वसाधारण मनुष्यों ने इसको अङ्गीकार न किया और न करना चाहते हैं। केवल बड़े बड़े नगरों में कुछ लोग उर्दू बोलते हैं शेष सब हिन्दू मुसलमान गावों और कसबों में हिन्दी ही बोलते चालते हैं। जब कभी कोई सर्कारी कागज उर्दू में लिखा हुआ उनके पास पहुंचता है तो उसके पढ़ाने

को गांव गांव भटकते फिरते हैं। हिन्दी में यह कष्ट कभी नहीं देखने में आ सकता, क्योंकि हर एक गांव और कसबे में एक दो आदमी हिन्दी पढ़े लिखे होते ही हैं।

(७) शिक्षा विषयक डैरक्टर साहब की रिपोर्ट से और मर्दुमशुमारी की किताबों से यह साफ निश्चय हो जायेगा कि अब भी लाखों हिन्दू मुसलमान सहस्रों ईसाई हिन्दी पढ़े हुए हैं। बड़े बड़े नगरों में उर्दू पढ़े केवल वही मनुष्य हैं जो कचहरियों में नौकरी चाहते हैं या जिनका काम कचहरी में पड़ता है।

(८) ईसाई लोगों की पुस्तकें इन्हीं देवनागरी अक्षरों में उपदेश के लिये बनी हैं। इससे साफ प्रकाश पाया जाता है कि हिन्दी के जानने वाले लोग बहुत हैं।

(९) प्रेसिडेण्ट शिक्षा कमीशन श्रीमान् हण्टर साहब ने लाहौर में अपनी वक्तृता में कहा था कि मेमोरियल अधिकतर हिन्दी के लिये दिये गये हैं और विपक्ष में बहुत कम। और जिन्होंने हिन्दी के वास्ते दिया है वह सर्वसाधारण लोग हैं और जिन्होंने उर्दू के लिये दिया है वह सर्कारी नौकर हैं। और जिनको सर्कार अमला क्लास कहती है। इस से भी साफ जाहिर है कि हम सब लोग हिन्दी ही चाहते हैं।

(१०) मुफस्सिल में जो तहसीली और हलका बन्दी पाठशाला जारी हैं उनमें अधिकतर हिन्दी ही पढ़ाई और लिखाई जाती है। इस विषय में इंस्पेक्टरों और डैरेक्टर स्कूल से पूछ लिया जाय और नार्मल स्कूलों में भी ज्यादा हिन्दी में ही शिक्षा दी जाती है। इसलिये आप से प्रार्थना करते हैं कि सर्कार का बड़ा लाभ होगा यदि दफ्तरों में हिन्दी जारी करने की आज्ञा दी जावे, नहीं तो इतना रुपया जो इन मदर्सों में खर्च होता है व्यर्थ जाता है।

(११) जो सर्कार यह चाहती है कि सर्कार की शिक्षा सर्वसाधारण मनुष्यों में फैल जाय, सर्कार की प्रजा सभी लिखी पढ़ी हो जावे, गांव का गंवार कचहरी का कागज ऐसा ही पढ़ ले जैसा अब कचहरी का कागज कचहरी वाला पढ़ सकता है तो सर्कार का यह प्रयोजन हिन्दी को सर्वसाधारण के लिये प्रथम शिक्षा बनाकर अंग्रेजी के साथ इसको दूसरी भाषा नियत करने में सिद्ध हो सकता

है। साधारण शिक्षा का प्रचार उर्दू के द्वारा कभी नहीं हो सकता।

(१२) दफ्तरों में फारसी और अरबी अक्षरों के स्थान में देवनागरी अक्षर कर देने की जितनी आवश्यकता समझी गई है उसमें बड़ी आवश्यकता यह है कि जब दफ्तरों में देवनागरी अक्षरों का प्रचार हो जावेगा, सर्वसाधारण में शिक्षा फैल जाने का आप ही एक कारण हो जायगा। और दफ्तरों में देवनागरी अक्षरों का प्रचार बड़ी सुगमता के साथ हो सक्ता है। वही नौकर, वही परवाना, वही रूबकार हिन्दी से लिखे हुये को छः महिने का समय पाकर सीख सक्ता है, क्योंकि देवनागरी अक्षर बड़े सुगम हैं और बड़ी जल्दी आ सक्ते हैं।

(१३) हम लोग आपसे प्रार्थना करते हैं कि सेण्ट्रल प्राविन्सेज अर्थात् मध्यप्रदेश में और विहार में जहां कि अभी हाल ही में हिन्दी जारी हुई है और जिला तराई और राज्य रीवां वहां भी हिन्दी का प्रचार कर दिया गया है आप सब रिपोर्ट इस संक्षेप से देखें।

(१४) देवनागरी अक्षर ऐसे सुगम हैं कि हिन्दू मुसलमान ईसाई तीन दिन में ४८ अक्षर और १२ मात्रा सीख कर लिखने पढ़ने लगते हैं और ६ महिने में तो इतना अभ्यास हो सक्ता है जैसा अब कचहरी वालों को उर्दू अक्षरों के लिखने पढ़ने में छः वर्ष लगते हैं।

(१५) सब हिन्दू मुसलमान अपनी बही खाता देवनागरी व उसी के अदल-बदल के अक्षरों में लिखते हैं।

(१६) पटवारियों के कागज अधिकतर इन्हीं देवनागरी अक्षरों में लिखे जाते हैं।

(१७) उर्दू अक्षरों में बड़े बड़े दोष हैं। अलग अलग अक्षरों का जो उच्चारण होता है वह उनको शब्द में मिलाने से और का और हो जाता है। लिखा कुछ जाता और पढ़ा कुछ जाता है। एक विंदु के छोड़ने वा जोड़ देने से इधर का जगत् उधर हो जाता है। अब उर्दू में जाल तो बड़ी सुगमता से होता है और सर्कार कुछ बन्दोबस्त नहीं कर सकती। इसलिये आप से प्रार्थना करते हैं कि जड़ ही काट डालिये ताकि फिर पेड़ अर्थात् उर्दू ही नहीं रहेगी

तब जाल काहे को होगा और सर्कार का एक बड़ा भारी उपकार होगा। उर्दू अक्षरों में बहुतों का उच्चारण एकसा और सूरत भिन्न भिन्न होती है।

(१८) उर्दू अक्षरों में तीन मात्रा और ३३ व्यंजन हैं। देवनागरी अक्षरों में १२ मात्रा और ३३ व्यंजन हैं, मात्राओं में तीन भेद हैं ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत। यही कारण है कि अरबी तुर्की अंग्रेजी किसी बोली का शब्द हो जैसा उच्चारण होता है वैसा ही देवनागरी में लिखा जाता है, तैसा ही पढ़ा जाता है। उर्दू में एक शब्द कई कई प्रकार पढ़ा जाता है। आप से प्रार्थना करते हैं कि नकशा देखिये, जिसमें यह थोड़ा सा प्रकाश किया गया है कि किस तरह उर्दू कई तरह से पढ़ी लिखी जाती है।

शब्द	उर्दू में कितने तरह से पढ़ा जा सकता है।
१—निरंजन	निरज्जन, बिरहमन
२—प्यारेलाल	प्यारेलाल, बिहारीलाल
३—बच्चन	थम्मन, भम्मन, बच्चन
४—साहेब दर्या पार होंगे किश्ती मौजूद रहे	कसबी मौजूद रहै।
५—नवात सुफेद	बनात सुफेद।
३—मुरैथा	मुड़ैना, मुरनिया, मुरंथा, मुरंतिया, मुरटा, मुहना, मरहटा।
७—आलू बुखारा	उल्लू विचारा
८—वेनी ने मारा	नश्री ने मारा, तैंने मारा।
९—पारबती	नारायनो
१०—तमस्सुक	नमक, तमक।
११—होली फुकवा दो	होली फिकवादी
१२—एक साहब 'छतमरा पट्टी दनका' को	'जमराही डंका' पढ़ते थे
१३—और खुगौर कुहनह को चुकर घंट	

(१९) जब शिक्षा कमीशन इलाहाबाद में मयोहाल में बैठी थी तब प्रेसीडेन्ट ओनेरेबिल डाक्टर हंटर साहेब को कहना पड़ा था कि हिन्दी की पश्चिमोत्तर प्रदेश में बड़ी चाह है।

(२०) उसी समय ओनेरेबिल जस्टिस् सय्यद महमूद ने भी

कहा था कि यद्यपि मैं मुसल्मान हूं लेकिन यहां के लोगों की राय प्रकाश करता हूं वह सब लोग यही चाहते हैं कि हिन्दी सब जगह प्रचलित होवे और उर्दू जो टेढी-मेढी लिखी जाती है मेरी राय में न रहनी चाहिये।

(२१) आपसे प्रार्थना करते हैं कि हिन्दी के जारी होने के लिये कमिशनर मेजिस्ट्रेट और सेशन्स जजों की राय ली जावे।

(२२) शिक्षा कमीशन के साम्हने लगभग ४० आदमियों ने पञ्जाब से शिक्षा विषय साक्षी दी थी और उसमें से आधे से ज्यादह पुरुषों ने उर्दू के स्थान में हिन्दी प्रचलित करने के लिये जोर दिया था, विशेष कर पञ्जाब के लार्ड पादरी ने भी इस पर अच्छी तरह साक्षी दी थी।

(२३) अब आप से हम लोगों की यही प्रार्थना है कि आप ऊपर की लिखी हुई बातों और शिक्षा कमीशन की रिपोर्ट पर विचार करते समय हिन्दी पर पूरा पूरा ध्यान दीजिये और हिन्दी और देवनागरी अक्षरों को कचहरियों में वर्तने की आज्ञा दे दीजिये और हम सब लोग आप की प्रजा आपके चिरंजीवी होने को विनय करते हैं।

—:o:—

षष्ठ परिशिष्ट

ऋषि दयानन्द के वास्तविक चित्रों का वर्णन

[श्री महाशय मामराज जी आर्य, (खतौली जि० मुजफ्फर नगर) द्वारा संकलित]

ऋषि दयानन्द के पत्र विज्ञापन के पृष्ठ ८३९ तथा जीवन-चरितों से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द के चित्र (फोटो) कई स्थानों पर लिये गये थे। हमारे २० जुलाई सन् १९२६ से फरवरी १९५३ तक के लगभग २७ वर्ष के अन्वेषण में ऋषि दयानन्द के जो वास्तविक (असली) चित्र हमारी दृष्टि में आये, उन का वर्णन नीचे किया जाता है[1]

---

१. नीचे वर्णित चित्रों में से कुछ चित्र प्राप्त किये हैं, कुछ को प्राप्त करने के लिये यत्न हो रहा है। इन सब असली चित्रों को और कुछ मूलपत्र

१—छाती के नीचे वस्त्र लपेटे हुए आसन से बैठे—ऋषि दयानन्द संवत् १६२४ (=सन् १८६७) के कुम्भ के मेले में हरिद्वार जाते हुए मेरठ में ठहरे थे। उसी समय उनका यह चित्र लिया गया था। चित्र से भी ऋषि दयानन्द की आयु ३५-४० के मध्य की प्रतीत होती है, और मुखमण्डल बड़ा तेजस्वी है। मुझे यह चित्र सन् १६२६ में ऋषि दयानन्द के पत्रों का अन्वेषण करते हुए मेरठ से मिला था।

इसकी प्रतिकृति 'आर्यगजट' (उर्दू लाहौर) सं० १६८३ के ऋष्यङ्क में प्रकाशित हुई थी। श्रावणी सं० २०१० के 'वेदप्रकाश' देहली के 'श्रीमद्दयानन्द-ग्रन्थ-संग्रह'[1] नामक विशेषाङ्क में भी मैंने ऋषि के अन्य ५ असली चित्रों के साथ छपवा दिया है।

२—सर्वस्व त्यागी दण्डधारी खड़े हुए—ऋषि दयानन्द का यह चित्र विक्रम सं० १६२४ (=सन् १८६७ ई०) में हरिद्वार के कुम्भ (जहां कुटिया पर पाखण्ड-खण्डनी पताका लगी हुई थी) के अन्तिम समय में लिया गया था, ऐसा पुराने आर्य व्यक्तियों से ज्ञात हुआ है। इसी चित्र के आधार पर चित्रशाला पूना द्वारा एक बड़ा चित्र छपा था। यह मैंने २५ दिसम्बर १६२६ को फर्रुखाबाद के महाशय झुन्नीलाल जी आर्य (वृद्ध) के पास देखा था। इसकी

जिनके फोटो कापी हमारे पास हैं उनको तथा कुछ अन्य पत्रों को जिनके फोटो प्राप्त करने का यत्न हो रहा है, एक पृथक् संग्रह में छापेंगे। सम्पा०।

१. इसी विशेषाङ्क में श्री स्वामी विरजानन्द सरस्वती का भी एक चित्र प्रकाशित हुआ है। इसे मेरे जोधपुर निवासी मित्र प्रसिद्ध इतिहासज्ञ ठाकुर जगदीशसिंह जी गहलोत (क्यूरेटर म्यूजियम जयपुर) ने अलवर राज्य के प्राचीन चित्र संग्रह से प्राप्त किया था। मूल चित्र पर श्री स्वा० विरजानन्द सरस्वती का नाम अङ्कित नहीं है। अलवर नरेश के यहां श्री विरजानन्द जी कुछ समय रहे थे, अतः उन्होंने इस चित्र को श्री स्वा० विरजानन्द जी का समझा है। वस्तुतः यह चित्र उनका नहीं है। इसमें 'यज्ञोपवीत' का चिह्न अत्यन्त स्पष्ट है। संन्यासी शिखा सूत्र से विहीन होते हैं। चित्र को गहराई से देखने पर विदित होता है कि यह जटा जूट लम्बी डाढ़ी वाले यज्ञोपवीतधारी किसी ब्रह्मचारी का है। संन्यासी का नहीं। सम्पा०

रंगीन बड़ी पूना की छपी हुई प्रति मेरे पास भी है। इसी प्रकार का चित्र बा० रामविलास शारदा ने 'आर्य धर्मेन्द्र जीवन' में प्रकाशित किया था। आर्य समाज लखनऊ के इतिहास में भी ऐसा चित्र लगा हुआ है।

इसी प्रकार का छोटा सा पुराना असली प्लेट से उतारा गया चित्र २१ सितम्बर १९२६ को मैंने मेरठ सदर में बाबू आनन्दीलाल जी मास्टर (मन्त्री आर्यसमाज सन् १८८०) के पुत्र बाबू जीवनलाल जी के पास देखा था। उसे वे वास्तविक बताते थे। मांगने पर उन्होंने वह चित्र नहीं दिया। तत्पश्चात् जीवनलाल जी के पुत्र से सन् १९४५ ई० में मैंने उसे प्राप्त किया[1]। इसी मेरठ वाले छोटे चित्र जैसा ही एक पुराना चित्र श्री पं० शीतलाप्रसाद जी पुस्तकाध्यक्ष आर्यसमाज फर्रुखाबाद के पास सुरक्षित था। उसे मैंने १३ जनवरी सन् १९२७ को देखा था।

३—**समाधि दशा में कौपीन मात्र धारण किये**—यह चित्र लगभग सं० १९२५ (=सन् १८६८) का है। इसमें ऋषि दयानन्द चौकी पर समाधि मुद्रा में कौपीनमात्रधारी नग्न बैठे हुए हैं, पास में दण्ड रक्खा हुआ है। छोटे बालों की डाढ़ी पर भस्म लगी हुई है। यह चित्र फर्रुखाबाद में गंगा के तट पर लाला श्यामलाल सिद्धगोपाल जगन्नाथ की बड़ी विश्रान्त पर लिया गया था, ऐसा कहा जाता है। यह चित्र मुझे ऋषि दयानन्द के पत्रों का अन्वेषण करते हुए ३१ जनवरी १९२७ को रायबहादुर लाला दुर्गाप्रसाद[2] के पुत्र बा० चन्द्रप्रकाश जी से (उनके चित्रों वाली एलबम में से) मिला था।

४—**कुरसी पर वस्त्र पहन कर बैठे हुए**—यह चित्र आश्विन

---

१. इस चित्र को मैंने 'मुरारी फाइन आर्टप्रेस दिल्ली' को १५ मार्च १९५३ को अनेक चित्रों के साथ 'एलबम' बनाने के लिये दिया है। [यह 'एलबम' बनकर श्री मामराज जी को प्राप्त हुआ वा नहीं, हमें ज्ञात नहीं। सम्पा०]

२. ये ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त थे। ऋषि दयानन्द का इनके साथ बराबर पत्रव्यवहार रहता था। इस पत्र और विज्ञापन संग्रह में इनके नाम लिखे हुए ऋषि दयानन्द के अनेक पत्र छपे हैं।

सं० १९३१ (=अक्टूबर सन् १८७४) में श्रीमान् कृष्णराव जी गोल-वल्कर एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर जबलपुर ने ऋषि दयानन्द को अपने स्थान पर ले जा कर और अपने यहां से वस्त्र पहना तथा कुरसी पर बैठाकर खिचवाया था।[1] इस चित्र में पास में टेबुल के सहारे मुड़ी मूठ की बेंत रक्खी है। इस चित्र को श्री देवेन्द्र बाबू ने स्वयं वहां जाकर देखा था। देखो उनके द्वारा संकलित और आर्य साहित्यमण्डल अजमेर द्वारा प्रकाशित जीवन चरित पृष्ठ २८१। इस चित्र का वास्तविक कांच का प्लेट उनके पुत्र मनोहरकृष्ण गोलवल्कर ने आर्य समाज जबलपुर को सौंप दिया है। उसी प्लेट से उतारा हुआ चित्र मैंने ३० जनवरी १९४४ को बा० दीनानाथ चढ्ढा (इछरा-लाहौर निवासी) जबलपुर वालों से रत्नपुर (महा कोशल की प्राचीन ऐतिहासिक राजधानी) जि० विलासपुर सी. पी. से विष्णु महायज्ञ तथा हिन्दू महासभा के अधिवेशन के अवसर पर प्राप्त किया था। इसी चित्र से बना हुआ चित्र 'दयानन्द स्मृतिग्रन्थ' में वैदिक यन्त्रालय अजमेर ने लगाया है।

५ **राजकोट (सौराष्ट्र) में उतारा गया**—ऋषि दयानन्द का एक चित्र पौष शुक्ला ५ मंगलवार सं० १९३१ (=१२ जनवरी १८७५) को राजकोट (सौराष्ट्र) में लिया गया था। देखो श्री देवेन्द्र बाबू सं० जी० च० पृष्ठ ३२१। यह हमारे देखने में नहीं आया।

६—कुरसी पर बैठे हुए सामने के भाग का—यह चित्र सं० १९३१ (=सन् १८७५) में गिरगांव बम्बई में उतारा गया था। इसमें ऋषि दयानन्द कपड़े पहने हुए कुरसी पर बैठे हैं, सिर पर साफा बंधा हुआ है और साथ में मुड़ी हुई बेंत भी है। इसे श्री स्वा० सत्यानन्द जी ने बम्बई से खोजा था। इस चित्र के फट जाने से पैर का कुछ भाग नष्ट हो गया है। इसी चित्र से श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने ब्लाक तैयार कराकर श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश के

---

१. गोलवलकर जी के जिस स्थान पर यह चित्र खींचा गया था, उसे मैंने ऋषि दयानन्द के पत्रों तथा चित्रों का अनुसंधान करते हुए सन् १९४५ में जबलपुर जाकर देखा था।

प्रथम संस्करण में लगवाया था। यह पुस्तक लाहौर के दयानन्द कालेज अन्तर्गत लालचन्द पुस्तकालय में थी। वहां से श्री पं० भगवद्दत्तजी की कोठी सी ब्लाक नं० ९ माडल टाऊन में लाई गई और देश विभाजन काल में वहीं नष्ट हो गई।

७—**पगड़ी बांधे, वस्त्र पहने, कुरसी पर बैठे हुए**—यह चित्र सं० १९३२ (सन् १८७५) में दूसरी वार बम्बई गमन के अवसर पर बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने तैयार किया था। इसका उल्लेख श्री देवेन्द्र बाबू सं० जी० च० पृष्ठ ३३६ में मिलता है। हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य के प्रबन्धकर्ता थे (रकम उड़ा लेने के कारण स्वामी जी ने उन्हें हटा दिया तो वे विद्रोही बन गये)। इस चित्र में ऋषि दयानन्द एक ओर मुंह किये पगड़ी आदि वस्त्र धारण किये हुए कुरसी पर बैठे हैं। इससे दूसरा चित्र बनाकर श्री देवेन्द्र बाबू ने अपने 'दयानन्द चरित' (संक्षिप्त जी० च०) में जो जालन्धर से सन् १९१२ में छपा था, लगाया था। उसी बम्बई वाले चित्र से अमरीका की 'वाटर बरी कम्पनी' ने 'वस्ट' (छाती तक का) चित्र टीन पर छपवाया था। उस 'वस्ट' चित्र को डा० गोकुलचन्द्र नारङ्ग (लाहौर) ने सन् १९१० के लगभग अपनी छोटी अंग्रेजी पुस्तक 'लूथर आफ इण्डिया' [स्वामी जी का जी० च०]में लगाया था। इसी चित्र का 'वस्ट' चित्र बहुत सुन्दर छोटा गोल आकार का लन्दन का बना हुआ है। इसे मैंने बरेली के साहुकारे मोहल्ले वाले कुंवर जी गङ्गाचरण जी के पास २८ नवम्बर १९२६ को देखा था। उनका कहना था कि इसे हमारे पिता कुंवर हरचरण जी ने लन्दन से मंगवाया था। इनके यहां ऋषिदयानन्द के कुछ पत्र भी थे, परन्तु अभी तक मिल नहीं सके। इसी चित्र की प्रतिकृति लाला लाजपतराय जी ने अपनी 'दि आर्य समाज' नामक अंग्रेजी पुस्तक [सन् १९१४] में लगाई थी। यह पुस्तक भी लन्दन में छपी थी। इसकी एक प्रति मेरे पास सुरक्षित है।

८—**पगड़ी बांधे, बैठे हुए, सामने पुस्तक खुली हुई**—इस चित्र में ऋषि दयानन्द फुन्दे वाली पगड़ी बांधे हुए बैठे हैं, सामने पुस्तक खुली हुई है और चांदी की मूठ वाला दण्डा पास में रक्खा है। अतिसार रोग के कारण शरीर कुछ दुर्बल हो रहा है। यह सं०

१९३६ (=सन् १८७९) में लिया गया था। इस का छोटा सा चित्र महात्मा हंसराज जी ने रा० ब० संसारचन्द्र जी से प्राप्त कर के श्री पं० भवगवद्दत्त जी को दिया था, उसी से उन्होंने बड़ा चित्र बनवाकर दयानन्द कालेज के लालचन्द्र पुस्तकालय में लगवाया था। इसी का बड़ा चित्र पूने का छपा हुआ पत्रों का अन्वेषण करते हुए ७ जनवरी १९२७ को बा० रामचन्द्रजी (पुत्र—बा० सूर्यप्रसाद जी) मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद वालों के यहां से मिला था। यह चित्र श्री पं० भगवद्दत्तजी के संग्रह के साथ लाहौर में नष्ट हो गया।

९—**समाधि-मुद्रा में**—यह चित्र सं० १९३६ (=१८७९) में मेरठ में खींचा गया था। इसकी प्रतिलिपि महात्मा मुंशीराम जी (पश्चात्—श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी) कृत कल्याणमार्ग का पथिक पुस्तक में लगी है। इसकी एक प्रति मुझे पत्रों का अनुसन्धान करते हुए ८ मार्च १९२७ को ऋषिभक्त रा० ब० बाबू छेदीलाल (पूर्व—ठेकेदार कमसरयट मेरठ) कानपुर वालों के भतीजे बा० जगतनारायण जी ने दूसरे चित्रों (रमा बाई, करनल आल्काट, मेडम ब्लेवेस्तकी) के साथ पुरानी एलबम में से निकाल कर दिया था।

इसकी एक छोटीसी प्रति ठाकुर नन्दकिशोरसिंह मैंबर कौंसिल राज्य जयपुर (जिनके पास ऋषि दयानन्द के अनेक पत्र सुरक्षित थे) से वहां जाने पर ता० ६ दिसम्बर १९३३ को प्राप्त हुई। इसी चित्र पर से सब बड़े छोटे समाधि वाले चित्र आगे बने।

सम्भवत: इसी चित्र का उल्लेख ऋषि दयानन्द ने १७ जनवरी १८७९ को श्यामजीकृष्ण वर्मा को मेरठ से लिखे पत्रसंख्या ६४२ में किया है। देखो 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' पूर्णसंख्या २८२ की अन्तिम पंक्ति (पृष्ठ ३१९)।

१०—**छतरी लगाये हुए**—मैडम ब्लेवेस्तकी ने अपनी 'केव्ज एण्ड जंगल्स्' नामक अंग्रेजी पुस्तक में इस चित्र की प्रतिलिपि दी है, ऐसा मुझे श्री स्वा० भूमानन्दजी एम० ए० ने लाहौर में बताया था। यह चित्र सम्भवत: मेरठ में मई सन् १८७९ में उस समय लिया गया होगा, जब कर्नल आल्काट और मैडम ब्लेवेस्तकी उन से मिलने अमेरिका से आये थे।

११ – **वस्त्र पहने कुर्सी पर बैठे हुए, हाथ में चांदी की मूठ का दण्डा**— इस चित्र में ऋषि दयानन्द सारे वस्त्र पहने हुए हैं, हाथ में चांदी की मूठ का दण्ड लिये हुए हैं। यह देहरादून में कार्तिक या मार्गशीर्ष सं० १९३७ (=नवम्बर १८८०) में लिया गया था ऐसा कहा जाता है। श्री देवेन्द्र बाबू सं० जी० च० पृष्ठ ६२४ से इतना तो स्पष्ट है कि सं० १९३७ (=सन् १८८०) में देहरादून में ऋषि दयानन्द का एक चित्र लिया गया था। यह चित्र 'आर्य धर्मेन्द्र जीवन' में भी लगा हुआ है। इसका 'बस्ट' (छाती तक का आधा) चित्र सादे कागज पर छपा हुआ मुझे १८ नवम्बर १९२६ को शाहजहांपुर में मुंशी बख्तावर सिंह आदि के यहां पत्रों का अन्वेषण करते हुये श्री बांकेलाल जी अख्तर से रसीद लिखकर मिला था। यह माडलटौन लाहौर में श्री पं० भगवद्दत्त जी की कोठी में अन्य बहुत सी बहुमूल्य सामग्री के साथ नष्ट हो गया।

१२ – **कुरसी पर बैठे हुए, पास में गोलमेज पर वेद की पुस्तकें** —यह चित्र संख्या १२ के चित्र से बहुत साम्य रखता है। कुरसी और पास वाली मेज इसमें भिन्न है। इसमें मेज के ऊपर जो चारों वेदों की पुस्तकें दिखाई गई हैं वह अंश कल्पित है।[1] यह चित्र 'रामलाल कपूर ट्रस्ट अमृतसर' द्वारा प्रकाशित यजुर्वेद भाष्य विवरण तथा वेदवाणी सं० २००९ के वेदाङ्क में भी लगा है।

१३ – **कुरसी पर बैठे हुए मेज पर पुस्तकें तथा गुलदस्ता**—यह चित्र शाहपुरा में सं० १९४० के पूर्वार्ध में लिया था। श्री स्व० महाराजा नाहरसिंह जी ने मथुरा शताब्दी के अवसर पर आर्य

---

१. मेरे मित्र राजस्थान-इतिहास के विशेषज्ञ श्री ठा० जगदीशसिंह जी गहलोत ने इस चित्र को देख कर कहा था कि इस चित्र में मेज पर पड़ी हुई वेदों की पुस्तक कल्पित हैं, परन्तु जिस कुरसी पर बैठे हुए ऋषि दयानन्द का यह चित्र लिया है, वह उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह की है। इसी कुरसी पर बैठे हुए महाराणा सज्जनसिंह का एक चित्र उदयपुर में वर्तमान है। इस कथन के अनुसार यह चित्र उदयपुर में सं० १९३९ के उत्तरार्ध में लिया गया होगा। वेदों की पुस्तकों वाला अंश तो निश्चित ही कल्पित है; क्योंकि इस चित्र में चारों वेदों की मोटाई बराबर दिखाई है जो कि ठीक नहीं है। सम्पा०

चित्रावली में प्रकाशनार्थ महाशय गोविन्दराम हासानन्द को दिया था। यह चित्र 'वेदप्रकाश' देहली के सं० २०१० के 'दयानन्दग्रन्थ संग्रह' नामक विशेषाङ्क में छपा है।

१४– **कुरसी पर बैठे हुए ब्र० रामानन्द के साथ**–इस चित्र में ऋषि दयानन्द कुरसी पर बैठे हैं, पैर में खड़ाऊं पहने हुए हैं, पास में एक ओर ब्र० रामानन्द खड़ा है, तथा दूसरी ओर मेज पर तीन पुस्तकें रक्खी हैं। यह चित्र सम्भवत: शाहपुरे में सं० १९४० के प्रारम्भ में लिया गया होगा। इसी चित्र को रामानन्द के पास भेजने का उल्लेख ऋषि दयानन्द के वैशाख शु० ४ सं० १९४० [१० मई १८८३] के रामानन्द के नाम लिखे पत्र में मिलता है। देखो यही ग्रन्थ पूर्ण संख्या ८०९, ८१० तथा पृष्ठ ८३९, ८४०। श्री देवेन्द्र बाबू सं० जी० च० पृष्ठ ६१३ पर इस पत्र की प्रतिकृति (फोटो) छपी है।

मैंने इस त्रिच का वर्णन 'भारत सुदशा प्रवर्तक' पत्र के नवम्बर १८९० के अंक के अन्तिम पृष्ठ पर पढ़ तथा सन् १८८४ के 'सत्यार्थप्रकाश' जो दयानन्द कालेज लाहौर अन्तर्गत लालचन्द पुस्तकालय में सुरक्षित था, में छोटा सा २२ अक्टूबर १९२६ में देखा था। उसी पर से इसका अन्वेषण आरम्भ किया। तदनन्तर फर्रुखाबाद समाज मन्दिर में उससे कुछ बड़ा अतिजीर्ण लगा देखा और ३ फरवरी १९२७ को रा० ब० राजा दुर्गादास जी की पुरानी चित्रों की एलबम से उनके पुत्र श्री चन्द्रप्रकाश जी रईस से असली छोटा सा चित्र प्राप्त किया और उसी चित्र के वर्णन वाला ऋषि दयानन्द का (पूर्वनिर्दिष्ट) ब्र० रामानन्द के नाम शाहपुरा से लिखा हुआ पत्र आर्यसमाज के संग्रह में से ढूंढ निकाला। इसी की लाहौर में प्लेट तैयार कराकर असली चित्र परोपकारिणी सभा अजमेर को सन् १९३३ में भेजा था, वह वापस प्राप्त हो गया। इसका एक रंगीन बड़ा ब्लाक म० राजपाल लाहौर को उन के पुस्तकालय के लिये भी बनवा कर दिया था। यह कैलेण्डर में भी छपा था। इसी का एक बड़ा चित्र म० चिरञ्जीलाल प्रेम को बनवाकर दिया था। इस चित्र की प्रतिलिपि आर्य साहित्य मण्डल अजमेर से प्रकाशित ऋषि के जीवन चरित पृष्ठ ३७१ तथा इस ग्रन्थ में भी लगाई है। इस चित्र से बनवाई हुई एक प्रतिलिपि

मेरठ शहर के सप्तम सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन (सन् १९५१) की दयानन्द प्रदर्शनी में रक्खे हुए अपने संग्रह में से ला० हरशरण जी रईस गाजियाबाद को ता० ३० दिसम्बर १९५१ को दी थी। इसी चित्र से ब्लाक बनवाकर आर्य सार्वदेशिक सभा ने स्वप्रकाशित महर्षि द० स० के जीवनचरित तथा सत्यार्थप्रकाश के सं० २०१० के संस्करण में छपवाया था।

इस प्रकार ऋषि दयानन्द के मूल पत्रों का अन्वेषण करते हुए सन् १९२६ से आज तक जिन १४ वास्तविक चित्रों का उल्लेख या प्रतिलिपि मिली उनका वर्णन मैंने ऊपर संक्षेप से किया है। इनके अतिरिक्त भी ऋषि दयानन्द के अनेक स्थानों में चित्र लिखे गये होंगे, जो इस समय अप्राप्य तथा अज्ञात हैं। इनका अनुसंधान परमावश्यक है। ऋषि दयानन्द की रुग्णावस्था के समय का जोधपुर में किसी ने हाथ से रंगीन चित्र बनाया था, इसकी प्रतिलिपि श्री पं० राजेन्द्र जी (देहली) के पास है।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य—श्रीमद्दयानन्दसरस्वती-स्वामिनां प्रप्रशिष्येण श्रीयोगिप्रवर—लक्ष्मणानन्दस्वामिनां प्रशिष्येण इतिहासवित्पण्डित-भगवद्दत्तमहोदयानां शिष्येण श्री शंकरलालात्मजेन मुजफ्फरनगरमण्डलान्तर्वर्तिखतौलीग्राम-वासिना मामराजार्येण संकलितं षष्ठं परिशिष्टं समाप्तम्।

—:०:—

सप्तम परिशिष्ट

ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन में स्मृत कतिपय विशिष्ट व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय

[लेखक—राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री० ठा० जगदीशसिंह जी गहलोत, अध्यक्ष पुरातत्त्व विभाग, जयपुर, राजस्थान]

ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन में स्मृत व्यक्ति[1]

---

१. नीचे लिखे व्यक्तियों का ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन में कहां निर्देश है, इस के ज्ञान के लिये अष्टम परिशिष्ट में नाम-सूची देखें। सम्पा०

१—राजा जयकृष्णदास
२—महात्मा कालूराम योगी
३—कर्नल आल्काट और मेडम-ब्लेवेस्तकी
४—पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा एम.ए. बैरिस्टर
५—मनीषी समर्थदान बारहट
६—राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द
७—पं० भीमसेन शर्मा (इटावा)
८—राय बहादुर मूलराज एम० ए०
९—कविराज श्यामलदास महामहोपाध्याय
१०—राजाधिराज नाहरसिंह, (शाहपुरा)
११—ठा० नन्दकिशोरसिंह मेंबर स्टेट कौंसिल जयपुर
१२—राव बहादुरसिंह (मसूदा-अजमेर)
१३—महाराणा सज्जनसिंह (उदयपुर)
१४—मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या
१५—बारहट किशनसिंह
१६—फतेहकरण उज्ज्वल
१७—रावराजा तेजसिंह (जोधपुर)
१८—महाराजा सर प्रतापसिंह (जोधपुर)
१९—मुंशी दामोदरदास
२०—महाराजा जसवन्तसिंह (जोधपुर)
२१—नन्हीं भगतन (जोधपुर)
२२—मेहता विजयसिंह
२३—गणेशपुरी
२४—कविवर अमरदान
२५—झालवाला नरेश
२६—लोंग साहब

१—राजा जयकृष्णदास सी. एस. आई.

ये मुरादाबाद के माथुर चतुर्वेदी (चोबे) ब्राह्मण थे। आपने बिजनौर और मुरादाबाद में डिप्टी कलेक्टर के पद पर काफी समय तक काम किया। ये ऋषि दयानन्द के परमभक्त थे। इन्होंने ही ऋषि के सिद्धान्तों को पुस्तक रूप 'सत्यार्थप्रकाश' नाम से तैयार करा कर निज व्यय से सन् १८७५ ई० में प्रथमवार काशी

में छपवाया था। ये बड़े उदार व दानी सज्जन थे। आगरा कालेज और अलीगढ़ के महामेडन कालेज को टूटने से इन्होंने बचाया था। इनके पौत्र आनरेब्ल राजा सर जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी के० सी० एस० आई०, आई० सी० एस० हैं, जो पहले वाईसराय की कौंसिल के सदस्य थे॥

२—महात्मा कालूराम योगी

ये जयपुर राज्य के ठिकाने सीकर के रामगढ़ स्थान के गौड़ ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १८९३ वि० ज्येष्ठ बदी ६ शुक्रवार (६ मई १९३६ ई०) को और देहांत सं० १९५७ ज्येष्ठ सु० १० (ता० ७-६-१९०० ई०) को हुआ। ऋषि दयानन्द से इनका पत्र व्यवहार वि० सं० १९३३ से था। इनके उपदेश से ही शेखावाटी में वैदिक धर्म का प्रचार हुआ तथा रामगढ़ में वार्षिक धर्म मेला इनके स्थान पर भरने लगा, जो आज तक चालू है। ऋषि के समय में ही रामगढ़ में आर्यसमाज स्थापित हो गया। ऐसे ही महात्मा कालूरामजी के उपदेश से ही वि० सं० १९३८ चैत्र सुदी २ गुरुवार (३१ मार्च १८८१ ई०) को जयपुर (राजपूताना) में 'वेदधर्म सभा' (आर्यसमाज) स्थापित हुई॥

३—कर्नल आल्काट तथा मैडम ब्लेवेस्तकी

इनका जन्म अमेरिका के आंरेज नगर में ई० सन् १८३२ में हुआ। आप वहां कृषि विभाग के अफसर थे। फिर वकालत शुरु की। उसी समय रूसी महिला काउन्टेस मेडम ब्लेवेटस्की से उनकी भेंट हो गई। दोनों ने मिलकर करामात की चर्चा फैलाई कि वे स्वर्ग से चीजें मंगा देते हैं और भूत-प्रेत उनके हाथ में है। वहां न्यूयार्क शहर में इन्होंने ८ सितम्बर १८७५ ई० को अपने नये मत 'थियोसौफिकल सोसाईटी' की नींव डाली और आर्य समाज से अपना सम्बन्ध जोड़ने व ऋषि दयानन्द के दर्शनार्थ १६-२-१८७९ ई० को भारत में आये। इनकी संस्था को आर्यसमाज की शाखा घोषित करने के कुछ दिन बाद जब दयानन्द को ज्ञात हुआ कि ये ईश्वर को नहीं मानते हैं और झाड़ जपटे की बातें भी

इनमें हैं, तब इनसे कोई सम्बन्ध न रक्खा। तब सन् १८८२ ई० में इस युगल जोड़ी ने मदरास के अडियार स्थान में थियोसौफिकल सोसाइटी की इमारत बनवाई। १८६१ ई० में मेडम ब्लेवेटस्की मर गई। कर्नल अल्काट भी १७ फरवरी १६०७ ई० को इस संसार से चल बसे। कर्नल के शव का अग्नि संस्कार हुआ। भस्मी आधी तो समुद्र में डाली व आधी काशी में गंगा में प्रवाहित हुई। यह बात हिन्दू धर्मानुकूल हुई। इन्होंने ३१ वर्ष में अपनी सभा की लगभग १ हजार शाखायें खोलीं।

४—पंडित श्यामजी कृष्ण वर्मा

इनका जन्म सौराष्ट्र (काठियावाड़) के कच्छ भुज राज्य के मांडवी नामक गांव में वि० सं० १६१४ कार्तिक बदी २ सोमवार (५ अक्टूबर १८५७) को गुजरात की भंसाली जाति में हुआ था। यह भंसाली जाति अधिकांश में खेतीबाड़ी तथा मेहनत मजदूरी करती है और अपने को सूर्यवंशी क्षत्रिय वंश से बताती है। सन् १८७४ ई० के अक्टूबर में श्याम जी का बम्बई की भाटिया धर्मशाला में ऋषि दयानन्द सरस्वती से प्रथमवार साक्षात्कार हुआ। ऋषि ऐसे कुशाग्रबुद्धि मेधावी बालक को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उसकी संस्कृत शिक्षा का विशेष प्रबन्ध कर दिया और सन् १८७५ ई० में ऋषि की कृपा से श्याम जी जैसे निर्धन अनाथ व्यक्ति का विवाह सेठ छबीलदास (लल्लुभाई) द्वारकादास भंसाली की पुत्री कुमारी भानुमती से हो गया। श्यामजी ऋषि के साथ काफी समय तक रहे। जिससे इनके राजनीतिक विचारों को नई प्रेरणा मिली और इन्होंने देश की आवाज को विदेशों तक पहुंचाने का दृढ़ निश्चय कर मार्च सन् १८७६ के अंतिम सप्ताह में ये विलायत को रवाना हो गये। बाद में ऋषि की कृपा से कच्छभुज राज्य से श्यामजी को छात्रवृत्ति भी मिल गई। श्याम जी जैसे देशभक्त को लन्दन भेजना और भारतीय स्वाधीनता के आन्दोलन का नया रूप छेड़ना उनकी अपूर्व सूझ का परिचायक है। वहां से आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में संस्कृत प्रोफेसर हो गये और साथ ही अंग्रेजी की उच्च शिक्षा पाते रहे। जिससे ये आक्सफोर्ड के प्रथम भारतीय पोस्ट ग्रेजुवेट (एम० ए०) बने। सन् १८८५ ई० में ये बैरिस्टर होकर भारत लौटे। फिर रतलाम (मालवा), उदयपुर

(मेवाड़) और जूनागढ़ (काठिआवाड़) राज्यों में कई वर्ष तक प्रधानमंत्री (दीवान) रहे। सन् १८९७ में प्लेग कमिश्नर श्री रैण्ड की हत्या बालकृष्ण द्वारा पूना में हो गई। इस सम्बन्ध में श्याम जी को अपने पकड़े जाने का समाचार भी सम्भवत: मिला। पुलिस को इन पर संदेह था। इससे वे मय धर्मपत्नी के पुन: लण्डन को चले गये और वहां भारतीय स्वतंत्रता का कार्य शुरू कर दिया। ८ दिसम्बर १९०४ ई० को श्याम जी ने प्रसिद्ध भारत हितैषी फिलास्फर हर्बर्ट स्पेनसर व ऋषि दयानन्द की स्मृति में दो-दो हजार की ६ छात्रवृत्तियें अपने निजी धन से तथा ऐसे ही तीन छात्रवृत्तियें अपने मित्र पेरिस प्रवासी देशभक्त श्री सरदार सिंह राणा (धर्मपुर राज्य) की ओर से 'राणा प्रताप' छत्रपति शिवाजी और एक किसी मुसलमान नरेश[1] के नाम से योग्य भारतीयों को विदेश भ्रमण के लिये देने की घोषणा की। इन छात्रवृत्तियों के सहारे श्याम जी ने लन्दन में कुछ रंगरूट जमा कर लिये। उनमें विनायक सावरकर, लाला हंसराज, भाई परमानन्द, सेनापति बापट मुख्य थे। सन् १९०५ की १८ फरवरी को श्याम जी ने लण्डन में **'इण्डिया होमरूल सोसायटी'** (भारत स्वराज्य सभा) स्थापित की और सभा की मुख्य मासिक पत्रिका **'इण्डियन सोशियालीजिस्ट'** का जनवरी १९०५ ई० से प्रकाशन शुरू किया। और उसका मूल्य एक आना मासिक रखा। यही नहीं भारती विद्यार्थियों के रहने के लिये १ लाख रुपया से **'इण्डिया हाउस'** नामक भवन स्थापित किया। ये इण्डिया हाउस सन् १९०६-७ ई० में विद्रोहियों का नामी केन्द्र बन गया। सन् १९०८ की १० मई को प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता युद्ध (सन् १८५७ ई०) को पूरे ५० वर्ष हो रहे थे। **गर्मागर्म खबर थी कि भारत में पंजाब केसरी लाला लाजपतराय १ लाख आर्यसमाजियों की सेना संगठित कर गदर (विद्रोह) की वर्षी मनायेंगे।** इन सब कारणों से लाला जी

१. इनका नाम 'बहादुरशाह' था। यह बहादुरशाह के नाम की छात्रवृत्ति 'सिकन्दर हयातखां' को दी गई थी। हमें यह सूचना 'हिन्दी समाचार पत्र संग्रहालय कसारहट्टा रोड हैदराबाद' के मन्त्री श्री वेङ्कटलाल ओझा के १९-५-७५ के पत्र से मिली। सम्पा०

को तथा सरदार अजीतसिंह (अमर शहीद भगतसिंह के चाचा) को भारत सरकार ने माण्डले दुर्ग में बन्द कर दिया। इससे इंग्लैण्ड के नेता बौखला गये और सावरकर ने लण्डन के इण्डिया हाउस (भारतभवन) में बड़ी धूमधाम से सत्तावन के गदर का पचास वर्षीय उत्सव मनाया। इन क्रान्तिकारियों के नेता श्री श्याम जी ने वहां बड़े-बड़े कष्ट उठाये और आयु भर निर्वासित ही रहे। इनकी मृत्यु स्विटजरलैण्ड के जिनेवा नगर में ३१ मार्च १९३० को हुई।

याद रहे कि स्वराज्य शब्द का उच्चारण सर्व प्रथम कांग्रेस के रंगमंच से दादाभाई नौरोजी ने दिसम्बर १९०६ में कलकत्ता में किया था और लोकमान्य तिलक ने २२ जुलाई १९०८ को 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' की घोषणा की थी। **परन्तु ऋषि दयानन्द के शिष्य श्याम जी ने 'स्वराज्य' का बिगुल इनसे पहले ही बजा दिया था।**

५—मनीषी समर्थदान

ये सिढायच गोत्र के चारण थे और जयपुर राज्य के ठिकाने (जागीर) सीकर के नेठवा गांव में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम मंगलदान था। ये उर्दू, फारसी, हिन्दी, संस्कृत और कुछ अंग्रेजी भी जानते थे। लगभग वि० सं० १९३५ में ये ऋषि दयानन्द सरस्वती के संसर्ग में आये। ऋषि के साथ ये अनेक वैदिक यंत्रालय (प्रेस) के प्रबन्धकर्त्ता होकर काशी, प्रयाग, बम्बई और अजमेर में रहे। ऋषि ने इन्हें धार्मिक, निष्कपटी, सच्चा, उद्योगी, परिश्रमी, चतुर, सभ्य, सुशील और चाल चलन का बहुत अच्छा और श्रेष्ठ लिखा है। ऋषि की मृत्यु के पश्चात् ये अजमेर में बस गये और दौलतबाग के पास एक सुन्दर स्थान में भवन बनाकर इन्होंने 'राजस्थान यन्त्रालय' (प्रेस) और सं० १९४५ वि० के फागुण में 'राजस्थान समाचार' नामक साप्ताहिक पत्र सफेद चिकने चौपेज रायल साइज के १२ पृष्ठों में हिन्दी में शुरू किया जो हर गुरुवार को छपता था और उसका वार्षिक मूल्य रक्खा था केवल ३॥) रु०। राजपूताना प्रान्त में उच्च भावों का यह प्रथम ही पत्र था। वह कई बातों में अपने ढङ्ग का एक ही था। इससे धीरे-धीरे इनका मान और प्रभाव खूब बढ़ा। जोधपुर

के प्रधानमन्त्री लेफ्टिनेन्ट जेनरल महाराजा सर प्रतापसिंह, उदयपुर व बीकानेर के नरेश तथा अनेक जागीरदार इनका आदर करते और इनकी सम्मतियों पर ध्यान देते थे। चीफ कमिश्नर व ए० जी० जी० आदि उच्च अधिकारी मिलते और इनसे परामर्श लेते। सं० १९५९ वि० में महाराजा काश्मीर ने इन्हें अपना पोलपाल (प्रतोलीपात्र =प्रधान दान-अधिकारी चारण) बनाया और कविराज उपाधि व पैर में पहनने को सोने का कड़ा (देशी राज्य में ताजीम का चिह्न) दिया। बाद में ये पत्र अर्ध साप्ताहिक हो गया। ८ फरवरी १९०४ को जब रूस जापान युद्ध छिड़ा तब यह 'दैनिक' हो गया। सच कहा जाय तो हिन्दी का पहला व्यवसाय यही दैनिक था। १९ मास के युद्ध के बाद घाटे के कारण यह साप्ताहिक होकर सिस्का और सन् १९०७ में सदा के लिये बुझ गया।

इन्होंने कई पुस्तकें स्वयं लिखीं और बहुत सी प्रकाशित कीं। उन्हें लाख रुपये के व्यय से कई भागों में भारतवर्ष का विस्तृत इतिहास निकालने का बड़ा उत्साह था। संवत् १९४० के बाद में इन्होंने मुंशी के स्थान में अपनी उपाधि 'मनीषी' कर ली थी। इन के अन्तिम दिन बड़े निराशात्मक थे। माता और पत्नी मर चुकी थी। साथ ही तन्दुरुस्ती भी गिर गई। घर में केवल ८ वर्ष की एक अबोध कन्या थी। मुकदमे और ऋण के बादल शिर पर मंडरा रहे थे। पचास वर्ष की आयु में तीस वर्ष के कार्यभार से थके दिमाग को संस्कृत के द्वारा शास्त्रीय वैद्यक के पढ़ने में लगाना इन्हीं की प्रतिभा का काम था। इन्होंने चरक, सुश्रुत पढ़ा और वैद्यक से जीवन निर्वाह का उपाय निकाला। चतुर वैद्य बन गये पर दशा न सुधरी। अन्त में खटिया पर पड़ गये और १७ जून १९१४ ई० को अजमेर में कोई ५६ वर्ष की आयु में इनका जीवन समाप्त हुआ। राजनीति, समाजनीति के ये बड़े ज्ञाता और बड़े अच्छे सलाहकार थे।

६—राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द

इनके पूर्वज दिल्ली में जौहरी थे। नादिरशाह के समय वे मुर्शिदावाद (बङ्गाल) में जा बसे। परन्तु बाद में काशी में आ गये। राजा साहब का जन्म मारवाड़ी ओसवाल वैश्य जाति के

गोखरू गोत्र में वि० सं० १८८० की माघ सुदी २ को हुआ। शिक्षा समाप्त कर चुकने पर ये मामा की सहायता से भरतपुर (राजपूताना) राज्य में नौकर हो गये। वहां जाते ही आपने सर्वप्रथम स्टेट के दीवान जानी बैजनाथ को, जो कि महाराजा बलवन्तसिंह को अपने हाथ की कठपुतली बनाकर राज्य पर अपना पूर्ण प्रभुत्व जमाए हुए था, अंग्रेज सरकार की राय से ८० कायस्थों सहित जेल भिजवाया और राजा को स्वतन्त्र किया। इससे महाराज ने इन्हें अपना राज-वकील नियुक्त किया। सं० १६०२ वि० में इन्होंने काशी से 'बनारस अखबार' नाम से हिन्दी साप्ताहिक भी निकलवाया। इसी वर्ष इन्होंने अंग्रेज सरकार की फौजी सेवा स्वीकार की। बाद में काशी में ही कमिश्नर के मीरमुंशी हो गये। परन्तु विचारसिक होने से सरकार ने इन्हें स्कूलों का इन्स्पेक्टर नियत कर दिया। इन्होंने कोई ३५ पुस्तकें हिन्दी व अंग्रेजी में लिखीं। ये भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के विद्यागुरु थे। सन् १८७२ में उन्हें व्यक्तिगत रूप से सी० एस० आई० (सितारे हिन्द) की और सन् १८८७ ई० में वंशपरम्परा के लिये 'राजा' की उपाधि मिली। इनका देहान्त २३ मई सन् १८९५ ई० को काशी में हुआ।

७—पण्डित भीमसेन शर्मा

इनका जन्म सं० १६११ कार्तिक सुदी ५ को हुआ। इनकी शिक्षा १७ वर्ष की आयु में सं० १६२६ वि० से ऋषि दयानन्द की स्थापित पाठशाला फर्रुखाबाद में हुई। बाद में ऋषि ने इन्हें २५) रु० मासिक पर अपने लेखन कार्य में लगा दिया। ऋषि की मृत्यु पश्चात् सं० १६४२ वि० में इन्होंने प्रयाग से 'आर्य्य सिद्धान्त' नामक मासिक पत्र निकाला और वि० सं० १६५२ में अपना प्रेस अपने घर इटावा ले आये। इन्होंने आर्यसमाज की वि० सं० १६५५ तक बड़ी सेवा की। परन्तु बाद में चुरू (बीकानेर) के सेठ माधवप्रसाद खेमका (कलकत्ता) ने पांच हजार रुपये के संकल्प से इनसे बृहद् यज्ञ कराना चाहा। यहां यज्ञ विषयक मतभेद होकर आर्यसमाज ने इनका बहिष्कार कर दिया तब ये सनातन-धर्म-सभा में जुट गये। सं० १६०२ ई० (वि० सं० १६५६) से ये 'ब्राह्मण सर्वस्व' नाम का मासिक पत्र प्रकाशित करने लगे। जुलाई १६१२ ई० से सन् १६१७ ई० तक इन्होंने

कलकत्ता विश्वविद्यालय में २५०) रु० मासिक पर 'वेद व्याख्याता' पद पर कार्य किया। सं० १९७४ चैत्र बदि १२ को ६४ वर्ष की आयु में इनका देहान्त हुआ।

८—रायबहादुर लाला मूलराज एम. ए.

इनका देहान्त १ जून १९४५ ई० की रात को लाहौर में ९२ वर्ष की आयु में हुआ। आर्यसमाज के संगठन और उनके प्रारम्भिक विकास में इनका योग बड़े महत्त्व का और अत्यधिक साहसपूर्ण था। ऋषि दयानन्द इनका जैसे-जैसे अधिक आदर करते गये, मूलराज की प्रतिष्ठा लाहौर के आर्यसमाज में वैसे-वैसे बढ़ती गई। ये पंजाब में एसिस्टेन्ट कमिश्नर आदि कई उच्च पदों पर रहे। ऋषि की मृत्यु के बाद ये लाहौर समाज के प्रधान हो गये। इस मानवृद्धि ने उनके अनेक विरोधी भी उत्पन्न कर दिये। उनके द्वेषियों ने उनके विरुद्ध जो अफवाहें उड़ाईं और जैसी-जैसी झूठी कहानियां गढ़ीं, उनका ज्यादा उल्लेख करना व्यर्थ है, लेकिन यह कहना काफी होगा कि उन पर 'पंजाब सरकार के हाथ का औजार' आदि होने तक का दोष लगाया गया था। 'बंगभग' (सन् १९०४ ई०) की घटना के १०-१५ साल पूर्व ही जो कोई उनसे मिलने जाता था, उसे वे पंजाब के ही बुने स्वदेशी वस्त्र पहनने का उपदेश देते थे।

९—कविराज श्यामलदास

इनका जन्म वि० सं० १८९३ द्वि० आषाढ़ बदि ७ को चारण जाति के दधवाडिया गोत्र में हुआ। ये संस्कृत, हिन्दी व राजस्थानी भाषा के बड़े विद्वान् थे। इन्हें उदयपुर महाराणा साहब से सं० १९३५ पौष सुदि २ को 'कविराज' तथा अंग्रेज सरकार से 'महामहोपाध्याय' की पदवी १ जनवरी १८८८ (वि० सं० १९४५) को मिली। इन्होंने 'वीर विनोद' नाम से उदयपुर राज्य का बृहद् इतिहास कोई ३ हजार पृष्ठों में सं० १९४३ वि० में सम्पादन किया। इनका देहान्त वि० सं० १९५१ ज्येष्ठ बदि ३० को उदयपुर (मेवाड़) में हुआ।

१०—राजाधिराज सर नाहरसिंह के० सी० आई० ई०

इनका जन्म सं० १९१२ वि० कार्तिक बदि १३ को ठिकाना धनोप के ठाकुर धीरतसिंह के यहां हुआ। शाहपुरा राज्य की गद्दी

पर गोद आकर ये सं० १६२६ ज्येष्ठ सुदि १३ शनिवार को बैठे। इन्होंने ३ मास तक ऋषि दयानन्द से राजनीति व धर्म का उपदेश लिया था। इनका देहान्त ७८ वर्ष की आयु में सं० १६८६ आषाढ़ वदि ६ शुक्रवार के सुबह हुआ। इन्होंने ६२ वर्ष तक योग्यता से राज किया। इन्हें ६ तोप की सलामी वंशपरम्परागत और फांसी व आजन्म कैद करने के अधिकार थे।

११—ठाकुर नन्दकिशोरसिंह

आपका शुभजन्म ३१ अगस्त सन् १६५६ तदनुसार वि० सं० १६१३ भादों सुदी १ रविवार को कासगंज (जिला एटा) यू० पी० के मोहन मौहल्ला के एक प्रतिष्ठित गौड़ राजपूत कुल में हुआ था। आपके पिता को जयपुर दरबार ने भारत गवर्नमेण्ट से मांग लिया था। इससे आपकी शिक्षा महाराजा कालेज जयपुर में हुई और सन् १८७६ ई० में इन्हें लार्ड नार्थब्रुक मेडल भी मिला। सन् १८८१ ई० में ये महाराजा पबलिक लाइब्रेरी जयपुर (राजस्थान) के लाइब्रेरियन (पुस्तकाध्यक्ष) नियुक्त हुए और इन्हीं के उद्योग से ३१ मार्च १८८१ ई० (चैत्र सुदि २ सं० १६३८ वि०) को जयपुर में आर्यसमाज (वैदिक धर्म सभा) की स्थापना हुई। सन् १८८६ ई० में ये जयपुर रेजिडेन्सी में राज-वकील, सन् १८८६ में स्टेटकोंसिल के सेक्रेटरी और सन् १६०५ ई० में स्टेट कोंसिल के न्यायमन्त्री (जुडिशियल मेम्बर) नियुक्त हुए। इस प्रकार सन् १६२२ ई० तक वे कोंसिल के मेम्बर रहे। पश्चात् पेंशन ले ली। इनका देहान्त २५ नवम्बर १६३४ ई० (मगसर वदि ४ सं० १६६१ वि०) रविवार को ७८ वर्ष की आयु में हो गया।

१२—राव बहादुरसिंह, मसूदा

ये अजमेर जिला के ठिकाने मसूदा के २६ गांवों के इस्तमरार-दार थे। इनके पूर्वज ठाकुर हनवन्तसिंह राठोड़ मेड़तिया को यह जागीर सम्राट् अकबर से वीरता के सम्मान में मिली थी। ये आनरेरी मेजिस्ट्रेट व मुंसिफ थे और इन्हें सरकार की ओर से "राव" (१८७७ ई०) तथा सी० आई० ई० (१८६३ ई०) की उपाधियां मिली थीं। इनका देहान्त १० जुलाई १६०३ ई० को हुआ।

१३—महाराणा सज्जनसिंह जी० सी० एस० आई०

इनका जन्म वि० सं० १९१६ आषाढ़ सुदि ९ को हुआ और उदयपुर मेवाड़ के राजसिंहासन पर सं० १९३१ आसोज बदि १३ को बैठे। इनका देहांत २५ वर्ष की आयु में सं० १९४१ पौष सुदि ६ को हुआ। यह महाराणा बड़े ही सुधारक, विद्यारसिक, मिलनसार और शान्तिप्रिय थे।

१४—पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या

इनके पूर्वज गुजरात से आकर दिल्ली में बसे और फिर मथुरा में। इनका जन्म सं० १९०७ अगहन बदि ३ मंगलवार को और देहांत ४ दिसम्बर १९१२ ई० को ६२ वर्ष की आयु में मथुरा में हुआ। सन् १८८१ ई० में इन्होंने उदयपुर-मेवाड़ राज्य में नौकरी कर ली। यहां कुछ समय तक सदर अदालत की दीवानी का काम किया और बाद में इन्हें स्टेट कौंसिल के मेम्बर और सेक्रेटरी का पद मिला। सन १९०० ई० में ये प्रतापगढ़ (देवलिया) के दीवान हुए। वहां से पेन्शन लेकर मथुरा में जा रहे। इन्होंने १२ पुस्तकें रचीं। इन्हें इतिहास व पुरातत्त्व से बड़ा प्रेम था।

१५— बारहट किशनसिंह

ये शाहपुरा (राजस्थान) के बारहट सोदा अनाड़जी के पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १९०६ फाल्गुन सुदि १ को चारण जाति में हुआ। ये उदयपुर के प्रसिद्ध इतिहासकार महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदास के सगे भानजे थे। ये बड़े राजनीतिज्ञ थे और राजा महाराजाओं में इनका बड़ा प्रभाव था। इन किसनजी बारहट के सुपुत्र राजस्थान केसरी श्री केसरीसिंह बारहट व जोरावरसिंह तथा पौत्र प्रतापसिंह राजपूताने के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी थे, जिन्होंने देश के लिये नानाप्रकार की यातनाएं सहीं व बलि हुए।

१६—फतेहकर्ण उज्ज्वल उर्फ विजयकरण (जयकर्ण)

ये जोधपुर जिला के उजला गांव के चारण नाथूराम सींढायच (उज्ज्वल) के तृतीय पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १९०९ भादों बदि ८ को तथा निधन वि० सं० १९७८ वैशाख बदि २ को हुआ। यह बड़े कवि थे। ऋषि ने इनका नाम फतेहकर्ण के बजाय

"विजयकर्ण" ("जयकर्ण") रक्खा था। ये महाराणा सज्जनसिंह के समय उदयपुर चले गये थे।

१७—रावराजा तेजसिंह

ये जोधपुर नरेश हिजहाईनेस महाराजा तख्तसिंह राठोड़ के अनौरस पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १९१३ फाल्गुण बदि ७ (ता० १६-२-१८५७ ई०) को और देहांत १६ नवम्बर सन् १९२५ ई० को ६९ वर्ष की आयु में जोधपुर में हार्टफेल से हुआ। आप ऋषि दयानन्द व आर्यसमाज के बड़े भक्त थे। जोधपुर राज्य में इन्होंने कई उच्च पदों पर कार्य किया था। इस समय इनके पौत्र रावराजा मोहनसिंह बी० ए०, एल० एल० बी० न्यायाधीश हैं।

१८—लेफ्टिनेन्ट जेनरल हिजहाईनेस महाराजा सर प्रतापसिंह जी० सी० एस० आई०

ये जोधपुर नरेश हिजहाईनेस महाराजा तख्तसिंह बहादुर राठोड़ के तीसरे राजकुमार थे। इनका जन्म सं० १९०२ कार्तिक बदि ६ मंगलवार (२१-१०-१८४५ ई०) को हुआ। ये बड़े होनहार व वीर थे। सन् १८७६ से १९०२ तक ये जोधपुर के प्रधान-मंत्री (मुसाहिब आला) रहे। पश्चात् ईडर (गुजरात) राज्य के हिजहाईनेस महाराजा हो गये। आपने अपनी आत्मकथा में ऋषि दयानन्द व आर्यसमाज की बड़ी प्रशंसा की और यह भी कहा करते थे कि यदि मैं ऋषि के सत्संग के प्रभाव में सं० १९४० वि० में न आता तो मैं ईसाई हो जाता। आपके ही प्रयत्न से सं० १९४० की श्रावण बदि १० को जोधपुर नरेश की सरक्षकता में जोधपुर में आर्यसमाज की शाखा स्थापित हुई और १२ अगस्त १८८३ ई० को भारत के देशी राज्यों में सबसे प्रथम हिन्दी (देवनागरी लिपि) को राजभाषा का स्थान दिया गया। ऐसे ही सं० १९४१ वि० ज्येष्ठ बदि ४ को आपने आर्डर जारी कर दिया कि सर्व राज कर्मचारी खादी ही पहना करें। इस आज्ञा का पालन उस समय प्रजा ने भी किया। फरवरी १८८८ ई० में जोधपुर राज्य के खर्च से आर्यसमाज का प्रचार करने के लिये आपने स्वामी भास्करानन्द (संयुक्तप्रान्त) को विलायत व अमेरिका भेजा। २३ अप्रेल सन् १९०५ ई० को सरप्रताप ने ही लाहौर के डी० ए० वी० कालेज के विशाल भवन की नींव

रक्खी। ता० ४ सितम्बर १९२२ ई० को इनका देहांत ७७ वर्ष की आयु में जोधपुर में हो गया।

१९—मुंशी दामोदरदास जोधपुर

ये नारनोलीये सांघी गोत्र के अग्रवाल वैश्य थे। ये राज्य में कानून मास्टर थे। इनके बड़े भाई बाबू घनश्यामदास जोधपुर रेलवे के प्रसिद्ध ट्रेन-गार्ड थे। घनश्यामजी के पुत्र व पौत्र आज राजस्थान के प्रसिद्ध मोटर व्यापारी व धनीमानी सेठ हैं। दामोदर जी का देहांत लगभग ७० वर्ष की आयु में सन् १९३२ ई० के करीब हुआ था।

२०—महाराजा सर जसवंतसिंह जी० सी० एस० आई०

आप जोधपुर राज्य के हिजहाईनेस महाराजा थे और इनका जन्म वि० सं० १८९४ आश्विन सुदि ८ को हुआ तथा सं० १९२९ फाल्गुन सुदि ३ को जोधपुर के राजसिंहासन पर बैठे। ये बड़े उदारचरित, मिलनसार और बुद्धिमान् नरेश थे। इन्होंने ही ऋषि दयानन्द को निमन्त्रित कर अपने यहां वैदिक धर्म का प्रचार कराया। यही नहीं वि० सं० १९४४ में राज्य के खर्चे से स्वामी भास्करानन्द सरस्वती को वेदप्रचारार्थ लंदन व अमेरिका भेजा। सं० १९५२ कार्तिक बदि ८ को इस नरेश का देहांत हुआ।

२१—नन्ही भगतन

ऋषि दयानन्द के चरित्र सम्बन्धी अब तक की खोज करने वाले प्रत्येक चरित लेखक का यही विचार है कि इसी नन्ही भगतन (नन्हीजी) के षड्यंत्र से ऋषि का परलोकवास हुआ। यह जोधपुर नरेश हिजहाईनेस महाराजा जसवंतसिंह बहादुर की रखेली थी। राजपूताने में 'भगतन' एक जाति का नाम है। इनकी उत्पत्ति रामावत साधुओं (वैष्णव) से कही जाती है। सं० १८२२ वि० में कई गृहस्थ रामावत साधुओं की कन्याओं ने गाना बजाना सीख कर वैश्या का धंधा शुरु किया था। कहावत है—'जाई कसब कमावें और आई नहीं कमावे।' भगतनों की गणना भारत के अन्य प्रान्तों की तवायफों में है। जिस प्रकार पातुरों के पिता भाई 'जागरी' कहलाते हैं और उनके विवाह सम्बन्ध दरोगा (विदुर) जाति में होते हैं, उसी प्रकार भगतनों के भाई 'भगत' कहलाते हैं और गृहस्थ रामावत व निम्बावत साधु जाति में

विवाह करते हैं। ये भगत लोग उन के साथ तबला, सारंगी बजाया करते हैं। ये मुसलमानों से भी सम्बन्ध रखती हैं किन्तु पातुरें मुसलमानों से संसर्ग नहीं करतीं। भगतनें मांस, मदिरा, शलगम, गाजर, कांदा (प्याज) और लहसुन से परहेज करती हैं।

नन्ही की मां का नाम था 'छोटी भगतन'। कहते हैं कि जब नन्ही २०-२१ वर्ष की थी तब उसको एक पुत्री हुई थी। वह उस समय जुनागढ़ (काठियावाड़) राज्य के किसी मुसलमान शाहजादे के पास थी। जब ये २२-२३ वर्ष की थी तब जोधपुर नरेश ने इसे अपने पास रख लिया और अपनी मृत्यु पर्यन्त (सं० १९५२ वि०) तक रक्खा। वह पर्दा नहीं करती थी। उसके हुक्म नूरजहां की तरह जोधपुर में चलते थे। उसके शिर के बाल धोने में प्रति बार १५००) रु० खर्च होते थे। कस्तूरी का भी काफी उपयोग होता था। इसकी मृत्यु के बाद में इसकी सब जायदाद राज्य में जब्त की गई तो ६०० जोड़े तो रेशमी जूतों के ही मिले। ८०० के करीब रेशमी घाघरे थे और भी कई लाख का मूल्यवान् सामान था। जो इधर उधर हो गया। पब्लिक नीलाम में राज्य में केवल १, ०४, १३८॥)॥। रु० जमा हुए। उसमें से १ लाख रु० तो नई दिल्ली के लेडी हार्डिग मेडिकल कालेज को दान में दिया और बाकी ओसवाल जाति के सरदार हाई स्कूल को दे दिया। नन्ही ने जोधपुर शहर में एक विशाल देव मंदिर भी मेड़ता दरवाजा के बाहर बनवाया, जिसकी प्रतिष्ठा सं० १९४२ पौष वदि ५ को हुई। इसका देहान्त २३ अगस्त सन् १९०९ ई० को ६०-६१ वर्ष की आयु में हुआ।

२२—रायबहादुर मेहता विजयसिंह

इनका जन्म वि० सं० १८७३ पौष बदि ५ सोमवार को ओसवाल वैश्य जाति के मोहणोत गोत्र में हुआ और देहांत वि० सं० १९४९ भादों बदि १२ की रात को २ बजे जोधपुर में हुआ। आप किशनगढ़ राज्य से आकर सं० १८८७ वि० में जोधपुर राज्य की सेवा में नियुक्त हुए। आप कई पदों पर रहकर अंत में राज्य के अर्थमंत्री (देश दीवान) रहे। आप वैष्णव रामानुज सम्प्रदाय के थे।

२३—स्वामी गणेश पुरी

ये राजपूताने के प्रसिद्ध चारण कवि थे और गांव चारणवास (जि० मेड़ता मारवाड़) के बारहठ पातावत पदमजी जगरामोत के पुत्र थे। इनका नाम गुलाबदान (गुप्तजी) था परन्तु दसनामी (गुंसाई) संन्यासी होने पर 'गणेशपुरी' नाम रख लिया। इसका देहांत वि० सं० १९६६ के लगभग ७० वर्ष की आयु में हुआ।

२४—कविवर ऊमरदान (अमरदान)

ये जोधपुर राज्य के परगना फलोधी के ग्राम ढाढरवाड़ा में वि० सं० १९०८ वैशाख सुदि २ शनिवार को जन्मे और सं० १९६० फाल्गुन सुदि १३ बुधवार को जोधपुर में परलोक बसे। इनकी राजस्थानी भाषा की कविता, सरस, सरल एवं चित्ताकर्षक थी। उनके 'ऊमर काव्य' का राजपूताने में बड़ा आदर है और लोग उसे बड़े चाव व उत्साह के साथ पढ़ते हैं। ये बड़े निर्भीक सुधारवादी कवि थे।

२५—झालावाड़ नरेश महाराज राणा जालिमसिंह

इनका जन्म ई० सन् १८६४ ता० १ जून को हुआ। ये ११ वर्ष की आयु में दत्तकरुण झालावाड़ राज्य (राजपूताना) के उत्तराधिकारी नियत हुए और २५ मार्च १८७६ ई० को मेयो कालेज अजमेर में भरती हुए। १९ वर्ष की आयु में मार्च १८८३ ई० में कालेज छोड़ा और ई० सन् १९१२ की ८ अक्टूबर को काशी में इनका देहांत हुआ। मेयो कालेज में इनके गार्डियन व शिक्षक श्री लेंग साहब व कैप्टेन रंडल थे।

२६—श्री जे० डब्लू० लेंग

ये १३ मास तक मेयोकालेज अजमेर के हेडमास्टर रह कर २० जुलाई १८७७ ई० को झालावाड़ नरेश हिजहाईनेस महाराणा श्री जालिमसिंह झाला के मेयो कालेज ही में टय़ूटर व गार्डियन (अतालिक) नियुक्त हो गये। साढ़े तीन वर्ष तक उन्होंने यह कार्य किया और अप्रेल सन् १८८० ई० को ये हिजहाईनेस झालावाड़ के १७,०००) रु० नकद व २ हजार का गहना और १२०००) सेठ मूलचन्द सोनी व गणेशदास आदि साहूकारों का कर्ज लेकर अकेला रात को रेल में अजमेर से भाग गया। गोरे अफसरों ने उसका कोई पता नहीं बताया।

अष्टम परिशिष्ट

ऋ० द० के पत्र और विज्ञापनों में उद्धृत वचनों की सूची

विशेष—(१) उद्धरणों के आगे जो संख्यायें दी हैं, उनमें प्रथम संख्या पृष्ठ की है और दूसरी पंक्ति की।

(२) यदि एक उद्धरण एक ही पृष्ठ में एक से अधिक बार उद्धृत हुआ है तो उसका एक बार ही निर्देश किया है।

—:०:—

नवम परिशिष्ट

ऋ० द० के पत्र और विज्ञापनों में उल्लिखित व्यक्तियों के नाम

विशेष—(१) इस नाम-सूची में पत्र और विज्ञापनों के मध्य उल्लिखित व्यक्तियों के नाम दिये गये हैं। जिन व्यक्तियों को पत्र लिखे गये, उनकी सूची द्वितीय भाग के आरम्भ में दी है।

(२) इस सूची में जिस व्यक्ति का नाम एक पृष्ठ में एक से अधिक वार आया है, उसका एक ही वार उल्लेख किया है।

(३) सूची में प्रथम संख्या पृष्ठ की है और दूसरी संख्या पंक्ति की। दोनों भागों की पृष्ठसंख्या क्रमिक होने से भाग का निर्देश नहीं किया है।

(४) जिन अंग्रेजी पत्रों का भाषार्थ दिया है, उनमें नामसूची में मूल अंग्रेजी पाठ की पृष्ठ पंक्ति संख्या दी है।

---

१. इसका शुद्ध नाम उमरदान था। इनका 'उमर' काव्य राजस्थान में प्रसिद्ध है।

1. यह नाम अनेक प्रकार से लिखा गया है।

---

१. यह नाम अनेक प्रकार से लिखा गया है।

२. क्या यह अमरदान नाम का भ्रष्ट पाठ है।

१. द्र०—कोटहूमीलाल, कोटहूमीसिंह ।

—:o:—

दशम परिशिष्ट

ऋ.द. के पत्र और विज्ञापनों में उद्धृत ग्रन्थों के नाम

टिप्पणी—(१) प्रथम संख्या पृष्ठ की है और दूसरी पंक्ति की।

(२) एक पृष्ठ में एक से अधिक बार ग्रन्थ का उल्लेख होने पर एक ही बार निर्देश किया है।

—:o:—



लेखक का जीवन-परिचय

नाम– म० म० पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक।

जन्म– २२ सितम्बर, सन् १९०९ ई०।

जन्मस्थान– विरकच्यावास (विरञ्च्यावास), अजमेर (राजस्थान)।

शिक्षा– प्रारम्भिक शिक्षा पाँचवीं तक जन्मस्थान पर, तत्पश्चात् 'विरजानन्द आश्रम' हरदुआ गंज, अलीगढ़ आदि स्थानों पर पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु आदि विद्वानों के सान्निध्य से सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय का गम्भीर अध्ययन।

अध्यापन– विरजानन्द आश्रम (लाहौर, वाराणसी, बहालगढ़), महर्षि दयानन्द स्मारक महाविद्यालय (टंकारा), पाणिनीय संस्कृत सान्ध्य महाविद्यालय (भुवनेश्वर, उड़ीसा) तथा अन्य अनेक स्थलों पर भी स्वतन्त्र रूप से अध्यापन कार्य एवं रामलाल कपूर ट्रस्ट के प्रधान पद पर रहते हुए आजीवन कुशल सञ्चालन किया।

लिखित ग्रन्थ– संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास (दो भाग), वैदिक-स्वरमीमांसा, वैदिक-छन्दोमीमांसा, वैदिक-सिद्धान्तमीमांसा, श्रौत-यज्ञ-मीमांसा आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का लेखन।

सम्पादित ग्रन्थ– निरुक्त-समुच्चयः, भागवृत्ति-संकलनम्, दशपाद्युणादिवृत्तिः (दो भाग), शिक्षा-सूत्राणि, क्षीरतरंगिणी, दैवम् (पुरुषकार-वार्तिकोपेतम्), काशकृत्स्न-धातुव्याख्यानम्, माध्यन्दिन-पदपाठः, महाभाष्यम् (हिन्दी-व्याख्या दो अध्याय पर्यन्त), ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन (चार भाग) आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन।

विशिष्ट सम्मान एवं पुरस्कार– सन् १९७७ ई० में भारत के राष्ट्रपति द्वारा 'राष्ट्रिय पण्डित', आर्यसमाज सान्ताक्रुज (मुम्बई) द्वारा सन् १९८५ ई० में ७५ सहस्र रुपये से सम्मानित, सन् १९९४ ई० में उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा एक लाख का 'विश्वभारती' पुरस्कार, स० सं० विश्वविद्यालय वाराणसी द्वारा 'महामहोपाध्याय' की उपाधि दी गई।

निधन– २८ जून सन् १९९४ ई०।